पुस्तक मिलनेका पता—

१—श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन (गुजराती) संघ. २७ नं० पोलोक स्ट्रीट, कलकत्ता।

२—सेठ अमरचंद नाहर. नं० ८, हंसपोकरिया फर्स्ट लेन, कलकत्ता।

प्रस्तावना

अनेकान्तवाद सिद्धान्तका इस कालमें समस्त जन-संसार पर अद्वितीय उपकार है। श्रीजिनेन्द्र देवने अपनी मनोमोहक दिव्य ध्वनिमें नव पदार्थोंकी अनुपम रचना सर्वप्रथम अर्धमागधी भाषामें अपने भव्य समवसरणमें प्रतिपादन की। परन्तु उसी समय गणधरलब्धिधारक भगवान सुधर्माचार्यने उसका अर्थ मानव भाषामें अनुवादित कर बताया और उस तत्त्वको सुगम शब्दोंमें समझा कर मानव समाजपर आत्म-ज्ञानका खूब ही प्रकाश डाला, अतः जैन-समाज जिस प्रकार जिनवरके उपकारसे उपकृत है उसी प्रकार गणधरदेव श्री सुधर्माचार्यजीका भी अत्यन्त ऋणी है जिन्होंने इस नव-पदार्थके ज्ञानको चिरस्थायी रहनेके लिये इसे सूत्रागम रूपी मालामें गूंथ कर इसके गहनातिगहन विषयको और भी सरल बना दिया और किसी हद तक यह (प्राकृत भाषियोंके लिये) बहुत ही अच्छा हुआ है। परन्तु इनके पश्चात् और अनेक आचार्यगण यदि इन नव तत्त्वोंको सुगम मानव भाषामें न लिखते तो आजकलके सर्वसाधारण संस्कृत-प्राकृतमें नव पदार्थ ज्ञानकी रचना रह जानेके कारण जैन पदार्थ विज्ञानसे वंचित ही रह जाते। अतः यह मुक्त-कंठसे कहना होगा कि—उन आचार्योंने भी जैन-दर्शनको सुगम भाषाओंमें रच दिखाया जो कि साधारण योग्यता रखनेवालोंके लिये

का सत्व अपने पत्तोंके द्वारा चूस लेती है या खाद लेकर हवाके द्वारा मांसाहार करती है।

अंगूर और सेवकी जड़ोंमें मछली या मरे हुए पशुका खाद दिया जाता है।

विलायती अनारकी जड़ें खूनमें सींची जाती हैं। भांगमें काले सांपको गाडनेसे भांगमें भी विषका असर हो जाता है। उसके ४ पत्ते भी ५० आदमियोंको भारी नशा दे सकते हैं।

कीटक भक्षी-वनस्पति

यह दो बार हिंसक क्रिया करने पर वह अपने पत्र नष्ट कर देती है। यह इङ्गलैंड, आसाम, वर्मा, छोटा नागपुर, हुवलीमें होता है।

हिंसक वनस्पति

डाई वानियामें हिंसक-वनस्पति ३ वार क्रिया करके नष्ट हो जाती है। यह एक अमेरिकन विज्ञानवेत्ता मि० ट्रिटका कहना है।

भेरी वनस्पति

इस वनस्पतिके पत्तोंके मिलनेसे घड़ेका आकार वन जाता है, और कीड़ा, पतंग आदि जन्तु जब उसमें घुसते हैं, तब तुरन्त मर जाते हैं और वह फिर गंदी हो कर नष्ट हो जाती है। यह अमेरिकामें होती है।

घड़ा वनस्पति

इसी तरह घड़ा वनस्पति भी छोटे २ कीड़े खाकर नष्ट हो जाती है।

कहा जा सकता है, और वह सम्पूर्ण स्वभाव मोक्ष होनेपर प्रगटित होता है, अतएव मोक्षको सबसे पीछे कहा गया है।

इस प्रकार नव पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त होनेपर अपने मुख्य कर्तव्य-की झांखी होती है, स्वस्वरूपकी स्मृति हो उठती है। अतः मानव सृष्टिको नव पदार्थ ज्ञानका अमृतरूप सार मिलनेपर ज्ञायकत्वकी प्राप्ति होनेमें सन्देह ही नहीं रहता। और इस मधुर प्रसादके पाते ही राग, द्वेष, मोह, पक्षपात, सम्प्रदायवाद, गच्छवाद, मत, मतवालापनका 'अनादि' 'हलाहल' विष निकल जाता है और फिर प्राणियोंमें परस्पर वास्तविक और सच्चा प्रेम प्रगट हो जाता है तथा वैर भाव नाम मात्रको भी नहीं रहने पाता।

यद्यपि नवतत्त्व पदार्थका ज्ञान संस्कृत-प्राकृतमें खूब ही पाया जाता है परन्तु वह गूढ़ विषयोंसे समृद्ध है। अतः पूर्वाचार्योंने और हिन्दीविद्वानोंने इसकी अनेक टीकाएँ रचकर इस विषयको सरलतम बनाया है तथापि वर्तमान कालीन नवीन हिन्दी-प्रेमी सर-लाशयसमलंकृत सज्जनोंके हेतु उसे आकर्षक नहीं कहा जा सकता, और न भारतके समस्त प्रान्तोंके निवासी उन ग्रन्थोंकी भाषा ही समझ सकते हैं।

इस नव पदार्थकी सरल भाषामें चाहे कितनी भी टीकाएँ कितने ही विस्तारसे क्यों न लिखी जायँ तथापि नव पदार्थोंका ज्ञान गुरुगम्यताके विना कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। इसी कारण प्रकाशककी इच्छा रहनेपर भी चाहे भाषाका अधिक विस्तार नहीं किया गया है परन्तु फिर भी विषयको स्पष्ट करनेमें

संकीर्णता नहीं की गई है। इतने पर भी यदि गुण ग्राहक स्वाध्याय-प्रेमी महाशयोंको कहीं शंका उत्पन्न हो और उनकी सूचना मिलने पर उनका यथाशक्य समाधान करनेकी योजना की जायगी।

अन्तमें यह लिखना भी आवश्यक है कि—मैं किसी भी भाषाके साहित्यमें पूर्ण सिद्धहस्त नहीं हूं और न जैनदर्शनकी द्वादशांगी वाणीमें ही उच्च प्रवेश है, पर हां **पूज्यपाद गुरुराज श्री फकीरचन्द्रजी महाराजकी चरण कमलोंकी सेवाका सौभाग्य अवश्य प्राप्त है।** अतः मुझे जो कुछ प्राप्त है वह गुरुदेवका प्रसाद है अथवा इस ग्रन्थकी संग्रह रचना-में जो कुछ दूषण रह गये हों वे मेरे अज्ञान और प्रमाद जनित हैं। इसके अतिरिक्त भाई खेमचंद श्रावकने इसका संशोधन भी किया है। परंन्तु फिर भी आगम अगम्य है। 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे' की नीतिके अनुसार अनेक त्रुटियोंका रह जाना सम्भव है। परन्तु गुणग्राहक, निष्पक्ष स्वभावभावितात्मा यदि निविदित करेंगे तो आगामी संस्करणमें यथा सम्भव सुधारनेकी चेष्टा की जायगी।

सेठ अमरचन्दजी नाहर श्रावककी अत्युत्कट अभिलाषा देखकर यह परिश्रम किया गया है।

आशा है जैन-समाज तथा इतर पाठक-प्रेमी महोदयोंको यह 'नव पदार्थ ज्ञानसार' निरन्तर रुचिकर होगा और इससे उन्हें आध्यात्मिक लाभ भी अवश्य मिलेगा।

णायपुत्त, महावीर जैन संघका सेवक

—पुप्फ जैन भिक्खु।

सहायक—

इस पुस्तकके लिये जिन-जिन पुस्तकोंका अवलोकन, प्रमाण आदि उद्धृत किये हैं, उनका उल्लेख इस प्रकार है—

नयतत्त्व हस्त लिखित, नयतत्त्व, उ० (आत्मारामजी म० पंजाबी), नयतत्त्व, (श्रा० मु० लाल) आलाप पद्धति, समय प्राभृत, नाटक समयसार (पं० बनारसीदासकृत), पंचास्तिकाय, गोमट्टसार, स्थानांगसूत्र, आचारांगसूत्र, नयतत्त्व, (आगरेका छपा हुआ) जीव विचार, (आगरेका छपा हुआ) कर्मादि विचार, विश्वदर्शन, जैन हितेच्छु (सं० वा० मो० शाह) विश्वदीपक, जैनतत्त्वका नूतन निरूपण आगमसारोद्धार।

इन सब पुस्तकोंके लेखकों और अनुवादकोंका एक साथीदारीके रूपमें इनके साथको मैं भूल नहीं सकता। इसके उपरान्त प्रत्यक्ष या परोक्षमें जिन-जिनने प्रोत्साहन प्रेरित किया है उन सबका उल्लेख करना भी मैं क्योंकर विस्मृत कर सकूं।

इस पुस्तकके पाठकोंको मुझे यह भी स्मरण करा देना आवश्यक है कि भाई हेमचंदने और जैन गुरु (उपाध्याय सूर्यमल्लजी यतिवर गणिने सहायता दिखलाई है।

नोट—पृष्ठ १४६ से १४९ तकका मैटर जैनहितेच्छुसे लिया गया है। जिसका निश्चय नयसे सम्बन्ध है। —सम्पादक।

निदर्शन

इस जीवका प्रयोजन मात्र एक ही है वह यह कि—सुख हो, दुःख न हो। परन्तु इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिक नव पदार्थों-की श्रद्धा रखनेसे ही होती है।

सबसे पहले तो दुःखको दूर करनेके लिये आत्मा अनात्माका ज्ञान अवश्यमेव होना चाहिये। यदि आत्मा तथा पर (जड़) का ज्ञान भलीभांति न हो तो आत्माको समझे बूझे विना किस प्रकार दुःख दूर हो सके? अथवा आत्मा तथा परको एक समझ कर आपत्तिको दूर करनेके लिये परका उपचार करे तब भी दुःख दूर क्योंकर हो? अथवा आत्मासे पुद्गल भिन्न है अवश्य परन्तु उसमें अहंकार ममकार करनेसे भी दुःखी ही होगा। अतः फलित यह है कि आत्मा और परका ज्ञान पानेसे हो दुःख दूर हो सकता है। आत्मा और परका ज्ञान जीव और अजीवका ज्ञान होनेसे होता है। आत्मा स्वयं जीव है और शरीरादि अजीव हैं। लक्षणों द्वारा जीवाजीवका ज्ञान हो तो आत्मा तथा परका भिन्नत्व समझ सके, और जो जीवोंको तथा अजीवोंको जानता है वह जीवाजीवका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके संयमको भी यथार्थ रीतिसे जान सकता है। जीवाजीवका सम्यग्ज्ञान होनेपर जो पदार्थकी अन्यथा श्रद्धासे दुःख और संकट भोग रहा था उसका यथार्थ ज्ञान होनेपर

दुःख दूर हो गया। अतः जीव अजीवका जानना परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त दुःखका कारण कर्मबंध है, और उसका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है. यदि उसका ज्ञान न पा सके तो दुःखका मूल कारण भी न जान सकेगा। तब उसका अभाव क्योंकर हो? और यदि उसका अभाव न हो तो कर्मबंध होगा, और उससे सदा दुःखका ही सद्भाव रहेगा, क्योंकि मिथ्यात्वादिक भाव स्वयं भी दुःखमय हैं। उसे दूर न करे तो दुःख ही रहे। अतः आस्रवका परिज्ञान भी अवश्य करना चाहिये। पुनः समस्त दुःखका मूल कारण कर्मबंध ही है यदि उसे भी न जाना जाय तो उससे मुक्त होनेका उपाय नहीं कर सकता. इससे बंधका ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। आस्रवके अभावको संवर कहते हैं यदि उसका स्वरूप न जान सके तो उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। इससे वर्तमान एवं आगामी कालमें दुःख ही रहेगा। अतएव संवरको भी अवश्य जानना चाहिये। किसी अंशमें कर्मबंधके अभावको निर्जरा कहते हैं, उसे न समझे, तथा उसकी प्रवृत्ति न करे तो सर्वथा बंधमें ही रहा करे जिससे दुःख ही दुःख होता है इसलिये निर्जराको भी जानना चाहिये। पुनः सर्वथा सब कर्मबंधके अभावको मोक्ष कहते हैं। उसका ज्ञान प्राप्त किये बिना भी उसका कोई उपाय नहीं कर सकता और संसारमें प्राणी कर्मबंधसे होनेवाले दुःखोंको ही सहन करता रहा करे इससे कर्मबंधसे छूटनेके अर्थ मोक्षका ज्ञान होना भी निहायत जरूरी है। इसके अतिरिक्त शास्त्रादिके द्वारा कदाचित इनका ज्ञान हो भी जाय तथापि यह इसी प्रकार है ऐसी प्रतीति न हो तो जाननेसे भी क्या

लाभ ? इससे तो स्वयं सिद्ध है कि—तत्त्वोंकी श्रद्धा करना भी अत्यावश्यक है और जीवादिक तत्त्वोंकी सत्यश्रद्धा करनेसे ही दुःखके अभावके प्रयोजनकी सिद्धि होती है।

नवतत्त्व प्रिय श्रद्धाभावसे जाननेपर मुमुक्षुमें विवेक बुद्धि, शुद्ध सम्यक्त्व और प्रभाविक आत्म-ज्ञानका सूर्यकी तरह उदय होता है, और तत्त्व-ज्ञानमें सम्पूर्ण लोकालोकका स्वरूप समा जाता है जिसे कि—सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ही जान सकते हैं। परन्तु मुमुक्षु आत्माएँ अपनी बुद्धिके अनुसार तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी दृष्टि पहुंचाते हैं, और भावानुसार उनका आत्मा समुज्ज्वलताको प्राप्त हो जाता है।

महावीर भगवानके शासनमें आजकल अनेकानेक मत मतान्तर पड़ गये हैं, और पड़ते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण मेरे विचारानुसार तत्त्व ज्ञानका अभाव ही समझा जाना चाहिये। क्योंकि जीवका लक्षण ज्ञानमय है, ज्ञानके अभावमें दुःख है। संसार परिभ्रमण भी ज्ञानके विना ही होता है। अतः तत्त्वज्ञान आवश्यक वस्तु है, और आत्मार्थी पुरुषोंको अपने जीवनमें तत्त्व ज्ञानको मुख्यता प्रदान करना संघटित है। ज्यों-ज्यों नयादि भेदोंसे तत्त्व ज्ञान मिलेगा त्यों-त्यों अपूर्व आनन्द और आत्म-विशुद्धिकी प्राप्ति होगी। इसीके पानेका अखंड प्रयत्न, विवेक गुरुगम्यता प्राप्त करना उचित है। निर्मल तत्त्व ज्ञान और क्रियाविशुद्धिसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी और परिणाममें भवोंका अन्त भी होगा।

मगर इस समय तो उदर निर्वाह, पौद्गलिक लाभालाभके ही विचार मात्र और व्यापारादि व्यवहारमें ही जनता खिंची जा रही है।

जिसका परिणाम यह हो रहा है कि नव तत्त्वको पठन रूपमें जानने वाले बहुत कम पुरुष पाये जाते हैं। तब फिर मनन और विचार पूर्वक जाननेवाले तो अंगुलियोंके पोरवोंपर गिने जायं तो इसमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है? ऐसे कठिन समयमें जिन्हें कुछ भी जिज्ञासा वृत्ति हो तो उनके लिये यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। जिसमें कि—लेखक पूज्य विद्वान् मुनिश्रीने मात्र नव तत्त्वके भेदोंको ही दर्शा कर सन्तोष नहीं माना है बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिसे संशोधन करके स्पष्टतासे समझा जा सके ऐसे ढंगसे सूक्ष्मता पूर्वक प्रत्येक तत्त्वका पृथक्करण करके सरल रोचक और विस्तीर्ण नोट लिखकर तत्वोंके ऊपर खूब ही प्रकाश डाला है।

"नव पदार्थ ज्ञानसार" में तत्त्वबोध तो है ही परन्तु इसके उपरान्त इसमें एक यह भी खूबी है कि इसमें उपदेश बोध भी पद-पदपर पाया जाता है, जो कि मुमुक्षुओंके लिये अति रोचक और मननीय सिद्ध होगा। आशा है जिज्ञासु जनता समूह इसका सहर्ष मान करेगा और इसका सदृश सारभूत नवपदार्थज्ञानके सारको आदरसे स्वीकार करेगा।

निदर्शक—

वीर सेवक "क्षेम"

कलकत्ता।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	अधक्षासे	अपेक्षासे
२	१२	काय	काय-
२	१६	समुद्घातके	समुद्घातके
३	१०	भावकम रूप	भावकर्म रूप
५	३	उपकार	उपकारी
६	२	अतन्त	अनन्त
६	५	ज्ञायक, स्वभाव	ज्ञायकस्वभाव
६	६	पूर्ण पर	पूर्ण, पर,
७	१०	चमक अनुसार	चमकके अनुसार
७	११	समागनमें	समागममें
८	६	प्रकारसे	प्रकार
८	१४	प्रकःर	प्रकार
९	१	हीं	हो
११	१६	विभंग अज्ञान	विभंग ज्ञान
१३	५	स्वरूप रूप	स्वरूप
१३	८	परिणित	परिणत
१६	२, ७	द्विन्द्रिय	द्वीन्द्रिय
१६	२, १०	त्रिन्द्रिय	त्रीन्द्रिय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१६	परिणित	परिणत
५०	१८	,,	,,
५३	१५, १७	,,	,,
५४	१४	सद्रव्य	सद्द्रव्य
६३	७	पहचानकी	पहचान की
६५	११	तथा और	तथा
६८	२०	चतुरस्त्र	चतुरस्त्र
७२	१६	स्पर्श,संस्थानसे रहित,	स्पर्श रहित
७४	१५	दोनों ही	दोनोंकी
७६	१३, १८	आहारिक	आहारक
८०	११	कौर	और
८०	२१	१६	१७
८१	३	समचतुरस्त्र	समचतुरस्त्र
८५	७	उसे 'अवधि···	उसे 'अवधि ज्ञान' कहते हैं, उसका आवरण अवधि ज्ञानावरणीय पाप कर्म है।
८८	१०	कपाय योग	कपाय, योग
८६	५	जसा	जैसा
६२	१६	पर	पैर
६२	१६	हा	हां

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९३	२	त्रश	त्रस
९५	३	समवन्ध	सम्बन्ध
९६	१३	त्रिकाश	विकास
१००	२	मिथ्यात्व. आस्रव	मिथ्यात्व आस्रव
१०२	२२	कहलाती	लगती
१०८	१३	अतिन्द्रिय	अतीन्द्रिय
११२	२	समतिके	समितिके
११२	१६	सरंभ	संरंभ
११३	२, ८	”	”
११७	२	वृहस्थ	गृहस्थ
११८	१५	परिषद	परिषह
११८	१८	इत्यादि	ये
१२०	१	हुए	हुए
१२५	१३	छेदोस्थापनीय	छेदोपस्थापनीय
१२८	६	उतपन्न	उत्पन्न
१३७	६	मिथ्यात्व रागद्वेष आदि अंतरंग और धन-धान्य	धन धान्य
१३७	१५	इससें	इससे
१३७	१५	निष्परिग्रह	निष्परिग्रही
१४०	५	सन्दृगदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
१४०	१५	युक्त	मुक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	७	रहना ?	रहता ।
१४६	१५	और Phenumena	Phenamena और
१४७	४	भी कार्य करना	भी करता
१४८	४	Concionsness	Conscionsness.
१४८	२०	प्रमाणु	परमाणु
१५०	२२	साथ जब	साथ
१५१	३०	उपद्वास	उपवास
१५१	३१	अकीर्ण	आकीर्ण
१५३	१	ग्रास लेनेपर	ग्रास कम लेनेपर
१५७	३	कायाक्लेश	कायक्लेश
१६१	१६	(१५) अनानना	(१५) की आसानना
१६३	११	अयत्नसे विचार कर	अयत्नसे
१६६	१३	पछनावा करे	पछनावा न करे
१६७	६	प्रणाम	प्रमाण
१६८	६	..	परिणाम
१७५	५	कारमाणा	कार्माण
१७६	२१	सकना	सकता
१८५	६	विषयसक्त	विषयासक्त
१८६	३	बनाई	बताया
१८६	४	निराली	निराला
१८६	२१	शरारादि	शरीरादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	१८	नोष्कर्मसे	नोकर्मसे
१६२	१६	औेर	और
१६३	१०	तद्नन्त	तदनन्तर
१६३	१३	और	तथा
२०२	८	मिश्र मोहिनी २	मिश्र मोहिनी १
२०२	१३	सासादान	सासादन
२०८	६	अविरत्त	अविरत
२११	७	ध्रवोदयी	ध्रुवोदयी
२११	१२	दुर्भाग	दुर्भग
२११	२२	स्त्यनार्द्धि	स्त्यानर्द्धि
२१३	४	वक्रियाष्टक	वैक्रियाष्टक
२२२	८	देशविरत्ति	देशविरति
२२२	१२	अज्ञानुसार	आज्ञानुसार
२२३	१, ५	आहारद्विक	आहारकद्विक
२२६	१	"	"
२२६	१६	ओघमें	ओघकी
२२८	२२	अनुतर	अनुत्तर
२२६	६	अनुपूर्वमें	अपूर्वमें
२२६	१६	अवरति	अविरति
२३२	१३	विहायोगति १	विहायोगति २
२३२	१४	सुस्वर दुःस्वर १	सुस्वर दुःस्वर २

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३३	३	उच्चगोत्र २	उच्चगोत्र १
२३३	१३	जीवपर	जीवके
२३६	५	भोगा	बांधा
२३६	८	नाम	नाम कर्म
२४५	४	गुप्तिपरिषह, जय	गुप्तिपरिषह जय,
२४८	१५	भावपर	भाव पर
२५२	१८	प्रकाश	प्रकाश
२५७	११	मोहनीय कमके	मोहनीय कर्मके अभावसे शुद्ध चारित्र, आयुकर्मके अभाव से अटल अवगाहना,नामकर्मके अभावसे अमूर्तिकता, गोत्रकर्मके अभावसे अगुरु लघुत्व
२६४	११	परिणाम	परिमाण
२३५	११	'नपुंसक लिंग सिद्धि'	'नपुंसक लिंग सिद्धि' गांगेय जैसे,
परिशिष्ट १, ६		यथाप्रक्त्तिकरण	यथाप्रवृत्तिकरण
"	१५	पल्योपम	पल्योपम
"	१८	अनन्तावार	अनन्त वार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
„	२, २	मुहुतमें	मुहूर्तमें
„	२,१२	अनिवृत्ति कारण	अनिवृत्ति करण
„	५	८ समय लगते हैं।	८ समय तक होते रहते हैं।

नव पदार्थ ज्ञानसार

मंगलाचरण

नव-पदार्थ-सारोऽयं, तत्त्व-मार्गैक-दर्शकः ।
बालानां सुख-बोधाय, भाषायामभिकथ्यते ॥ १ ॥

भावार्थ यह नव पदार्थोंका सार तत्त्वोंका मार्ग बतानेवाला है, अपरिचित आत्माओं को इसका ज्ञान करानेके लिये भाषा टीका की जाती है।

नव पदार्थ

जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध और मोक्ष।

जीवका लक्षण

इसका लक्षण चेतना है, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है, ज्ञान और चेतना एक ही बात है। प्राणों का धारक है, चेतना भाव प्राण है। आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा, मन, वाणी, काय, श्वासोच्छ्वास, आयु ये दश द्रव्य प्राण हैं।

द्रव्यचेतन

जीवकी विशेपताओंमें एक यह भी विशेपता है कि—यद्यपि जीवद्रव्य, चैतन्यत्व गुणकी अपेक्षासे चेतन ही माना गया है, अचेतन नहीं है, परन्तु पंचेन्द्रिय और मनके विपयोंके विकल्पसे रहित समाधिके समय स्वसंवेदन यानी आत्मज्ञान रूप ज्ञानके विद्यमान होते हुए भी वाह्य-विपय रूप इन्द्रिय-ज्ञानके अभावकी अपेक्षासे आत्मा कथंचित जड़ (अचेतन) माना गया है।

अनेक

यह गणनाकी अपेक्षासे अनन्त है।

अस्तिकाय

जीवद्रव्य अस्तित्व गुणके सम्बन्धसे केवल अस्तिरूप, तथा शरीरके समान वहुत प्रदेशोंको धारण करनेकी अपेक्षासे केवल काय रूप कहलाता है। इसलिये अस्तित्व निरपेक्ष केवल कायत्वसे अथवा निरपेक्ष केवल अस्तित्वसे जीव, अस्तिकाय नहीं कहा जाता, वल्कि दोनोंके मेलसे अर्थात् अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान वहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षासे अस्तिकाय कहलाता है।

असर्वगत

यद्यपि जीवद्रव्य लोकाकाशके वरावर ही असंख्यात प्रदेशी है, अतएव समुद्घातके समय होनेवाली लोकपूरण अवस्थामें तथा सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त नाना जीवोंकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है।

तथापि लोकालोक रूप सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त न होनेकी अपेक्षासे असर्वगत कहते हैं। फिर भी व्यवहार नयसे केवल ज्ञानावस्थामें ज्ञानकी अपेक्षासे जीवको लोक और अलोकमें भी व्यापक (सर्वगत) माना है। क्योंकि ज्ञानसे यह जीव लोकालोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थोंको जानता है। अतः सर्वगत है। और ज्ञानावरणकी अपेक्षा असर्व-गत है।

अकार्यरूप

मुक्त जीव, द्रव्य तथा भावकर्मोंसे रहित होनेके कारण देव मनुष्यादि पर्यायरूप जीवके उत्पन्न होने में कारण भूत जो द्रव्य कर्म, भावकर्म रूप अशुद्ध परिणति है उस अशुद्ध परिणतिके द्वारा संसारी जीवकी तरह किसी भी कालमें मनुष्य-पशु आदि पर्याय रूपमें उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये उस मुक्त जीवकी अपेक्षासे जीव द्रव्य अकार्य रूपसे कहा जाता है।

परिणामी

स्वभाव और विभाव पर्यायरूप-परिणमनकी अपेक्षा परिणामी भी कहा गया है।

प्रवेशरहित

यद्यपि व्यवहार नयसे सम्पूर्ण द्रव्य, एक क्षेत्रावगाही होनेके कारण एक दूसरेमें अर्थात् आपसमें प्रवेश करके रहते हैं तथापि निश्चय नयसे चेतन अचेतन आदि अपने २ स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं इसलिये प्रवेश रहित कहा है।

कर्त्ता

यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जीव, पुण्य-पाप तथा घट-पट आदि किसी भी वस्तुका कर्त्ता नहीं है तथापि अशुद्ध निश्चय नय से शुभ और अशुभ योगसे युक्त होता हुआ पुण्य-पाप बन्धका कर्त्ता तथा उनके फलका भोक्ता कहा जाता है।

सक्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करने रूप यानी हलन-चलन रूप क्रियाकी अपेक्षा सक्रिय है।

कार्यरूप

संसारी जीव, कारण भूत भावकर्म रूप आत्म परिणामोंकी सन्ततिके द्वारा और द्रव्यकर्मरूप पुद्गल परिणामोंकी सन्ततिके द्वारा नरक-पशुआदि पर्याय रूपसे उत्पन्न होता है। इसलिये संसारी जीवकी अपेक्षासे जीवद्रव्य कार्यरूप कहा जाता है।

कारण व अकारण रूप

संसारी जीव कार्य-भूत भावकर्मरूप आत्म परिणामोंकी सन्तति को और द्रव्यकर्म रूप पुद्गल परिणामोंकी सन्तति करता हुआ नर नारकादि पर्याय-रूप कार्योंको उत्पन्न करता है। इसलिये उसकी अपेक्षासे जीवद्रव्य कारण रूप कहा जाता है। तथा मुक्त जीव दोनों प्रकारके कर्मोंसे रहित होनेके कारण नर-पशु आदि पर्यायोंको उत्पन्न नहीं करता है, अतः उस मुक्त जीवकी अपेक्षासे जीवद्रव्य अका-रण रूप कहा जाता है। अथवा जीव द्रव्य यद्यपि गुरु शिष्यादि

रूपसे आपसमें एक दूसरेका उपकार होता है तथापि पुद्गलादि पांचों द्रव्योंके प्रति यह जीव कुछ भी उपकार नहीं करता है जिसके लिये अकारण रूप कहलाता है।

अनित्य

यद्यपि जीव द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है, तथापि अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभाव पर्यायकी तथा विभाव व्यंजन पर्यायकी अपेक्षा से अनित्य कहा जाता है।

अक्षेत्ररूप

सम्पूर्ण द्रव्योंको अवकाशदान देनेकी सामर्थ्यके अभावकी अपेक्षासे जीव द्रव्य भी अक्षेत्र रूप कहा गया है, क्योंकि आकाश ही सब द्रव्योंको अवकाश देता है।

लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी

यद्यपि जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयकी अपेक्षासे शरीर नाम कर्मके द्वारा पैदा होनेवाले संकोच तथा विस्तारके कारण अपने छोटे व बड़े शरीरके प्रमाणमें कहा जाता है तथापि शुद्ध निश्चयनयसे लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी ही है।

अमूर्तिक

यद्यपि जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे मूर्तिक है, तथापि शुद्ध निश्चयनयसे उसमें रूप, रस, तथा गन्ध आदि कुछ भी नहीं पाये जाते हैं इसलिये अमूर्तिक है।

जीवका स्वरूप

अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, अनन्त शक्ति सहित चैतन्य स्वरूप है, अमूर्तिक है, अखंडित है।

जीवका निज गुण

वीतराग-भावमें लीन होना. ऊपर जाना, ज्ञायक, स्वभाव, साहजिक सुखका सम्भोग. सुख दुःखका स्वाद और चैतन्यता ये सब जीवके निज गुण हैं।

जीवके नाम

परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्णपर, परम, प्रधान, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, अज, अविनाशी, निर्द्वन्द्व, मुक्त, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, संसारशिरोमणि, सुज्ञान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सिद्ध, स्वामी, शिव, धर्नी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान, चिदानन्द, चेतन, अलक्ष, जीव, शुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी, चिद्रूप, स्वयम्भू, चिन्मूर्ति, धर्मवान, प्राणवान, प्राणी, जन्तु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेषधारी, हंस, विद्याधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखंड, आत्माराम, कर्मकर्त्ता, परमवियोगी ये सब जीवके नाम हैं।

जीवकी दशा

जैसे कि—घास, लकड़ी, बांस, कपड़ा या जंगलके अनेक ईंधन आदि पदार्थ आगमें जलते हैं, उनकी आकृति पर ध्यान देनेसे अग्नि

अनेक रूपसे दीख पड़ता है, परन्तु यदि मात्र दाहक स्वभाव पर दृष्टि डाली जाय तो सब अग्नि एक रूप ही है। इसी तरह यह जीव व्यवहार नयसे नव तत्त्वोंमें शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र आदि अनेक रूपमें हो रहा है, परन्तु जब उसकी चैतन्य शक्तिपर विचार किया जाता है, तब वह शुद्ध नयसे अरूपी और अभेद रूप ग्रहण होता है।

शुद्ध जीवकी दशा क्या है ?

जिस प्रकार सोना कुधातुके संयोगसे अनलके तावमें अनेक रूप हो जाता है परन्तु फिर भी उसका नाम सोना ही होता है, तथा सराफ़ उसे कसौटी पर रखकर, कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमक अनुसार दाम देता लेता है, उसी तरह अरूपी, महादीप्तिमान जीव अनादि कालसे पुद्गलके समागनमें नव-तत्त्व रूप दीख रहा है, परन्तु अनुमान प्रमाणसे सब अवस्थाओंमें ज्ञान स्वरूप एक आत्मारामके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

अनुभवकी दशामें जीव

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर भूमण्डलपर धूप फैल जाती है, और अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार जबतक शुभ और शुद्ध आत्माका अनुभव रहता है तबतक कोई विकल्प नहीं रहता।

शरीरसे आत्मा किस प्रकार भिन्न है

जिस नगरका किला बहुत ऊंचा है, कंगुरे भी शोभा दे रहे हैं, नगरके चारों ओर सघन बाग हैं, नगरके चारों तरफ गहरी खाई

है, परन्तु उस नगरसे राजा कोई अलग ही वस्तु है। इसी तरह शरीरसे आत्मा अलग है।

आत्मामें ज्ञान किस प्रकार गुप्त है

जिस प्रकार चिरकालसे भूमिमें गड़े हुए धनको खोद निकाल कर कोई वाहर रख दे तव नेत्रवालोंको वह सव दिखने लगता है इसी प्रकारसे अनादि कालसे अज्ञान भावमें दवी हुई आत्म-ज्ञानकी सम्पत्तिको गुरुजन युक्ति और शास्त्रसे सिद्ध कर समझाते हैं। जिसे विद्वान लोग लक्षणसे पहचान कर ग्रहण करते हैं।

भेद-विज्ञानकी प्राप्तिमें जीवकी दशा

जैसे कोई धोवीके घर जाकर भूलसे अन्यका कपड़ा पहन कर अपना मानने लगता है परन्तु जव उस वस्त्रका मालिक देखकर यह कहे कि—भाई! यह कपड़ा तो मेरा पहिन लिया है तव वह मनुष्य अपने वस्त्रका निशान देखकर उस कपड़ेको छोड़ देता है, इसी प्रकार यह कर्म - संयोगी जीव परिग्रहके ममत्वसे विभावमें रहता है। और शरीर आदि वस्तुओंको अपना मानता है, परन्तु भेद—विज्ञान होनेपर जव निज परका विवेक हो जाता है, तव रागादि भावोंसे भिन्न अपने निज स्वभावको ग्रहण करता है।

आत्माके सामान्य गुण

(१) जिस गुणके निमित्तसे जीवद्रव्यका कभी भी अभाव न हो उसको अस्तित्व' गुण कहते हैं।

(२) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारी पना हो उसको 'वस्तुत्व' गुण कहते हैं। जैसे घटमें जलानयन धारणादि अर्थ क्रिया है।

(३) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें एक परिणामसे दूसरे परिणाम रूप परिणमन हो अर्थात् द्रव्य सदैव परिणमन शील रहे उसको 'द्रव्यत्व' गुण कहते हैं।

(४) जिस गुणके निमित्तसे जीवद्रव्य प्रमाणके विषयको प्राप्त हो अर्थात् किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो उसको 'प्रमेयत्व' गुण कहते हैं।

(५) जिस गुणके निमित्तसे एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप तथा एक गुण दूसरे गुणके रूपमें परिणमन न करे उसको 'अगुरुलघुत्व' गुण कहते हैं।

(६) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें आकार विशेप हो उसको 'प्रदेशवत्व' गुण कहते हैं।

(७) जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें पदार्थोंका प्रतिभासकत्व अर्थात् उनके (पदार्थोंके) जानने देखनेकी शक्ति हो उसको 'चेतनत्व' गुण कहते हैं।

(८) जिस गुणके निमित्तसे जीव द्रव्यमें स्पर्शादिक न पाए जाय अथवा जिस गुणके निमित्तसे जीव द्रव्यको इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेकी योग्यता न हो उसको 'अमूर्तत्व' गुण कहते हैं।

जीवके विशेष गुण

ज्ञान-दर्शन-सुख-शक्ति-चेतनत्व-अमूर्तत्व ये ६ विशेष गुण जीवमें पाये जाते हैं।

जीवका पर्याय

गुणोंके विकार (परिणमन) को पर्याय कहते हैं। और स्वभाव तथा विभावके भेदसे पर्यायें दो प्रकारके होते हैं।

स्वभाव पर्याय

दूसरे निमित्तके विना जो पर्याय होता है, वह स्वभाव पर्याय कहलाता है।

विभाव पर्याय

दूसरे निमित्तसे जो पर्याय होता है, उसको 'विभाव पर्याय' कहते हैं। यह जीव और पुद्गलमें ही पाया जाता है।

स्वभाव पर्यायका लक्षण

अगुरुलघु गुणोंके विकारको स्वभाव-पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें ६ हानिरूप ६ वृद्धिरूपके भेदसे १२ प्रकारके हैं।

स्वभाव पर्यायके १२ प्रकार

अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, इस प्रकार ६ वृद्धिरूप हैं. तथा अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभाग-

हानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि, अनन्त गुणहानि, इस प्रकार ६ हानि रूप स्वभाव पर्यायें जानना चाहिये।

यहां पर अनन्तका प्रमाण सम्पूर्ण जीवराशिके बराबर, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक (प्रदेश) और संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातके बराबर समझना चाहिये।

जीवका विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय

नरक-पशु-मनुष्य-देवादिकी पर्यायें अथवा ८४ लाख योनियां, ये सब जीवकी विभावद्रव्य व्यंजन पर्यायें हैं।

विभाव-द्रव्य पर्याय

चारों गतिओंमें रहने वाले संसारी जीवका जो प्राप्त शरीरके आकार प्रदेशोंका परिमाण होता है अथवा विग्रहगतिमें पूर्व शरीरके आकार प्रदेशोंका जो परिमाण होता है वह जीवका विभावद्रव्य पर्याय होता है।

जीवका विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय

मति ज्ञानादिक और राग-द्वेष आदि ये सब जीवके विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय हैं।

विभाव-गुण पर्याय

मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुति अज्ञान, विभंग अज्ञान, इस प्रकार जितनी भी

अवस्थाएं हैं वे सब जीवकी विभाव गुण पर्यायें हैं। ये पर निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले हैं।

जीवका स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय

चरम शरीर (अन्तिम शरीर) के प्रदेशोंसे कुछ प्रदेशवाली सिद्ध पर्यायको जीवका स्वभाव द्रव्य व्यजंन पर्याय कहते हैं।

जीवका स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय

अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, और अनन्तशक्ति स्वरूप स्वचतुष्टय जीवकी स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है। यह उपाधि रहित शुद्ध जीवके अनन्त ज्ञानादि गुणोंका स्वस्वरूप परिणमन है।

पर्यायका खुलासा

पानीमें पानीकी लहरोंकी तरह अनादि और अनन्त अर्थात् उत्पत्ति और विनाशसे रहित द्रव्यमें द्रव्यकी निजी पर्यायें प्रत्येक समयमें बनती तथा बिगड़ती रहती हैं।

जैसे जलमें पहली लहरके नाश होनेपर दूसरी लहर उससे भिन्न रूपकी नहीं आती, बल्कि पहली लहर ही दूसरी लहरके रूपमें हो कर बदल जाती है और पानी ज्योंका त्यों रहता है। इसी तरह जीवमें भी पहली पर्यायका अभाव हो जानेपर उससे निराली कोई अन्य पर्याय नहीं उत्पन्न होती। बल्कि पहली पर्याय हीं दूसरी पर्याय बन जाती है। यदि पहली पर्यायसे दूसरी पर्याय सर्वथा

भिन्न उत्पादरूप मानने लगें तो सत्‌के विनाश और असत्‌के बनने-का प्रसंग आ जायगा।

जीवके स्वभाव जो सामान्य हैं

१ अस्ति स्वभाव—जिसका कभी नाश नहीं होता।

२ नास्ति स्वभाव—जो पर स्वरूप रूप न हो।

३ नित्य स्वभाव—अपनी नाना पर्यायोंमें 'यह वही है' इस प्रकार जो पहचाना जाय।

४ अनित्य स्वभाव—जो नाना पर्यायोंमें परिणित होनेके कारण न पहचाना जाय।

५ एक स्वभाव—सम्पूर्ण स्वभावोंका एक आधार माना जाय। जैसे चेतना सब गुणोंका आधार है।

६ अनेक स्वभाव—नाना स्वभावोंकी अपेक्षासे अनेक स्वभाव पाये जांय।

७ भेद स्वभाव—गुण गुणी आदि संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन-की अपेक्षासे भेद स्वभाव कहलाता है।

८ अभेद स्वभाव—गुण गुणी आदिका एक स्वभाव होनेसे यानी गुण और गुणी आदिमें प्रदेश भेद न होनेके कारण एक स्वभावका पाया जाना अभेद स्वभाव है।

९ भव्य स्वभाव—आगामी कालमें परस्वरूपके आकार होनेकी अपेक्षासे भव्य स्वभाव है।

१० अभव्य स्वभाव—तीनों कालमें भी परस्वरूपका आकार नहीं होनेकी अपेक्षा अभव्य स्वभाव है।

११ सामान्य स्वभाव—पारिणामिक भावोंकी प्रधानतासे परम स्वभाव है। जीवके ये सामान्य स्वभाव हैं।

जीवके विशेष स्वभावोंके नाम

चेतन-स्वभाव, अमूर्त-स्वभाव, एक-प्रदेश-स्वभाव, अनेक-प्रदेश स्वभाव, विभाव-स्वभाव, शुद्ध-स्वभाव, अशुद्ध-स्वभाव, और उपचरित-स्वभाव।

जीवके भेद

जघन्य जीवका भेद एक है। और वह चेतना लक्षण है।

जीवके मध्यम भेद

जीवके १४ भेद मध्यम इस प्रकार है।

जीवका १ भेद

चेतना लक्षण है।

जीवके २ भेद

त्रस और स्थावर हैं

त्रसका लक्षण

जो सर्दी गर्मी या अन्य आपत्ति पड़ने पर चल फिर कर अपने

३—सागरवान् किल्विष देव १-२ स्वर्गसे ऊपर और ३-४ देव-लोकके नीचे रहते हैं।

१३—सागरवान् किल्विषदेव ५ वें स्वर्गके ऊपर और ६ वें स्वर्गके नीचे रहते हैं।

१५ परम अधार्मिक देव

१—अम्बे, २—अम्बरसे, ३—सामे, ४—सबले, ५—रुद्दे, ६—विरुद्दे, ७—काले, ८—महाकाले, ९—असिपत्ते, १०—धनुपत्त, ११—कुम्भी, १२—बालुए, १३—वेयारणे, १४—खरखरे, १५—महाघोषे।

ये सब ९९ भेद देवोंके पर्याप्त-अपर्याप्त रूप दो भाग करनेसे १९८ भेद होते हैं।

तिर्यचोंके ४८, नारकके १४, मनुष्योंके ३०३, देवोंके १९८ सब मिलकर ५६३ भेद जीवतत्वके सम्पूर्ण हुए।

इति जीव-तत्व।

जीवके ५ भेद

एकेन्द्रियजाति, द्विन्द्रियजाति, त्रिन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रिय जाति ।

एकेन्द्रिय जीव

आग, पानी, हवा, मिट्टी, वनस्पतिके जीव इनमें एक मात्र शरीर इन्द्रिय है।

द्विन्द्रिय जीव

इन जीवोंमें शरीर और जीभ होती है। जैसे जोंक, शीप, शंख, कीड़े, गंडोया आदि जीव ।

त्रिन्द्रिय जीव

इनमें शरीर, जीभ और नाक ये तीन इन्द्रियें हैं। जैसे कीड़ी, मंकोड़ा, जूं, खटमल, वीरवहूटी आदि ।

चतुरिन्द्रिय जीव

इनमें शरीर, जीभ, नाक, आंख पाई जाती हैं जैसे विच्छू. भौंरा, मक्खी, मच्छर आदि जीव ।

पंचेन्द्रिय जीव

जिन्हें शरीर, जीभ, नाक, आंख, कान प्राप्त हों। जैसे मनुष्य, मोर, सांप, मच्छी, ऊँट, गाय आदि अनेक जीव ।

जीवके ६ भेद

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय।

जीवके ७ भेद

नरक, देव, देवी, नर, नारी, पशुमें नर, मादीन।

जीवके ८ भेद

चार गतिका पर्याप्त और अपर्याप्त। अथवा सलेश्यी, अलेश्यी, कृष्ण, नील, कापोत, तेजु, पद्म, शुक्लेश्यी।

जीवके ९ भेद

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

जीवके १० भेद

पांच इन्द्रियोंका पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीवके ११ भेद

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, भुवनपति, वानव्यंतर, ज्योतिष, और वैमानिक।

जीवके १२ भेद

६ कायका पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीवके १३ भेद

६ कायका अपर्याप्त-पर्याप्त-अकायिक सिद्ध-प्रभु ।

जीवके १४ भेद

एकेन्द्रिय जीवके चार भेद-१ सूक्ष्म, २ वादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त, वेन्द्रियके दो भेद–५ पर्याप्त, ६ अपर्याप्त, त्रीन्द्रियके दो भेद–७ पर्याप्त, ८ अपर्याप्त । चतुरिन्द्रियके दो भेद-९ पर्याप्त, १० अपर्याप्त । पंचेन्द्रियके चार भेद-११ संज्ञी, १२ असंज्ञी, १३ पर्याप्त, १४ अपर्याप्त ।

सूक्ष्म जीव क्या हैं ?

जिन्हें आंख नहीं देख सकती, आग नहीं जला सकती, शस्त्रसे कट नहीं सकता, न वे किसीको आघात पहुंचा सकते, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियोंके उपयोगमें नहीं आते, और वे समस्त लोकमें भरे पड़े हैं।

बादर जीव क्या हैं ?

इन्हें हम देख सकते हैं। आग उनके शरीरको जला सकती है, मनुष्य आदि प्राणी अपने उपयोगमें लाते हैं। उनकी गति-आगतिमें रुकावट पैदा की जा सकती है। वे समस्त लोकको घेर कर नहीं रहते हैं। उनका सृष्टिमें नियत स्थान है।

संज्ञी जीव क्या हैं ?

जिनमें पांच इन्द्रिय और मन पाया जाता है। जैसे देव, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि ।

असंज्ञी जीव क्या हैं ?

असंज्ञी पंचेन्द्रियके शरीरमें पांच इन्द्रियें तो हैं परन्तु मन नहीं होता। वे सम्मूर्छिम मनुष्य और मेंडक मच्छी आदि होते हैं।

पर्याप्ति क्या है ?

शक्ति विशेषको पर्याप्ति कहते हैं। जीव सम्पृक्त पुद्गलमें एक ऐसी आहार पर्याप्ति शक्ति है जो खुराकको लेकर उसका रस बनाती है। इस शक्तिका नाम 'आहार-पर्याप्ति' है।

शरीर पर्याप्ति

रस रूप परिणामका खून, मांस, चर्बी, हाड़-मज्जा (हाड़के अन्दरका सुकोमल पदार्थ) और वीर्य बनाकर शरीर रचना करने वाली शक्तिको 'शरीर पर्याप्ति' कहते हैं।

इन्द्रिय पर्याप्ति

सात धातुओंमें यानी रक्त-मांस आदिमें परिणत रससे इन्द्रियादि यन्त्र बनाने वाली शक्तिको 'इन्द्रिय पर्याप्ति' कहते हैं।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति

श्वासोच्छ्वास बनने योग्य पुद्गल-द्रव्यको ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास रूपमें परिणत करने वाली शक्तिको 'श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति' कहते हैं।

मनः पर्याप्ति

मन बनने योग्य पुद्गल द्रव्यको ग्रहण करके मनके रूपमें परिणत करने वाली शक्तिको 'मनः पर्याप्ति' कहते हैं।

भाषा पर्याप्ति

भाषाके योग्य पुद्गल-द्रव्यको ग्रहण कर भाषा रूपमें परिणत करनेवाली शक्तिको 'भाषा पर्याप्ति' कहते हैं।

परिणाम क्या है?

पदार्थके स्वरूपका बदलना 'परिणाम' कहलाता है। जैसे दूधका परिणाम दही, और बीजका परिणाम वृक्ष इत्यादि।

किसमें कितनी पर्याप्ति हैं?

आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्ति एकेन्द्रिय जीवमें होती हैं। मनः पर्याप्तिको छोड़ कर बाकी पांच पर्याप्ति विकलेन्द्रियमें तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवमें पाई जाती हैं। और छ पर्याप्तियां संज्ञी पंचेन्द्रियको होती हैं।

विकलेन्द्रिय क्या है?

दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले जीवोंको विकलेन्द्रिय कहते हैं। पहली तीन पर्याप्तियां पूरी किये बिना कोई जीव नहीं मर सकता। जिन जीवोंकी जितनी पर्याप्तियां बताई गई हैं, उन पर्याप्तियोंको यदि वे पूर्ण कर चुके हों तो 'पर्याप्त' कहलाते हैं। जिन जीवोंने अपनी पर्याप्ति पूर्ण नहीं की है, वे 'अपर्याप्त' कहलाते हैं।

इस प्रकार मध्यम भेद कहे गए हैं। अब उत्कृष्ट भेदोंका वर्णन इस प्रकार है।

जीवके उत्कृष्ट भेद

१४ नरक, ४८ तिर्यंच, ३०३ मनुष्य, १९८ देव। इस प्रकार सब मिलकर ५६३ भेद उत्कृष्ट हैं।

नरकके १४ भेद

नरकके ७ नाम—१ घम्मा, २ वंशा, ३ शेला, ४ अंजना, ५ रिट्ठा, ६ मघा, ७ माघवती।

नरक के ७ गोत्र—१ रत्नप्रभा, २ शर्करप्रभा, ३ वालुप्रभा, ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ तमस्तमाप्रभा—

सात पर्याप्त और सात अपर्याप्तके भेदसे नरकके १४ भेद बन जाते हैं।

नरकोंके पाथड़े और नरक आवासकी गणना

पहली नरकमें—१३ पाथड़े और ३०,००,००० नरकावास हैं।

दूसरी नरकमें—११ पाथड़े और २५,००,००० नरकावास हैं।

तीसरी नरकमें—९ पाथड़े और १५,००,००० नरकावास हैं।

चौथी नरकमें—७ पाथड़े और १०,००,००० नरकावास हैं।

पांचवी नरकमें—५ पाथड़े और ३,००,००० नरकावास हैं।

छट्ठी नरकमें—३ पाथड़े और ९९,९९५ नरकावास हैं।

सातवीं नरकमें—१ पाथड़ा और पांच नरकावास हैं।

तिर्यञ्चके ४८ भेद

६ कायके नाम—१ इन्दी स्थावर काय, २ विंवी स्थावर काय, ३ सप्पि स्थावर काय, ४ सुमति स्थावर काय, ५ पयावच्च स्थावर काय, ६ जंगम काय।

इनका अर्थ—१ इन्द्रकी आज्ञा पृथ्वी की ली जाती है।
२ प्रतिविम्व पड़ता है, अतः वह पानी है।
३ घी जैसे पदार्थोंको गला देने वाला अग्नि है।
४ गर्मीमें सुमति-सुख-शान्ति देता है, अतः वायु है।
५ वच्चेकी भांति वढ़ता है, दूध निकलता है, आर्यजनका आहार है, अतः वनस्पति है।
६ जंगममें वेंद्रिय, तेंद्रिय, चोंद्रिय, पंचेंद्रिय गर्भित हैं।

६ कायके गोत्रोंके नाम

पृथ्वी काय

जिस प्रकार मनुष्यके शरीरका ज़ख्म स्वयं भर जाता है, इसी प्रकार खुदी हुई खानें खुद भर जाती हैं। जिस प्रकार नंगे पैरों चलनेसे मनुष्यके पैरोंके तलिए घिस जाते हैं उसी प्रकार वढ़ते भी जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य-पशु-पक्षियों तथा सवारीके आने जानेसे पृथ्वी भी सदैव घिसती रहती है और वढ़ती रहती है। जिस प्रकारसे वालक वढ़ कर वड़ा हो जाता है इसी प्रकार पर्वत पहाड़ भी धीरे २ नित्य वढ़ते हैं। मनुष्यको यदि लोहा पकड़ना हो तो मनुष्यको लोहेके पास

जाना पड़ता है। नव लोह-चुम्बक नामक पत्थर अपने स्थान पर रह कर अपनी चेतना शक्तिसे लोहेको अपनी तरफ खैंच लेता है। मनुष्यके पेटमें पथरी रोग हो जाता है, वह जीवित पत्थर होनेके कारण नित्य बढ़ता है। मनुष्यके पेटमें काष्ठोदर रोग हो जाता है और उससे काठा पत्थर सा पेट बन जाता है और नित्य बढ़ता रहता है। क्योंकि वह भी एक तरहका जीवित पत्थर होता है। मछलीके पेटमें रहा हुआ मोती भी एक प्रकारका पत्थर है और वह नित्य बढ़ता है। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरकी हड्डी में जीव होता है, इसी तरह पत्थरमें भी जीव होता है।

अप्‌काय

जिस प्रकार पक्षीके अंडेमें प्रवाही पदार्थ पंचेन्द्रिय पक्षीका पिंड स्वरूप है। इसी भांति पानीके जीव भी एकेन्द्रिय जीवोंका पिंड रूप है।

मनुष्य तथा तिर्यंच गर्भावस्थाके आरम्भमें वह प्रवाही पानीके रूपमें होता है, इसी तरह पानीमें भी जीव जानना चाहिये।

जिस प्रकार शरदीमें मनुष्यके मुंहमेंसे बाफ निकलता है इसी प्रकार कुए और नदियोंके पानीमेंसे भी शीतकालमें बाफ निकलता है।

जिस रीतिसे गर्मीमें मनुष्यका शरीर ठंडा हो जाता है उसी तरह गर्मीकी मौसिममें कुएँका पानी ठंडा हो जाता है।

जिस प्रकार मनुष्यकी प्रकृतिमें शीतलता और उष्णता होती है, इसी तरह पानीकी भी ठंडी और गर्म प्रकृति होती है।

मनुष्यके शरीर पर ठंडकका असर जब पड़ता है तब ठंडकसे शरीर अकड़ जाता है, अंगोपांग सब ऐंठ जाते हैं। इसी प्रकार शीतकालमें तलावका पानी अकड़ जाता है, और बर्फ बनकर ऐंठ जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था, जैसे नवीन रूप अवस्थाएं धारण करता है, इसी प्रकार पानी भी वाष्प, बर्फ, और वर्षा आदि अनेक रूप धारण करता है। जैसे मनुष्यका देह माताके गर्भमें पकता है, इसी तरह पानीभी छठे मासमें बादलोंमें गर्भके रूपमें परिपाक कालको पाकर वर्षाका रूप धारण करता है।

जिस प्रकार मनुष्यका कच्चा गर्भ किसी समय गल जाता है, इसी तरह पानीका कच्चा गर्भ भी गल जाता है, जिसे ओले-करा-गड़े पड़ना भी कहते हैं।

तेऊकाय

जैसे मनुष्य श्वासोच्छ्वासके बिना जी नहीं सकता, इसी प्रकार अग्नि भी श्वासोच्छ्वासके बिना जीवित नहीं रह सकता। क्योंकि पुराने बंद कुएँमें दीपक एकदम बुझ जाता है। जिस भूमि गृहको कई वर्षोंमें खोला हो, उसमें दीपक तुरन्त बुझ जाता है। अतः स्वयं सिद्ध है कि अग्नि भी श्वांस लेता है।

जिस प्रकार ज्वरमें मनुष्यका शरीर गर्म रहता है, इसी प्रकार अग्निके जीव भी गर्म रहते हैं।

मर जाने पर मनुष्यका शरीर जिस प्रकार ठंडा पड़ जाता है, इसी तरह अग्निके जीव भी मर जानेके बाद ठंडे पड़ जाते हैं।

जिस प्रकार आगिया (पटबीजना) के शरीरमें कुछ प्रकाश होता है, इसी प्रकार अग्निके जीवोंमें भी प्रकाश होता है।

जिस प्रकार मनुष्य चलता है, इसी तरह अग्नि भी चलता है यानी खुब फैलता है और बढ़ता चला जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य ऑक्सीजन (प्राणवायु) हवा लेता है और कार्बन (विषवायु) बाहर निकालता है, इसी प्रकार अग्निभी ऑक्सीजन हवा लेकर कार्बन हवा बाहर निकालता है।

जिस प्रकार मनुष्यको गर्मी पाकर अश्रु आजाते हैं, इसी प्रकार गंधक मिले अग्निमेंसे पानी निकलता है। ज्वालामुखी पहाड़ोंकी ज्वालाओंमें अक्सर यह अनुभव किया गया है।

वायुकाय

हवा हजारों कोस तक स्वतन्त्र रूपमें भागी चली जाती है।

हवा अपने चैतन्य बलसे विशालकाय वृक्षों और बड़े २ महलोंको गिरा देता है।

हवा अपना शरीर छोटेसे बड़ा बना लेता है। वर्तमानमें वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि हवामें 'थ्रेकसस' नामके सूक्ष्म जन्तु उड़ते हैं। और वे इतने सूक्ष्म हैं कि सुईके अग्रभाग जितने स्थानमें १,००,००० जन्तु सुखसे आरामके साथ बैठ सकते हैं।

वनस्पति काय

मनुष्यका जन्म माताके गर्भमें रहनेके बाद होता है, इसी प्रकार वनस्पतिके जीव भी पृथ्वी माताके गर्भमें अमुक समय तक रहनेके बाद फिर बाहर निकलते हैं।

जिस प्रकार मनुष्यका शरीर नित्य बढ़ता है, इसी प्रकार वनस्पतिका शरीर भी नित्य प्रति बढ़ता है।

जिस प्रकार मनुष्य बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थाका उपभोग करता है, इसी प्रकार इन तीनों अवस्थाओंका उपभोग वनस्पति भी करती है।

जिस प्रकार मनुष्यके शरीरको काटनेसे खून निकलता है, इसी प्रकार वनस्पतिका शरीर काटनेसे उसमेंसे भी विविध रंगके प्रवाही पदार्थ निकलते हैं।

जिस प्रकार खुराक मिलनेसे मनुष्यका शरीर पुष्ट होता है, और न मिलनेसे सूख जाता है। इसी प्रकार वनस्पति भी खाद और पानीकी खुराक मिलनेसे बढ़ती है, विकास पाती है और उसके अभावमें वह सूख जाती है।

जिस प्रकार मनुष्य श्वांस लेता है, उसी प्रकार वनस्पति भी श्वांस लेती है।

दिनमें कार्बन हवा लेकर रातमें वनस्पति ऑक्सीजन हवा बाहर निकालती है।

जिस तरह कितनेक मनुष्य मांस खाते हैं, मांसाहारी होते हैं, इसी तरह कई वनस्पति भी मक्खी, पतंग आदि नाना जीवों

का सत्व अपने पत्तोंके द्वारा चूस लेती है या स्वाद लेकर हवाके द्वारा मांसाहार करती है।

अंगूर और नेबकी जड़ोंमें मछली या मरे हुए पशुका स्वाद दिया जाता है।

चिन्हार्वर्ता अनारकी जड़ें खूनमें सींची जाती हैं। भांगमें काले सांपको गाड़नेसे भांगमें भी विषका असर हो जाता है। उसके ४ पत्ते भी ४० आदमियोंको भारी नशा दे सकते हैं।

कीटक भक्षी-वनस्पति

यह दो चार हिंसक क्रिया करने पर वह अपने पत्र नष्ट कर देती है। यह इङ्गलैंड, आसाम, बर्मा, छोटा नागपुर, हुबलीमें होता है।

हिंसक वनस्पति

काई वनियामें हिंसक-वनस्पति ३ चार क्रिया करके नष्ट हो जाती है। यह एक अमेरिकन विज्ञानवेत्ता मि० ब्रिटका कहना है।

भेरी वनस्पति

इस वनस्पतिके पत्तोंके मिलनेसे घड़ेका आकार बन जाता है, और कीड़ा, पतंग आदि जन्तु जब उसमें घुसते हैं, तब तुरन्त मर जाते हैं और वह फिर गंदी हो कर नष्ट हो जाती है। यह अमेरिकामें होती है।

घड़ा वनस्पति

इसी तरह घड़ा वनस्पति भी छोटे २ कीड़े खाकर नष्ट हो जाती है।

मनुष्य पशुकी तरह वनस्पतिसे भी दूध निकलता है। जिनमें कोई दूध पौष्टिक और कोई दूध विषयुक्त होता है।

मक्खन बनाने वाली वनस्पति

अफ्रीकाकी एक वनस्पतिके बीज पानीमें पक कर मक्खन बन जाते हैं।

तुख्मलंगा

भारतमें तुख्मलंगा वनस्पतिके बीज भी हमने ऐसे ही होते देखे हैं।

ज्ञान

मनुष्यकी तरह वनस्पतिमें भी ज्ञान होता है, परन्तु बहुत कम ज्ञान होता है।

समय बताने वाली वनस्पति

सूर्य मुखी फूल बादलोंमें भी दिनका अमुक ज्ञान करा देता है। 'टिहाटी' वनस्पतिमें सवेरे श्वेत दोपहरमें लाल और रातमें आस्मानी पानी बनकर समयकी सूचना किया करता है।

गिरने वाली खजूर

मद्रासमें खजूरका एक वृक्ष मध्य रातमें गिरने लगता है, और दोपहर तक सो जाता है, मध्यान्हके बाद फिर खड़ा होने लगता है और आधी रात तक पूर्णतया खड़ा हो जाता है।

रोगनाशक वनस्पति

दक्षिण महाराष्ट्रके कुरुकीपुर गांवमें तलावके तट पर एक झाड़ है। जिसके नीचेका पानी और पत्तोंका सेवन करनेसे अनेक रोग नष्ट होते हैं।

प्रकाशक वनस्पति

अमेरिकाके तिवाड़ी प्रान्तकी वस्तीके पास सात फ़ीट ऊंचा 'डाकी' नामक वृक्ष एक मील तक रोशनी देता है। जिसमें बारीक से बारीक अक्षर पढ़े जा सकते हैं।

सुनहरी वृक्ष

वृन्दावनके शेठके घर पर और रामेश्वरम्‌के देव मन्दिरमें गरुड़ स्तम्भ सोनेके ताड़ हैं, और सुना है कि चांदीके ताड भी उग आए हैं।

नाना प्रकृति वाली वनस्पति

जिस प्रकार मनुष्यकी अच्छी बुरी शान्त क्रूर आदि कई प्रकारकी प्रकृति होती है। इसी प्रकार कांचीपुरम् (मद्रास) के सदाफला नामक आमकी ४ शाखाएं चारों दिशाओंमें फैली हुई हैं। जिनमें अनुक्रमसे खट्टा, मीठा, तीखा, कड़वे स्वादके आम लगते हैं। यह आमका वृक्ष पहले नित्य फल देता था।

गोला वृक्ष

गीनीमें गोला वृक्ष है, जिसका फल ज़मीन पर फूट कर तोपके

गोले जैसा शब्द करता है। इसका झाड़ ६० फीटका ऊंचा होता है। कहा जाता है कि इसके सामने बैठनेसे बालकका दिल मज़बूत हो जाता है।

वायु शोधक फूल

जिस प्रकार मनुष्य मैले कपड़ेको धोकर साफ बना लेता है, इसी प्रकार फिलीपाइनमें वायु शोधक फूल ६ फिटका लम्बा मिला है।

कुमोदनी

कुमोदनी पानीको निर्मल बनाती है।

हँसने वाली वनस्पति

मनुष्यकी तरह हँस-मुखताका गुण वनस्पति में भी होता है। अभी कोलाईके दरियाई बागमें ८० फिट ऊंचा गुलाबका फूलदार वृक्ष ५०,००० फूल प्रति वर्ष देता है ।

दीर्घायु वनस्पति

अमेरिकाके न्यूयार्क नगरके दूसरे प्रेसिडेंट मि० जॉन एडमकी स्त्रीने १४६ वर्ष पूर्व एक गुलाबका वृक्ष लगवाया था। यह अपने गाममें ही लगाया था जो अब तक फूल देता है।

लज्जा करने वाली वनस्पति

मनुष्य और स्त्रीकी तरह जल्दी ही लज्जित और संकुचित होनेवाली वनस्पति कर स्पर्शसे लजा जाती है।

लड़ाका और क्रोधी वनस्पति

मनुष्य जिस प्रकार स्वार्थसे क्रोधमें आकर प्रतिद्वन्द्वीको मारने दौड़ता है इसी प्रकार अफ्रीका का क्रोधी वृक्ष अपनी छायामें आने वालेके ऊपर अपनी शाखाएँ गिराकर उसके शरीरमें कांटे चुभोकर प्राण लेनेके बाद शांत होता है।

डरने वाली वनस्पति

ज़वागल वनस्पति हथेली पर ज्वर पीड़ित मनुष्यकी तरह कांपती है। वह मनुष्यके गर्म स्पर्शसे डर जाती है। यह कश्मीरमें होती है।

अपेक्षक गुण वाली वनस्पति

जिस प्रकार मनुष्य अपने इष्ट मित्रके आने पर प्रसन्न होता है, और उसके वियोगका कष्ट मानता है, इसी प्रकार चन्द्र मुखी फूल चन्द्रके सामने खिल जाता है। सूर्यमुखी फूल सूर्य के सामने खिलता है। और उनके अस्त होने पर संकुचित हो जाता है। यह सब उसकी चैतन्यता का परिणाम है।

त्रसकाय

दो, तीन, चार, और पांच इन्द्रिय वाले प्राणी तो विश्व विख्यात हैं ही। जिनमें भी चेतनाका विलक्षण ज्ञान पाया जाता है। और वे मनुष्यों पर अनेक विध उपकार करते हैं।

हलकारे कबूतर

सन्देश पहुंचाने वाले कबूतर एक मिनटमें १२१ गज उड़ते हैं, घंटे भर में ५४० मीलका सफर कर सकते हैं। कितनेक ६३६ माइल की गति वाले भी होते हैं, जिनकी आयु १६ वर्ष तक की होती है।

ऊंटके नाककी गन्धकी विशेषता

ऊंट अपने नाक द्वारा तीन मीलके अन्दर तकके तालावको जान सकता है।

वोलोकी नकल

अमेरिकामें एक जातिका पक्षी दूसरे पक्षीके शव्दकी नक़ल कर सकता है।

खरगोश

खरगोश अपने वालोंसे अपने वच्चोंके लिये शय्या वना लेता है।

अक्षर बनने वाला सर्प

लन्दनके एक मदारीके पास इल (जल सांप) ऐसा पढ़ गया है कि—मदारीकी आज्ञानुसार अपने शरीरकी आकृति A. B. C. D. जैसी बना लेता है।

हरटका बैल

हरटका बैल सौ चक्कर पूरे होजाने पर खड़ा हो जाता है।

वकरियोंका ज्ञान

यदि कुआं मिट्टीसे भरदिया गया है, और जमीनके बराबर हो कर भूगर्भ-गुप्त हो गया है। वहां बकरियां घेरा डालकर बैठेंगी उनकी आंखें कितनी तेज हैं।

गऊओंका घेरा

डांगके मुल्कमें सिंहके आने पर गऊएं घेरा बनाकर ग्वालेको बीच में कर लेती हैं। और सींगोंके प्रहार मार मार कर सिंहको भगा देती हैं। और मनुष्यकी जान बचा लेती हैं। इसी भांतिकी अनेक विशेषताएं नाना तिर्यंचोंमें पाई जाती हैं। जिनके ४८ भेद इस प्रकार हैं।

पृथ्वीकाय

पृथ्वी कायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

अपकाय

अपकायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

तेजस्काय

तेजस्कायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त।

वायुकाय

वायुकायके ४ भेद—१ सूक्ष्म, २ बादर, ३ पर्याप्त, अपर्याप्त ४।

वनस्पतिकाय

वनस्पतिकायके ६ भेद--१ सूक्ष्म, २ साधारण, ३ प्रत्येक इन तीनोंका पर्याप्त और अपर्याप्त कुल ६।

पृथ्वीकायके भेदान्तर नाम

मणि, रत्न, मूंगा, हिंगलुक, हड़ताल, मनशिल, पारा, सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांग, सीसा, जरता, खड़िया, गेरू, अभ्रक, खार, नमक, काली-पीली मिट्टी, खानका खुदा हुआ कोयला आदि अनेक भेद पृथ्वीके पाये जाते हैं।

पानी

कुएँ, तालावका पानी, ओस, वरफ, ओले, वर्षाका पानी, धुंध, समुद्र जल, घनोदधि आदि सब जल सजीव हैं।

आग

काठकी आग, अग्नि कण, उल्का, वज्रकी आग, बिजलीकी आग, लोहा पत्थर घर्षण करनेसे जो आग निकलती है इत्यादि सब आग सजीव हैं।

हवा

उद्भ्रामक वायु (वंटोलिया, वगुला) मन्द वायु, आंधी, गूञ्जने वाला वायु, घनवात, तनुवात आदि वायु सजीव हैं। घनवात जमे घी की तरह गाढ़ा होता है, तनुवात तपे घी की तरह तरल है।

घन वात स्वर्ग तथा नरक पृथ्वीका आधारभूत है। तनुवात नरक, पृथ्वीके नीचे है।

साधारण वनस्पति

एक शरीरमें अनन्त जीव होने को साधारण वनस्पति कहते हैं। वे कन्द, आलू सूरन, मूली का कन्द आदि। अंकुर, नई कूंपल, पत्रकी नीलन, फूलन, नागवली, अदरक, हल्दी, सौंठ, गाजर, आदि सब अनन्त जीव पिंड हैं। नागरमोथा, बथुआ, पालक, जिनमें बीज न आए हों ऐसे कोमल और कच्चे फल, जिनमें नसें न प्रगट हुई हों, सन आदिके पत्ते, थोहर, घीकुवार, गुग्गुल तथा काटने पर भी देनेसे उगने वाली गुर्च आदि सब साधारण वनस्पति हैं। इन्हें अनन्तकाय और बादर निगोद कहते हैं। ये सब गीली वनस्पतियां सजीव हैं।

अनन्तकायका लक्षण

जिनकी नसें, जोड़, गांठें, दीख नहीं पड़तीं। टूटनेके बाद समान भाग, यानी बड़ी हुई टूटती है। जिनमें तन्तु न हों, जिनके बारीक से बारीक टुकड़े तक उग आते हैं। मूल, कन्द, स्कन्द, शाखा, प्रशाखा, त्वचा, पत्र, फूल, फल, बीज आदि ये सब अनन्तकाय होते हैं।

प्रत्येक वनस्पति

जिसके एक शरीरमें एक जीव हो, या संख्यात असंख्यात तक हों वह प्रत्येक वनस्पति है। वे फूल, फल, छाल, काष्ठ, पत्र, बीज आदि हैं।

इनका आयुष्य

प्रत्येक वनस्पतिको छोड़ कर पांचो स्थावरोंके जीव यानी सूक्ष्म जीवोंकी आयु अन्तर्मुहूर्त है। ये आंखों द्वारा नहीं दीख सकते।

अन्तर्मुहूर्त क्या है ?

नव समयसे लगाकर एक समय कम दो घड़ी जितने कालको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। नव समयोंका अन्तर्मुहूर्त सबसे छोटा अर्थात् जघन्य होता है। और दो घड़ीमें एक समय कम हो तब वह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। बीचके कालमें नव समयोंसे अगाड़ी एक एक समय बढ़ाते जांय वह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक असंख्य अन्तर्मुहूर्त होते हैं।

समय क्या है ?

यह इतना सूक्ष्म काल है कि जिसका विभाग सर्वज्ञ द्वारा भी नहीं होता। जवान आदमी जब किसी पुराने कपड़ेको फाड़ता है तब, जब कि एक तार टूट कर दूसरा तार टूटता है उतने समयमें असंख्य समय लग जाते हैं। और मुहूर्त ४८ मिनटका होता है।

विकलेन्द्रिय

विकलेन्द्रियोंके ६ भेद—२, ३, ४ इन्द्रिय, इन तीनोंका पर्याप्त और अपर्याप्त। सब मिलकर ६। पांच स्थावरोंके २२ और विकलेन्द्रियोंके ६, सब मिलकर २८ भेद तिर्यञ्चोंके हुए।

पञ्चेन्द्रियके २० भेद

※ जलचर, ⁑ स्थलचर, + खेचर, × उरपुर, ÷ भुजपुर ।

पांच संज्ञी, पांच असंज्ञी, इन दशोंका अपर्याप्त और पर्याप्त । इस प्रकार २० भेद पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके होनेपर, तिर्यंचोंके सब मिल कर ४८ भेद पूर्ण हुए ।

मनुष्योंके ३०३ भेद

असि—तलवार आदि शस्त्र चलानेका कर्म ।

कृषि—खेती-बाड़ीका कर्म ।

खेत—जिस भूमिमें हल चलाया जाता है ।

सेत्र—जिसे पानी द्वारा सींचा जाता है ।

अवखेत—जहां विना बोए खड़ अनाज होता है ।

मषी—लिखने, पढ़ने, गणित करनेका कर्म ।

साधु, साध्वी, धर्म, राजनीति कर्म ।

पुरुषकी ७२ कला सीखनेका कर्म ।

स्त्रीकी ६४ कला सीखनेका कर्म ।

※ मच्छ, कच्छ, मगर, गाह, सुंसुमारादि ।

⁑ एक खुरवाले, दो खुरवाले, गोल पैरवाले, पंजोंवाले, आदि ।

+ चर्मपक्षी, लोमपक्षी, संकोचपक्षी, विततपक्षी ।

× सांप, अजगर, महोरग, आशालिकादि ।

÷ गोह, नेउला, गिलहरी, चूहा, छछून्दरादि ।

विज्ञान—नाना वस्तुओंको मिलाकर नाना वस्तुओंका आविष्कार करनेका कर्म।

शिल्प—सब प्रकारकी दस्तकारीसे पेट पालनेका कर्म।

कर्मभूमि

इत्यादि कर्म जहां विद्यमान हों वे मनुष्य कर्मभूमिके होते हैं।

अकर्मभूमि

जहां ऊपर लिखी बातें न मिलती हों वे मनुष्य अकर्मभूमिके होते हैं।

कर्मभूमिक १५ हैं

५ भरतक्षेत्र, ५ ऐरावर्त, ५ विदेह ये १५ क्षेत्र कर्मभूमि मनुष्योंके हैं।

जम्बूद्वीपमें

१—भरत, १—ऐरावर्त, १—विदेह, ये तीन क्षेत्र जम्बूद्वीपमें पाये जाते हैं।

धातृखंडके ६ क्षेत्र

२—भरत, २—ऐरावर्त, २—विदेह।

पुष्करार्धके ६ क्षेत्र

२—भरत, २—ऐरावर्त, २—महाविदेह। सब मिलकर १५ कर्मभूमि क्षेत्र होते हैं।

तीस अकर्मभूमि क्षेत्र

५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक वर्ष, ५ हैमवर्त, ५ हैरण्यवर्त। ये सब तीस हैं।

जम्बूद्वीपके क्षेत्र

१—देवकुरु, १—उत्तरकुरु, १—हरिवर्ष, १—रम्यक वर्ष, १—हैमवर्त, १—हैरण्यवर्त।

धातुखंडके क्षेत्र

२—देवकुरु, २—उत्तरकुरु, २—हरिवर्ष, २—रम्यकवर्ष, २—हैमवत, २ हैरण्यवर्त।

पुष्करार्धके क्षेत्र

२—देवकुरु, २—उत्तरकुरु, २—हरिवर्ष, २—रम्यक वर्ष, २—हैमवर्त, २—हैरण्यवर्त।

सब मिलकर २॥ द्वीपमें अकर्मभूमि मनुष्योंके ३० क्षेत्र हैं।

अन्तर्द्वीपोंके नाम

१—एगरूवा, २—अभासिया, ३—वेसाणिया, ४—णंगोलिया, ५—हयकण्णा, ६—गयकण्णा, ७—गोकण्णा, ८—सकुलिकण्णा, ९—आयंसमुहं, १०—मिढ्मुहं, ११—अयोमुहे, १२—गोमुहे, १३—आसमुहं, १४—हत्थिमुहं, १५—सीहमुहं, १६—वाघमुहे, १७—आसकन्ने, १८—हत्थिकन्ने, १९—अकन्न, २०—कण्ण पाउरण, २१—उक्कामुहे, २२—मेहमुहे, २३—विज्जुमुहे, २४—विज्जुदंते, २५—घणदंते, २६—लट्ठदंते, २७—गुढ़दंते, २८—सुद्धदंते।

अन्तर्द्वीप कहां हैं ?

जम्बूद्वीपके दक्षिणकी ओर चूलहेम पर्वत है, और उत्तर दिशामें शिखरी पर्वत है, इन दोनों पर्वतोंमें प्रत्येक पर्वतकी ४-४ दाढाएँ हैं। एक-एक दाढा पर्वतपर सात-सात क्षेत्र हैं। इसलिये इन्हें अन्तर्द्वीप कहते हैं। और उक्त दोनों पर्वतोंपर २८-२८ अन्तर्द्वीप हैं। और फिर दोनों पर्वतोंपर ५६ अन्तर्द्वीप हैं।

१—३०० योजनका अन्तर, ३०० योजनका द्वीप।

२—४०० योजनका अन्तर, ४०० योजनका द्वीप।

३—५०० योजनका अन्तर, ५०० योजनका द्वीप।

४—६०० योजनका अन्तर—६०० योजनका द्वीप।

५—७०० योजनका अन्तर—७०० योजनका द्वीप।

६—८०० योजनका अन्तर—८०० योजनका द्वीप।

७—९०० योजनका अन्तर—९०० योजनका द्वीप।

सबका जोड़ ८४०० योजनका अन्तर और ८४०० योजनका क्षेत्र होता है।

इनका वर्णन कहां है ?

जम्बूद्वीपके दोनों पर्वतोंकी सीमा पर तथा दोनों पर्वतोंकी संध पर लवण समुद्रमें ५६ अन्तर्द्वीप बताए गये हैं। इनका पूरा वर्णन जीवाभिगम सूत्रमें है।

ये २८ पूर्व और २८ पश्चिम में होनेसे ५६ हुए।

५६ अन्तर्द्वीप।

३० अकर्मभूमि।

१५ कर्मभूमि।

सब मिलकर १०१ होते हैं।

१०१ पर्याप्त हैं।

१०१ अपर्याप्त हैं।

इस तरह २०२ संज्ञी मनुष्योंके भेद हैं।

सम्मूर्छिम-असंज्ञी-मनुष्य

इन ही १०१ क्षेत्रोंमें सम्मूर्छिम, असंज्ञी, मनुष्य अपर्याप्त और १४ स्थानोंमें पैदा होते हैं।

१४ स्थानोंके नाम

१—उच्चारेसुवा—मलमूत्रमें उत्पन्न होते हैं।

२—प्रस्रवणेसुवा—लघुशङ्कामें भी होते हैं।

३—खेलेसुवा—कफमें होजाते हैं।

४—संघाणेसुवा—नाक के मलमें पैदा होते हैं।

५—वंतेसुवा—वमनमें उत्पन्न होते हैं

६—पित्तेसुवा—पित्तके निकल जाने पर उसमें होते हैं।

७—पूएसुवा—रसी, राधमें हो जाते हैं।

८—सोणिएसुवा—खूनमें भी होजाते हैं।

९—सुक्केसुवा—वीर्यमें होते हैं।

१०—सुक्कपोग्गलपरिसाडेसुवा—वीर्यादिक पुद्गल फिर गीला होने पर होते हैं।

११—विगत जीवकलेवरेसुवा—अन्तर्मुहूर्तके बाद मृतकमें जीव हो जाते हैं।

१२—इत्थिपुरिससंजोगेसुवा—स्त्री पुरुषके संयोगमें भी उत्पन्न होते हैं।

१३—नगर निद्धवणेसुवा—नगरकी मोरियोंमें भी हो जाते हैं।

१४—सव्वेसु चेव असुइ ठाणेसुवा—अङ्गोपांगादिक सब अशुचि स्थानोंमें हो जाते हैं। ये भी १०१ ही होते हैं। इनके मिलाने पर मनुष्योंके ३०३ भेद होते हैं।

१९८ भेद देवोंके होते हैं

भुवनवासी देव १० हैं।

१ असुर कुमार—१ नागकुमार—३ सुवर्ण कुमार—४ विज्जु कुमार ५ अग्गिकुमार—६ दीवकुमार—७ उदही कुमार—८ दिसा कुमार ९ पवन कुमार—१० थणिय कुमार।

१६ व्यंतर

१ पिशाच—२ भूत—३ यक्ष—४ राक्षस—५ किन्नर—६ किम्पुरुष—७ महोरग—८ गंधर्व—ये उच्च जातिके होते हैं। ९ आणपन्नि—१० पाणपन्नि—११ इसिवाय—१२ भूयवाय १३ कंदी—१४ महाकंदी—१५ कुहंड—१६ पतंगदेव।

१० प्रकारके ज्योतिषी देव

१ चन्द्रमा—२ सूर्य—३ ग्रह—४ नक्षत्र—५ तारे, जिनमें पांच चलते फिरते हैं, और पांच स्थिर हैं। अढ़ाई द्वीपमें चलने फिरने वाले हैं, और अढ़ाई द्वीपसे बाहर स्थिर हैं।

तिर्यक जृम्भक देव

१ अन्नजम्भका—२ पानजम्भका—३ ल्यणजम्भका—४ सयणजंभका—५ वत्थजंभका—६ पुप्फजंभका—७ पुप्फ फलजंभका—८ फलजंभका—९ बीजजंभका—१० आवन्तिजंभका।

१२ कल्प-देवलोक

१ सुधर्मदेव लोक—२ ईशानदेवलोक—३ सनत्कुमारदेवलोक ४ माहेन्द्रदेवलोक—५ ब्रम्हदेवलोक—६ लान्तकदेवलोक—७ महाशुक्रदेवलोक—८ सहस्रारदेवलोक—९ आणयदेवलोक—१० पाण्य देवलोक—११ अरण्यदेवलोक—१२ अच्युतदेवलोक।

इनमें देवोंका कितना-कितना आयुष्य है?

१—देवलोकमें जघन्य १ पल्य, उत्कृष्ट २ सागर।

२—में जघन्य १ पल्यसे अधिक, उत्कृष्ट २ सागरसे अधिक।

३—में जघन्य २ सागर उत्कृष्ठ ७ सागर।

४—में जघन्य २ से अधिक, उत्कृष्ट ७ सागरसे अधिक।

५—में जघन्य ७ सागर, उत्कृष्ट १० सागर।

६—में जघन्य १० सागर, उत्कृष्ट १४ सागर।

७—में जघन्य १४ सागर, उत्कृष्ट १७ सागर।

८—में जघन्य १७ सागर, उत्कृष्ट १८ सागर।

९—में जघन्य १८ सागर, उत्कृष्ट १९ सागर।

१०—में जघन्य १९ सागर, उत्कृष्ट २० सागर।

११—में जघन्य २० सागर, उत्कृष्ट २१ सागर।

१२—में जघन्य २१ सागर उत्कृष्ट २२ सागर।

१२ स्वर्गोंमें विमान संख्या

१—में ३२,००,००० विमान संख्या, २—में २८,००,०००, ३—में १२,,००,०००, ४—में ८,००,०००, ५—में ४,००,०००, ६—में ५०,०००, ७—में ४०,०००, ८—में ६०००, ९—१०—में ४००, ११—१२—में ३००, विमान संख्या।

९ ग्रैवेयकदेवलोक

१—भद्दे, २—सुभद्दे, ३—सुजाय, ४—सुमानस, ५—पियदंसणे, ६—सुदंसणे, ७—अमोहे, ८—संपडीबुद्धे, ९—जसोधरे।

पांच अनुत्तर विमान

१—विजय, २—विजयंत, ३—जयन्त, ४—अपराजित, ५—सर्वार्थसिद्धि।

नव लोकान्तिक देव

१—साइंचे, २—माइच्चे, ३—वह्नी, ४—वरुणी, ५—गन्धतोया, ६—तुसीया, ७—अव्वावाह, ८—अगिच्चा चेव, ९—रिट्ठाय।

तीन किल्विषिक देव

३—पल्यवान्, ३—सागरवान, १३—सागरवान्।

ये कहां रहते हैं ?

३—पल्यवान् ज्योतिष देवोंसे ऊपर, १-२ देवलोकके नीचे रहते हैं।

२०—जीव तथा अजीवके ऊपर द्वेष करनेसे 'प्रद्वेषिकी'।

२१—अपने आपको और दूसरोंको तकलीफ देनेसे 'पारितापनिकी' क्रिया लगती है।

२२—दूसरोंके प्राणोंका नाश करनेसे 'प्राणातिपातिकी'।

२३—खेती बाड़ी आदि करनेसे 'आरम्भिकी'।

२४—धान्यादिके संग्रह तथा उसपर ममता रखनेसे 'पारिग्राहिकी'।

२५—औरोंको ठगनेसे 'मायाप्रत्ययिकी'।

२६—वीतरागके वचनसे विपरीत,मिथ्यादर्शनसे 'मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी' क्रिया लगती है।

२७—संयमके नाशक कषायोंके उदयसे प्रत्याख्यानका न करना 'अप्रत्याख्यानिकी'।

२८—रागादि कलुषित चित्तसे पदार्थोंको देखनेसे 'दृष्टिकी'।

२९—रागादि कलुषित चित्तसे स्त्रियोंका अंग स्पर्श करनेसे 'स्पृष्टिकी' क्रिया लगती है।

३०—जीवादि पदार्थोंको लेकर कर्मबन्धसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रातीत्यकी' कहते हैं।

३१—अपना वैभव देखनेके लिये आये हुए लोगोंकी वैभव विषयक प्रशंसाको सुनकर प्रसन्न होनेसे—तथा घी, तेल आदिके खुले हुए वर्तनोंमें त्रस जीवोंके गिरनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'सामन्तोपनिपातिकी' कहते हैं।

३२—राजा आदिकी आज्ञासे यन्त्र-शस्त्र-अस्त्र आदिके बनाने तथा खींचने आदिसे 'नैशस्त्रिकी' क्रिया कहलाती है।

अजीव-तत्त्व

—⊙⊙—
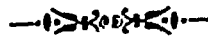
अजीवका लक्षण

जिसमें ज्ञान नहीं होता है।

जड़. अचेतन, अजीव एक ही बात है।

अजीव पांच होते हैं

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल।

पुद्गल

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण पाए जावें उसे 'पुद्गल' कहते हैं।

यह द्रव्य—

अचेतन

है। चैतन्य गुणकी अपेक्षासे अचेतन है।

अनेक अस्तिकाय

अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षासे।

परिणामी

स्वभाव तथा विभाव पर्याय रूप परिणमनकी अपेक्षासे परिणामी है।

असर्वगत

यद्यपि पुद्गल लोकरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे सर्वगत है, तथापि महास्कन्धसे भिन्न शेष स्कन्धोंकी अपेक्षासे वह असर्वगत है।

प्रवेश-रहित

इसका खुलासा जीवतत्वमें आ चुका है, अतः वहांसे देखो।

अकर्ता

यद्यपि पुद्गलादि पांचों द्रव्योंमें अपने २ परिणामोंके द्वारा होनेवाला परिणमनरूप कर्तृत्व पाया जाता है, अर्थात् पुद्गलादिक पांचों ही द्रव्य अपने अपने परिणमनके कर्ता हैं, तथापि वे वास्तवमें पुण्य पापादिके कर्ता न होनेसे अकर्ता ही हैं।

सक्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करने रूप अर्थात् हलन, चलन रूप क्रियाकी अपेक्षासे सक्रिय है।

संख्यात-असंख्यात-व अनन्त प्रदेशी

यद्यपि परमाणु वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे एक प्रदेशी है तथापि वह भूत और भविष्यत् पर्यायकी अपेक्षासे बहुप्रदेशी कहा जाता है। क्योंकि स्निग्ध व रूक्ष गुणके सम्बन्धसे उसमें भी स्कन्ध रूप होनेकी शक्ति है, इसलिये उसको—परमाणुके उपचार से बहुप्रदेशी कहा है।

अनित्य

यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे पुद्गल द्रव्य नित्य है, तथापि अगुरुलघुके परिणमनरूप स्वभावपर्याय तथा विभावपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य कहा जाता है।

अक्षेत्र रूप

इसका खुलासा जीव-तत्त्वके विवेचनमें आ चुका है।

कारण व कार्यरूप

परमाणु व स्कन्ध दोनोंकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्य कारण तथा कार्यरूप है। क्योंकि जिस प्रकार परमाणु द्व्यणुकादिक स्कन्धोंकी उत्पत्तिमें निमित्त है। इसलिये कथंचित् कारणरूप तथा स्कन्धोंके भेद (खण्ड) होनेसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये कथंचित् कार्यरूप हैं। उसी प्रकार द्व्यणुकादिक स्कन्ध परमाणुओंके संघातसे उत्पन्न होते हैं। इसलिए कथंचित् कार्यरूप तथा परमाणुओंकी उत्पत्तिमें निमित्त हैं इसलिए कथंचित् कारण रूप हैं। अथवा पुद्गलके परमाणुओंकी अपेक्षासे ही जीवके शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास ही बनते हैं। इसलिए वह (पुद्गलद्रव्य) कारणरूप कहा जाता है।

मूर्तिक

स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णकी अपेक्षासे मूर्तिक है।

स्थूल

स्कन्धकी अपेक्षासे है।

सूक्ष्म

परमाणुकी अपेक्षासे है।

१ धर्मद्रव्य

जो जीव और पुद्गलको गमन करनेमें सहकारी हो उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे जल गतिक्रिया परिणित मछलीको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। वैसे ही धर्मद्रव्य भी गतिक्रिया परिणित जीव तथा पुद्गलको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिस प्रकार जल ठहरी हुई मछलियोंको जबरदस्ती गमन नहीं कराता है, किन्तु यदि वे स्वयं गमन करें तो जल उनके गमनमें उदासीनरूपसे सहकारी हो जाता है। उसी प्रकार धर्मद्रव्य ठहरे हुए जीव और पुद्गलको जबरन नहीं चलाता, किन्तु यदि वे स्वयं गमन करें तो धर्मद्रव्य उनके गमनमें उदासीन रूपसे सहकारी हो जाता है।

यह द्रव्य—

अचेतन

चैतन्य गुणके अभावकी अपेक्षा अचेतन है। चेतनारूप नहीं है।

एक

अखंडित होनेकी अपेक्षा एक है।

असर्वगत

यद्यपि धर्मद्रव्य लोकाकाशमें व्याप्त होनेकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है, तथापि सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त नहीं होनेके कारण उसे असर्वगत कहते हैं।

अकार्यरूप

यह किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न नहीं होता।

अस्तिकाय

अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षा अस्तिकाय है।

अपरिणामी

यद्यपि धर्मद्रव्य स्वभाव पर्यायरूप परिणमनकी अपेक्षासे परिणामी है तथापि विभावव्यंजन पर्यायरूप परिणमनके अभावकी मुख्यताकी अपेक्षासे वह अपरिणामी कहा जाता है।

प्रवेशरहित

यह जीवतत्वमें समझा दिया गया है।

अकर्ता

इसका विवेचन पुद्गल द्रव्यमें किया गया है।

निष्क्रिय

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करने रूप क्रियाके अभावकी अपेक्षा निष्क्रिय है।

कारणरूप

गतिक्रिया—परिणित जीव और पुद्गलके गतिरूपी कार्यमें उदासीन रूपसे सहायक होनेकी अपेक्षासे कारणरूप है।

नित्य

यद्यपि धर्मद्रव्य अर्थपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है। तथापि व्यंजनपर्यायके अभावकी मुख्यतासे अथवा अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होनेकी अपेक्षासे नित्य कहा जाता है।

अक्षेत्ररूप

इसका खुलासा जीवतत्त्वमें किया जा चुका है।

यह लोकके बराबर—असंख्यात प्रदेशी है। तथा—

अमूर्तिक

भी है। स्पर्श, रस, तथा गन्ध आदि पुद्गल सम्बन्धी गुण न पाए जानेके कारण अमूर्तिक है।

२ अधर्मद्रव्य

जो जीव और पुद्गलको ठहरानेमें सहकारी हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

उदाहरण

जैसे पृथ्वी गति पूर्वक स्थिति रूप क्रियासे परिणित पथिकोंको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाती है, वैसे ही 'अधर्मद्रव्य' गतिपूर्वक स्थितिरूप क्रिया परिणित (युक्त) जीव और पुद्गलको उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिस प्रकार पृथ्वी गमन करनेवाले गाय, बैल, घोड़ा तथा पथिकोंको कभी जबरदस्तीसे नहीं ठहराती है किन्तु यदि वे स्वयं ठहरें तो पृथ्वी उनके ठहरनेमें

सहकारिणी हो जाती है। उसी प्रकार 'अधर्मद्रव्य' गमन करते हुए जीव और पुद्गलको जबरन नहीं ठहराता है, किन्तु यदि वे स्वयं ठहरें तो 'अधर्मद्रव्य' उनके ठहरनेमें सहकारी हो जाता है।

यह १—अचेतन, २—एक, ३—असर्वगत, ४—अकार्यरूप, ५—अस्तिकाय, ६—अपरिणामी, ७—प्रवेशरहित, ८—अकर्त्ता, ९—निष्क्रिय, १०—नित्य, ११—अक्षेत्ररूप, लोकाकाशके वरावर—असंख्यातप्रदेशी—१२—अमूर्तिक और कारण रूप है—१३।

३ आकाश

जो जीवादिक द्रव्योंको ठहरनेके लिये युगपत् स्थान देता है उसे आकाश कहते हैं। यह १*—द्रव्य-अचेतन, २—एक, ३—अकार्य-रूप, ४—अपरिणामी, ५—अस्तिकाय, ६—प्रवेशरहित, ७—अकर्त्ता, ८—निष्क्रिय, ९—अमूर्तिक, १०—अनन्तप्रदेशी,

---

१ से १२ तक धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेपणोंका सद्भाव वताया है, उसी अपेक्षासे अधर्मद्रव्यमें इन विशेपणोंका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहां धर्मद्रव्य न लगाकर अधर्मद्रव्य समझना चाहिये। १३ स्थितिरूप क्रियासे युक्त जीव और पुद्गलके स्थितिरूपी कार्यमें उदासीन रूपसे सहायक होनेकी अपेक्षासे कारणरूप है।

*१ से १० तक धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेपणोंका सद्भाव वताया गया है उसी अपेक्षासे ही आकाश द्रव्यमें इन विशेपणों-का सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न समझ कर आकाशद्रव्य जानना चाहिये।

११—कारणरूप, १२—सर्वगत तथा १३—क्षेत्ररूप है।

४ काल

जो जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें निमित्त कारण हो, उसे काल कहते हैं।

जैसे कुम्हारके चक्र भ्रमणमें उस चक्रके नीचेकी कीली उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाती है, वैसे ही जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें कालद्रव्य उदासीन रूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिस प्रकार कीली ठहरे हुए चाकको जबरदस्ती भ्रमण नहीं कराती है, किन्तु यदि वह चाक भ्रमण करे तो उसके भ्रमणमें कीली निमित्त कारण हो जाती है। उसी प्रकार कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके परिणमनको जबरदस्ती नहीं कराता है, किन्तु अपनी-अपनी उपादान शक्तिसे युक्त होकर स्वयं परिणमन करनेवाले जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें कालद्रव्य केवल निमित्त कारण हो जाता है।

यह १—द्रव्य अचेतन, २—अनेक अकार्यरूप, ३—अपरिणामी, ४—प्रदेशरहित, ५-अकर्त्ता, ६-निष्क्रिय, ७-नित्य, ८-अक्षेत्ररूप. ९-अमूर्तिक

११—सम्पूर्ण द्रव्योंको युगपत् अवकाश दान देने रूप कार्यकी अपेक्षासे अर्थात् आकाश द्रव्य जीवादिक द्रव्योंके अवगाहरूप कार्योंको करता है। इसलिये वह कारण रूप समझा जाता है। १२—लोक और अलोकमें व्याप्त होनेकी अपेक्षा। १३—सम्पूर्ण द्रव्योंके अवकाश दान देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षासे।

१ से ९ तक धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया गया है उसी अपेक्षासे कालद्रव्यमें भी इन विशेषणोंका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न लगाकर कालद्रव्य लगाना चाहिये।

१०—अनस्तिकाय, ११—एकप्रदेशी, १२—कारणरूप, और १३—असर्वगत है।

ये सब द्रव्य हैं। अतः द्रव्यके लक्षणको कहते हैं।

द्रव्यका लक्षण

द्रव्यका लक्षण वास्तवमें 'सत्' है, जिनवरके सिद्धान्तमें 'सत्' भी द्रव्यका लक्षण कहा है। और 'गुण और पर्यायवान्' को भी द्रव्य कहते हैं, इस प्रकार द्रव्यके दो लक्षण हो जाते हैं। मगर इन दोनों ही लक्षणों में परस्पर कुछ भी विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। क्योंकि कथंचित् नित्यानित्यके भेदसे सत् दो प्रकारका कहा जाता है। (ध्रौव्य की अपेक्षा से सत् नित्य कहा जाता है, तथा उत्पाद-व्ययकी अपेक्षासे अनित्य माना गया है) उनमें से नित्यात्मक अंशसे गुणका और अनित्यात्मक अंशसे पर्यायका ग्रहण होता है। कारण कि—गुणोंमें कथंचित् नित्यत्वकी और पर्यायोंमें अनित्यत्व की मुख्यता है। इसलिए जिस प्रकार 'सद्रव्य-लक्षणम्' इस द्रव्यके लक्षणसे द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध

१०—बहुप्रदेशी न होनेकी अपेक्षासे अनस्तिकाय है। ११—द्वितीयादिक प्रदेशोंके न होनेसे कालद्रव्यको अप्रदेशी भी कहा है। १२—कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके वर्तनारूप कार्यको करता है। इसलिये वह कारणरूप कहा जाता है। १३—यद्यपि कालद्रव्य लोकके प्रदेशोंके बराबर नाना कालाणुओंकी अपेक्षासे सर्वगत कहा जाता है फिर भी एक-एक कालाणुकी अपेक्षा से उसे असर्वगत कहते हैं।

होता है, इसी प्रकार 'गुणपर्ययवद्द्रव्यम्' इस द्रव्यके लक्षणसे भी द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध होता है, अथवा गुणकी और नित्यत्व (ध्रौव्य) की परस्परमें व्याप्ति है। तथा पर्यायकी और अनित्यत्व (उत्पादव्यय) की परस्परमें व्याप्ति है, इसलिए 'द्रव्य गुणवान है। ऐसा कहने से ही 'द्रव्य ध्रौव्यवान है' ऐसा अथवा 'द्रव्यध्रौव्यवान है' ऐसा कहने से ही 'द्रव्य गुणवान है' ऐसा सिद्ध हो जाता है। और "द्रव्य पर्यायवान है" ऐसा कहनेसे ही द्रव्य उत्पाद व्यय युक्त है" ऐसा अथवा "द्रव्य उत्पाद-व्यय युक्त है" ऐसा कहने से ही "द्रव्य पर्यायवान है" ऐसा सिद्ध हो जाता है। अर्थात् सद्द्रव्य लक्षणं" इस द्रव्यके लक्षणमें 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' यह और 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' इसमें 'सद्द्रव्यलक्षणं' यह द्रव्यका लक्षण गर्भित हो जाता है। क्योंकि उपर्युक्त कथनानुसार द्रव्यके दोनों ही लक्षण वाक्योंका एक अर्थ है।

इस प्रकार द्रव्यके दोनों लक्षणोंमें परस्पर अविनाभाव होने से कुछ भी विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। केवल विवक्षावश दो कहे गये हैं। अर्थात् अभेदविवक्षासे 'सत्' द्रव्यका लक्षण कहा गया है। और लक्ष्य लक्षणरूप भेदविवक्षासे 'गुणपर्ययवान' द्रव्यका लक्षण कहा गया है।

सत्‌का लक्षण

जो उत्पाद* व्यय† और ध्रौव्य‡ से युक्त हो उसे 'सत्' कहते हैं।

*—द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते है।

†—द्रव्यकी पूर्वपर्यायके नाशको व्यय कहते हैं।

‡—पूर्व और उत्तर पर्यायमें रहने वाली प्रत्यभिज्ञानकी कारण भूत द्रव्यकी नित्यताको ध्रौव्य कहते हैं।

यद्यपि दण्डसे युक्त जिनदत्त इत्यादि भेद अर्थमें ही युक्त शब्द आता है, तथापि यहाँ पर रूपादिक युक्त घट, हस्तादिक युक्त शरीर तथा सार युक्त स्तंभकी तरह कथंचित् अभेद अर्थमें ही युक्त शब्दको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि उत्पादादिक त्रयात्मक ही सत् है। अर्थात् सत्‌से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भिन्न नहीं हैं। तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे सत् भिन्न नहीं है। किन्तु उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य ये तीनों ही सद्रूप हैं। इसलिए इन तीनोंको ही एक शब्दसे सत् कहते हैं। और ये उत्पादादिक तीनों पर्यायोंमें होते हैं। द्रव्यमें नहीं। किन्तु द्रव्यसे पर्यायें कथंचित् अभिन्न हैं। इसलिए द्रव्यमें उत्पादादि होते हैं ऐसा कहा गया है।

यहाँ पर इतना और समझ लेना है कि—उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनोंके होनेका एक ही समय है भिन्न भिन्न नहीं। जैसे जो समय मनुष्यकी उत्पत्तिका है, वही समय देव पर्यायके नाश तथा देव व मनुष्य दोनों ही पर्यायोंमें जीवद्रव्यके पाए जाने रूप ध्रौव्यका है। अथवा जो समय घट पर्यायकी उत्पत्तिका है वही समय पिंड पर्यायके नाश तथा घट या पिंड दोनों ही पर्यायोंमें मृतिकात्व (मिट्टी-पन) सामान्य धर्ममें पाए जाने रूप ध्रौव्यका है।

गुण क्या हैं ?

द्रव्योंके गुणोंका विवरण सामान्य और विशेष रूपसे कहा जा चुका है उनके नाम वहाँ से जान लेना चाहिए।

सामान्य गुण किसमें कितने पाये जाते हैं ?

एक एक द्रव्यमें आठ-आठ सामान्य गुण होते हैं। पुद्गल

द्रव्यमें दश सामान्य गुणोंमें से चेतना और अमूर्तत्वको छोड़ कर शेषके ये आठ गुण पाये जाते हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें से प्रत्येक द्रव्यमें चेतनत्व और मूर्तत्व इन दो गुणोंको छोड़ कर बाकीके अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ-आठ गुण पाये जाते हैं।

विशेष गुण

स्पर्श, रस, गन्धवर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनाहेतुत्व, वर्तना हेतुत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व इन गुणोंमेंसे पुद्गलमें स्पर्श, रस, गन्धवर्ण, मूर्तत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये ६ विशेष गुण पाये जाते हैं।

धर्मादि चार द्रव्योंमें यानी धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंमें से प्रत्येक द्रव्यमें तीन ३ विशेष गुण पाये जाते हैं।

धर्म द्रव्यके विशेष गुण

धर्मद्रव्यमें गति हेतुत्व, अमूर्तत्व-अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

अधर्म द्रव्यके विशेष गुण

अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुत्व-अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

आकाश द्रव्यके विशेष गुण

आकाश द्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व, और अचेतनत्व, ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

काल द्रव्यके विशेष गुण

काल द्रव्यमें वर्तना हेतुत्व-अमूर्तत्व-अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

अन्तके चेतनत्व-अचेतनत्व-मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये चार गुण स्वजातिकी अपेक्षासे सामान्य गुण तथा विजातिकी अपेक्षासे विशेष गुण कहे जाते हैं।

१—जीव अनन्तानन्त हैं इसलिये चेतनत्व गुण सामान्य रूपसे सब जीवोंमें पाये जानेके कारण वह जीवका सामान्य गुण कहा जाता है। और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांच द्रव्योंमें न पाये जाने के कारण वही (चेतनत्व) गुण जीवका विशेष गुण कहा जाता है।

२—अचेतनत्व गुण सामान्य रूपसे पुद्गलादि पांचों ही द्रव्योंमें पाया जाता है, इसलिये वह उन (पुद्गलादि पांचों द्रव्यों) का सामान्य गुण कहा जाता है। और वह जीवमें नहीं पाया जाता है इसलिये वही अचेतनत्व गुण उन पुद्गलादिक का विशेष गुण कहा जाता है।

३—पुद्गल अनन्तानन्त है, इसलियें मूर्तत्व गुण सामान्य रूपसे सम्पूर्ण पुद्गलोंमें पाये जानेके कारण वह पुद्गल द्रव्यका सामान्य गुण है। और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा कालमें न पाया

जानेके कारण वही (मूर्तत्व) गुण पुद्गल द्रव्यका विशेष गुण कहा जाता है।

४—अमूर्तत्व गुण सामान्य रूपसे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांचों ही द्रव्योंमें पाया जाता है। इसलिये वह उन पुद्गल बिना पांचों द्रव्यों) का सामान्य गुण है। और पुद्गल द्रव्यमें नहीं पाया जाता इसलिये वही (अमूर्तत्व) गुण उनका विशेष गुण कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त चेतनत्वादि चारों ही गुण भिन्न भिन्न अपेक्षा (स्वजाति तथा विजातिकी अपेक्षा) से सामान्य और विशेष गुण कहे जाते हैं। इसलिये उन चेतनत्वादि गुणोंका सामान्य तथा विशेष दोनों ही प्रकारके गुणोंमें पाठ होनेपर पुनरुक्ति दोष भी नहीं आता है।

पर्याय

पुद्गलका विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय

पृथ्वी, जल आदि* नाना प्रकारके स्कन्धोंको पुद्गलका विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय* कहते हैं।

---

*आदि शब्दसे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप, और उद्योत आदिको भी ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ये सब ही पुद्गलकी द्रव्य-व्यंजन पर्याय हैं।

*द्वयणुकादि स्कन्धों द्वारा होनेवाले अनेक प्रकारके स्कन्धोंको यानी द्वयणुकादि स्कन्धरूपसे होनेवाले पुद्गल परमाणुओं के परिणमनको पुद्गलका विभाव द्रव्य-व्यंजन-पर्याय कहते हैं।

पुद्गलका विभाव गुण व्यञ्जन पर्याय

रससे रसान्तर तथा गन्धादिकसे गन्धान्तरादि रूप होनेवाला रसादिक गुणोंका परिणमन पुद्गलकी विभाव, गुण, व्यंजन पर्याय है, अर्थात् द्व्यणुकादि स्कन्धोंमें पाये जानेवाले रूपादिकको पुद्गलकी विभाव गुण पर्याय कहते हैं।

द्व्यणुकादि स्कन्धोंमें एक वर्णसे दूसरे वर्ण रूप, एक रससे दूसरे रस रूप, एक गन्धसे अन्यगन्धरूप और एक स्पर्शसे दूसरे स्पर्श रूप होनेवाले परिणमनको पुद्गलकी विभावगुणव्यंजन पर्याय जानना चाहिये।

पुद्गलका स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जन-पर्याय

अविभागी पुद्गल परमाणु पुद्गलकी यानी शुद्ध परमाणु रूपसे पुद्गल द्रव्यकी जो अवस्थिति है उसके पुद्गल द्रव्यकी स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। क्योंकि जो अनादि अनन्त कारण तथा कार्य-रूप विभाव रहित शुद्ध परमाणु है, उसको ही पुद्गलका स्वभाव द्रव्य पर्याय समझा जाता है।

पुद्गलका स्वभाव-गुण-व्यञ्जन-पर्याय

परमाणु सम्बन्धी एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध, और अविरोधी दो स्पर्श* पुद्गलका स्वभाव गुण व्यंजन

---

* परमाणुमें शीत और उष्णमेंसे एक तथा स्निग्ध व रूक्षमेंसे एक इस तरह दो ही स्पर्श पाये जाते हैं, क्योंकि मृदु आदि शेषके चार स्पर्श अपेक्षाकृत हैं। इसलिये वे परमाणुमें नहीं पाये जाते।

पर्याय है।[1] यानी परमाणुमें जो एक वर्ण, रस, गन्ध और अविरोधी दो स्पर्श पाये जाते हैं। जो अगुरुलघुगुणके निमित्तसे अपने-अपने अविभागी प्रतिच्छेदोंके द्वारा परिणमनशील हैं। उनको पुद्गलका स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय कहते हैं।

किस द्रव्यमें कितनी पर्याय हैं ?

धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य अर्थपर्यायके विषय हैं। अर्थात् इन चारों द्रव्योंमें अर्थपर्याय होती है। और जीव तथा पुद्गलमें व्यंजनपर्याय पाई जाती है। क्योंकि प्रदेशवत्त्व गुणके विकारको व्यंजन या द्रव्यपर्याय कहते हैं। तथा प्रदेशवत्व गुणको छोड़कर अन्य सब गुणोंके विकारको अर्थपर्याय कहते हैं। और उस (गुण पर्याय) के दो भेद हैं। एक स्वभाव गुणपर्याय और दूसरी विभाव गुणपर्याय। इनमेंसे धर्मादि ४ द्रव्योंमें स्वभाव गुण पर्याय और स्वभाव द्रव्यपर्याय होता है। धर्मद्रव्य गतिहेतुत्व अधर्म-द्रव्यमें स्थिति हेतुत्व, आकाशद्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व तथा कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व स्वभाव गुणपर्याय× है, और धर्मादि चारों द्रव्य जिस-जिस आकारसे संस्थित हैं वह-वह आकार उनकी स्वभाव द्रव्य

---

[1] परमाणुमें पाये जानेवाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्शको पुद्गलका स्वभावगुणपर्याय कहते हैं।

× गति, स्थिति, वर्तना और अवगाहन ये चारों क्रमसे धर्म, अधर्म, काल तथा आकाशकी स्वभाव गुण पर्याय हैं।

पर्याय हैं+। तथा जीव और पुद्गलमें स्वभाव और विभाव दोनों प्रकारकी पर्यायें पाई जाती हैं।

पुद्गलसे जीव अलग है

चैतन्यमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्त गुण हैं, और आत्मगुणोंके अतिरिक्त स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द, प्रकाश, धूप, चांदनी, छाया अन्धकार, शरीर, भाषा, मन, श्वासोच्छ्वास तथा काम, क्रोध, लोभ, माया आदि जो कुछ इन्द्रिय और मनके अनुभवमें है वह सब पुद्गलकी रचना है। ये सब विभाव और अचेतन हैं। ये हमारे स्वरूप नहीं हैं, आत्म अनुभवमें एक ब्रह्मको छोड़ कर और कुछ नहीं है। और जब आत्मा अपनी शक्तिको संभालता है और ज्ञान नेत्रोंसे अपने असली स्वभावको परखता है तब आत्माका स्वभाव आनन्द रूप, नित्य निर्मल और लोकका शिरोमणि जानता हैं। तथा शुद्ध चैतन्यका अनुभव करके अपने स्वभावमें लीन होकर सम्पूर्ण कर्मदलको दूर करता हैं। इस प्रयत्नसे मोक्षमार्ग सिद्ध होता हैं। और निराकुलताका आनन्द सन्निकट आ जाता है।

+ जीवादिक छहों द्रव्योंके अपने-अपने स्वभावमें स्थित जो-जो प्रदेश हैं वे वे प्रदेश उनकी स्वभावद्रव्यपर्याय हैं। पर्यायका अर्थ परिणमन है। परन्तु धर्मादिक चारों द्रव्योंके प्रदेशोंमें प्रदेशरूपसे कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसलिये व्यञ्जनपर्याय वास्तविक रीतिसे जीव और पुद्गलमें ही समझना चाहिये। इन चारों द्रव्योंमें व्यञ्जनपर्याय कथन उपचार मात्रसे चारों द्रव्योंमें व्यञ्जनपर्यायका निषेध हो जाता है।

देह और जीव अलग-अलग है

सुवर्णके म्यानमें रखी हुई लोहेकी तलवार सोनेकी कहलाती है; परन्तु जब वह लोहेकी तलवार सोनेकी म्यानसे अलग की जाती है तब लोग उसे लोहेकी ही कहते हैं। अर्थात् शरीर और आत्मा एक क्षेत्रावगाह स्थित है। इसी कारण संसारी जीव भेद-विज्ञानके अभावसे शरीरको ही आत्मा समझ रहे है। परन्तु जब भेद-विज्ञानसे उनकी पहचानकी जाती है तब चिद्का चमत्कार आत्मासे अलग प्रतीत होने लगता है। और शरीरमेंसे आत्मबुद्धि एकदम हट जाती है।

जीव और पुद्गलकी भिन्नता

रूप रस आदि गुण पुद्गलके बताये गये हैं, इनके निमित्तसे जीव अनेक रूप धारण करता है, परन्तु यदि वस्तु स्वरूपका विचार किया जावे तो वह कर्मसे बिल्कुल अलग और चैतन्य स्वरूप है। अर्थात् अनन्त संसार भ्रमण करता हुआ यह जीव नर-नारक आदि जो अनेकानेक पर्यायें प्राप्त करता है वे सब पुद्गल-मय हैं और कर्मजनित हैं। यदि वस्तुगत स्वभावको विचारा जावे तो वे जीवकी पर्यायें नहीं हैं। जीव तो शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निर्विकार, देहातीत और चैतन्यमय है।

जिस प्रकार घीके संयोगसे मिट्टीके घड़ेको घीका घड़ा कहा जाता है, परन्तु घड़ा घी रूप नहीं हो जाता, उसी प्रकार शरीरके सम्बन्धसे जीव छोटा, बड़ा, काला, गोरा आदि अनेक नाम प्राप्त

करता है, परन्तु वह शरीरके समान अचेतन नहीं हो जाता, क्योंकि शरीर अचेतन है, और जीवका उसके साथ अनन्तकालसे सम्बन्ध है तथापि जीव शरीरके सम्बन्धसे कभी अचेतन नहीं होता अर्थात् सदा चेतन ही रहता है।

आत्माका साक्षात्कार

जीव पदार्थ सुख-दुःखकी बाधासे रहित है, इससे निराबाध है। सदा चेतता रहता है, इस कारण चेतन है, इन्द्रिय गोचर न होनेसे अलग है। अपने स्वभावको स्वयं ही जानता है इसलिये स्वकीय है। अपने ज्ञान स्वभावसे चलित न होनेसे अचल है। आदि रहित होनेसे अनादि है। अनन्तगुण रहित है जिससे अनन्त है। कभी नाश न होनेसे नित्य है। और इसका प्रतिपक्षी पुद्गलद्रव्य रसादि सहित मूर्तिमान् है। शेष धर्म, अधर्म, आदिक चार अजीव द्रव्य अमूर्त हैं। जीव भी अमूर्त है, जब कि जीवके अतिरिक्त अन्य भी अमूर्त हैं। तब अमूर्तका ध्यान होनेसे जीवका ध्यान नहीं हो सकता। अतः अमूर्तका ध्यान करना अज्ञानता है। जिन्हें स्वआत्म रसका स्वाद इष्ट है उन्हें मात्र अमूर्तका ध्यान न करके शुद्ध चैतन्य नित्य, स्थिर और ज्ञान स्वभावी आत्माका ध्यान करना चाहिये।

मूर्ख स्वभाव

जीव चेतन है, अजीव जड़ है। इस प्रकार लक्षण भेदसे दोनों प्रकारके पदार्थ पृथक् पृथक् हैं। विद्वान् लोग सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे

उन्हें भिन्न-भिन्न देखते हैं तथा निश्चय करते हैं। परन्तु संसारमें जो मनुष्य अनादि कालसे दुर्निवार मोहकी तीक्ष्ण मदिरासे उन्मत्त हो रहे हैं। वे जीव और जड़को एक ही कहते हैं उनकी यह कुटेव न जाने कब टलेगी।

आत्म ज्ञाताका विलास

इस हृदयमें अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप महाअज्ञानकी लम्बी-चौड़ी एक नाटकशाला है, उसमें और कोई शुद्ध-स्वरूप नहीं दीखता, केवल पुद्गल ही एक बड़ा भारी नाच नचा रहा है। वह अनेक रूप पलटता है, और रूप आदि विस्तारके नाना कौतुक दिखलाता है। परन्तु मोह और जड़से निराला समदृष्टि आत्मा उस अजीव नाटकका मात्र देखनेवाला है। हर्ष तथा और शोक नहीं करता।

भेद विज्ञानका परिणाम

जिस प्रकार आरा काठके दो खंड कर डालता है। अथवा राजहंस जिस प्रकार दूध पानीको अलग कर देता है। उसी प्रकार भेद विज्ञान भी अपनी भेदक शक्तिसे जीव और पुद्गलको जुदा कर डालता है। पश्चात् यह भेद-विज्ञान उन्नति करते-करते अवधि ज्ञान मनःपर्ययज्ञान और परमावधिज्ञानकी अवस्थाको पाता है। और इस रीतिसे वृद्धि करके पूर्ण स्वरूपका प्रकाश अर्थात् केवल ज्ञान हो जाता है जिसमें लोक और अलोकके सम्पूर्ण पदार्थ प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। जिनमें अजीव पदार्थ ५६० होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

अजीव-तत्वके जघन्य १४ भेद हैं ।

धर्मास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश ।

अधर्मास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश ।

आकाशास्तिकायके तीन भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश ।

कालका एक भेद

१—काल ।

पुद्गलास्तिकायके ४ भेद

१—स्कन्ध, २—देश, ३—प्रदेश, ४—परमाणु ।

ये सब मिलकर अजीव तत्वके जघन्य १४ भेद हुए ।

स्कन्ध किसे कहते हैं ?

१४ राजुलोकमें पूर्ण जो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय हैं, वे प्रत्येक स्कन्ध कहलाते हैं । मिले हुए अनन्तपुद्गलपरमाणुओंके छोटे समूहको भी 'स्कन्ध' कहते हैं ।

देश क्या है ?

स्कन्धसे कुछ कम अथवा बुद्धि कल्पित स्कन्धभागको 'देश' कहते हैं।

प्रदेश क्या है ?

स्कन्धसे अथवा देशसे लगा हुआ अति सूक्ष्म भाग (जिसका फिर विभाग न हो सके) 'प्रदेश' कहलाता है।

परमाणु क्या है ?

स्कन्ध अथवा देशसे अलग, प्रदेशके समान अतिसूक्ष्म स्वतन्त्र भाग 'परमाणु' कहलाता है।

धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके परमाणु नहीं होते।

अस्तिकाय क्या है ?

अस्तिका अर्थ है प्रदेश, और कायका अर्थ ४ समूह, प्रदेशोंके समूहको 'अस्तिकाय' कहते हैं।

कालको कालास्तिकाय क्यों नहीं कहा ?

काल द्रव्यका वर्तमान समयरूप एक ही प्रदेश है, प्रदेशोंका समूह न होनेसे आकाशास्तिकायकी तरह 'कालास्तिकाय' नहीं कह सकते।

कालका स्वरूप

समय—जिसका विभाग न हो सके वह 'समय' कहलाता है।

आवलिका—असंख्य समयोंकी एक 'आवलिका' होती है।

मुहूर्त—१६७७७२१६ आवलिकाओंका एक मुहूर्त (४८ मिनिट) होता है।

दिन—३० मुहूर्तका एक अहोरात्रि होता है।

पक्ष—१५ दिनका पक्ष होता है।

मास—२ पक्षका महीना होता है।

१२ मासका एक वर्ष होता है। असंख्य वर्षोंका एक 'पल्योपम' होता है। दस कोड़ाकोड़ी पल्योपमका एक सागरोपम होता है। दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी एक 'उत्सर्पिणी' होती है। इतने ही प्रमाणकी अवसर्पिणी होती है। दोनोंके मिलनेको एक 'कालचक्र' कहते हैं। ऐसे अनन्त कालचक्र बीतने पर एक 'पुद्गल-परावर्तन' होता है।

कोड़ाकोड़ी

क्रोड़को क्रोड़से गुणने पर जो संख्या होती है। उसे 'कोड़ाकोड़ी' कहते हैं।

संठाण पांच होते हैं

१—परिमंडल—चूड़ीके समान गोलाकार।

२—वट्ट—वृत्ताकार, मोदकके समान।

३—त्र्यंस्य—त्रिकोन, सिंघाड़ेकी तरह।

४—चतुरस्त्र—चौकी जैसा चौकोर।

५—आयत—वांसकी तरह लम्बा आकार।

पांच वर्ण

१—काला, २—नीला, ३—पीला, ४—लाल, ५—सफेद।

पांच रस

१—तिक्त, २—कटुक, ३—कषायरस, ४—खट्टारस, ५—मीठा-रस, (लवण मीठे रसमें है)।

२ गन्ध

१—सुगन्ध, २—दुर्गन्ध।

८ स्पर्श

१—कठोर—जैसे पैरका तलुआ कठोर होता है।

२—सुकोमल—कानके नीचेके मांसकी तरह।

३—रूखा—जैसे जीभ चिकनी नहीं होती।

४—चिकना—आंखें चिकनी होती हैं।

५—हल्का—बाल हल्के होते हैं।

६—भारी—हाड़ भारी होते हैं।

७—ठंढा—नाकका अगला भाग ठंढा होता है।

८—गर्म—छाती या कलेजा गर्म रहता है।

परिमंडल संस्थानका भाजन हो, वट्ट संस्थान उसका प्रतिपक्षी हो, तब परिमंडल संस्थानमें २० बातें पाई जाती हैं। जैसे—

५—वर्ण, ५—रस, २—गंध, ८—स्पर्श।

इसी प्रकार वट्ट संस्थानमें २०, त्र्यंसमें २०, चतुरंसमें २०, और आयतनमें २०।

सब मिलकर ५ संस्थानोंके १०० भेद बने हैं।

काले रंगको भाजन बनानेपर २० बोल होंगे।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

नील वर्णके भाजनमें २० बोल पाते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८ स्पर्श।

पीतवर्णके भाजनमें २० बोल पाते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

लाल रंगके भाजनमें २० बोल मिलते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

श्वेतवर्णके भाजनमें २० बोल मिलते हैं।

५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

१—तिक्त रसके भाजनमें २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

२—कडुवे रसके भाजनमें २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

३—कषाय रसके भाजनमें २० बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

४—खट्टे रसके भाजनमें २० बोल पाये जाते हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

५—मीठे रसके भाजनमें २० बोल गर्भित हैं।

५—वर्ण, ५—संस्थान, २—गंध, ८—स्पर्श।

१—सुगन्धके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, ८—स्पर्श।

२—दुर्गन्धके भाजनमें २३ बोल पाये जाते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, ८—स्पर्श।

१—कठोर स्पर्शके भाजनमें २३ बोल होते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ६—स्पर्श।

२—सुकोमल स्पर्शके भाजनमें २३ बोल होते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गंध, ६—स्पर्श।

३—लघु स्पर्शके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श।

४—गुरु स्पर्शके भाजनमें २३ बोल पाये जाते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श।

५—उष्ण स्पर्शके भाजनमें २३ बोल पाये जाते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान २—गन्ध, ६—स्पर्श।

६—शीत-स्पर्शके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श।

७—रूक्ष स्पर्शके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श।

८—स्निग्ध रसके भाजनमें २३ बोल मिलते हैं।

५—वर्ण, ५—रस, ५—संस्थान, २—गन्ध, ६—स्पर्श।

इस प्रकारसे १०० संस्थानोंमें, १०० वर्णोंमें, १०० रसोंमें, ४६ गन्धोंमें, १८४ स्पर्शोंमें।

५३०, कुल इतने भेद अरूपी अजीव-तत्त्वके हुए। मगर पक्ष-

प्रतिपक्षकी सम्भावना स्वयमेव कर ली जानी चाहिये। क्योंकि जहाँ कर्कश स्पर्श है वहाँपर सुकोमल स्पर्श कभी न मिलेगा। इसी भांति संस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शोंके विषयमें भी जान लेना योग्य है।

अरूपी अजीवके ३० भेद

धर्मास्तिकायके ३ भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

अधर्मास्तिकायके तीन भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

आकाशास्तिकायके तीन भेद।

स्कन्ध, देश, प्रदेश।

दशवां कालका भेद।

धर्मास्तिकायके पांच भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक प्रमाण है।

३—कालसे अनादि अनन्त।

४—भावसे वर्ण; गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थानसे रहित।

५—गुणसे चलन गुण स्वभाव (गति लक्षण)।

अधर्मास्तिकायके ५ भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक प्रमाणमें है।

३—कालसे अनादि-अनन्त है।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है।

५—गुणसे स्थिर स्वभाव (स्थिति लक्षण)।

आकाशास्तिकायके ५ भेद

१—द्रव्यसे एक है।

२—क्षेत्रसे लोक-अलोक प्रमाणमें है।

३—कालसे अनादि अनन्त है।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है।

५—गुणसे अवगाहदान लक्षण (अवकाश देना)।

कालद्रव्यके ५ भेद

१—द्रव्यसे १ प्रदेश।

२—क्षेत्रसे २॥ द्वीप प्रमाण।

३—कालसे अनादि अनन्त।

४—भावसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शसे रहित है।

५—गुणसे वर्तना, लक्षण।

इस प्रकार ३० हुए। ५३० रूपी भेद ३० अरूपी भेद सब मिल कर ५६० भेद अजीव-तत्त्वके हुए।

इति अजीव-तत्त्व।

पुण्य-तत्व

पुण्य क्या है ?

जिस कर्मके उदयसे जीव सुख पाता है, मोक्ष प्राप्तिके लिये सहकारी है, संसारमें स्थिति स्थापकता रहती है। अन्तमें त्यागने योग्य भी है। इसे पुण्य कहते हैं।

अध्यात्मिक दृष्टिसे पुण्य-पाप क्या हैं ?

जैसे किसी चांडालनीके दो पुत्र हुए, उनमेंसे उसने एक पुत्र ब्राह्मणको दे दिया, और एकको अपने घरमें रख लिया। जिसे ब्राह्मण को सौंपा था, वह ब्राह्मण कहलाया और मद्य मांसका त्यागी हुआ। परन्तु जो उसके घरमें रह गया था, वह चाण्डाल कहलाया, तथा मद्य मांसका भक्षी होगया। इसी तरह एक वेदनी कर्मके पाप और पुण्य जिनके अलग अलग नाम हैं ऐसे दो पुत्र हैं। अतः दोनों ही में संसार भ्रमणा है, और दोनों ही बंध परम्पराको बढ़ाते हैं। जिससे आत्मज्ञानीजन तो दोनों ही की अभिलाषा नहीं करते। और दोनों ही निर्जरा करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार पापकर्म बंधन है नरकादि दुःखद संसारमें फिरानेवाला है, उसी प्रकार पुण्य भी बंधन है और उसका विपाक भी संसार ही है, इसलिये दोनों समान ही हैं। परन्तु पुण्य

सोनेकी बेड़ीके समान है और पाप लोहकी बेड़ीके सदृश है। दोनों बंधन हैं।

पुण्य-पापकी समानतामें शंका ?

कोई यह शंका करे कि—पुण्य-पाप समान नहीं हैं, क्योंकि उनके कारण, रस, स्वभाव तथा फल अलग अलग हैं, एकके (कारण, रस, स्वभाव, फल) अप्रिय और एकके प्रिय लगते हैं, तब समान क्यों कर हो सकते हैं। संक्लिष्ट भावोंसे पाप और निर्मल भावोंसे पुण्य बंध होता है, इस प्रकार दोनोंके बंधमें कारण भेद है। पापका उदय असाता है, जिसका स्वाद कडुआ है, और पुण्यका उदय साता है, जिसका स्वाद मीठा है, इस तरह दोनोंके स्वादमें भी अन्तर है, पापका स्वभाव तीव्र कषाय और पुण्यका स्वभाव मंद कषाय है। इस प्रकार दोनोंके स्वभावमें भी भेद है। पापसे कुगति और पुण्यसे सुगति होती है, इस प्रकार दोनोंमें फल भेद प्रत्यक्ष जान पड़ता है, तब दोनोंको समान पद क्यों कर दिया जा सकता है ?

इसका समाधान

पापबंध और पुण्यबंध दोनों मुक्ति मार्गमें बाधक रूप हैं, इसमें दोनों ही समान हैं। इनके कडुवे और मीठे स्वाद पुद्गलके हैं, अतः दोनोंके रस भी समान हैं। संक्लेश और विशुद्ध भाव दोनों विभाव हैं, अतएव दोनोंके भाव भी समान हैं। कुगति और सुगति दोनों संसारमय हैं, इसलिये दोनोंके फल भी समान हैं। दोनोंके कारण, रस, स्वभाव और फलमें अज्ञानसे भेद दीखता है, परन्तु

ज्ञान दृष्टिसे दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं है। दोनों आत्म स्वरूपको भुलानेवाले हैं, इसलिये महाअंध कूपके समान हैं। और दोनों ही कर्म बन्ध रूप हैं, इसलिये निश्चयनयसे मोक्ष मार्गमें इन दोनोंका त्याग कहा गया है। राग, द्वेष, मोह रहित, 'निर्विकल्प', आत्म-ध्यान ही मोक्ष रूप है। इसके बिना और सब भटकना पुद्गल जनित है। आत्मा सदैव शुद्ध अर्थात् अबन्ध है, और क्रिया बन्धमय कहलाती है। अतः जितने समयतक जीव जिसमें (स्वरूप या क्रियामें) रहता है उतने समय तक उसका स्वाद लेता है। अर्थात् जबतक आत्मानुभव रहता है तबतक अबन्ध दशा रहती है, परन्तु जब स्वरूपसे क्रियामें हटकर लगता है तब बन्धका प्रपंच बढ़ता है। अतः ज्ञान और चरित्र ही प्रधान हैं, क्योंकि सम्यक्त्व सहित ज्ञान और चरित्र परमेश्वरका स्वभाव है और यही परमेश्वर बननेका उपाय है।

बाहरकी दृष्टिसे मोह नहीं है

शुभ और अशुभ ये दोनों कर्म मल हैं। पुद्गल पिण्ड हैं, आत्माके विभाव हैं, इनसे मोक्ष नहीं होता है और न केवल ज्ञान ही पाता है, क्योंकि जबतक शुभ-अशुभ क्रियाके परिणाम रहते हैं तबतक ज्ञान, दर्शन, उपयोग और मन, वचन, कायके योग चञ्चल रहते हैं। तथा जबतक ये स्थिर न होंगे तबतक शुद्ध अनुभव नहीं होता है। इससे दोनों ही क्रियाएँ मोक्ष मार्गमें बाधक हैं। दोनों ही बन्ध उत्पन्न करती हैं।

ज्ञान और शुभाशुभ कर्मका हाल

जबतक आठों कर्म बिल्कुल नष्ट नहीं होते तबतक सम्यक्त्व दृष्टिमें ज्ञानधारा और शुभाशुभ कर्मधारा दोनों वर्तती रहती हैं। दोनों धाराओंका अलग-अलग स्वभाव और भिन्न-भिन्न सत्ता है। विशेष भेद इतना ही है कि कर्मधारा बन्धरूप है आत्म-शक्तिको पराधीन करती है। तथा अनेक प्रकारसे बन्ध बढ़ाती है। और ज्ञानधारा मोक्ष स्वरूप है, मोक्षदाता है, दोषोंको हटाती है तथा संसार सागरसे पार करनेके लिये नौकाके समान है।

पुण्यका वर्णन

यह पुण्य शुभ भावोंसे बंधता है। इसके द्वारा स्वर्गादि सुख-को पाता है और यह लौकिक सुखका ही देनेवाला है। वह पुण्य पदार्थ नौ प्रकारसे बांधकर ४२ प्रकारसे भोगा जाता है।

नौ पुण्योंके नाम

१—अन्नपुण्णे--अन्नदानसे पुण्य होता है।

२—पाणपुण्णे--जलदानसे।

३—लयणपुण्णे--आरामके लिये मकान देनेसे।

४—सयनपुण्णे--आसन बिस्तर देनेसे।

५—वत्थपुण्णे--वस्त्रादि दान करनेसे।

६—मनपुण्णे--मनको निर्विकार और शुद्ध रखनेसे।

७—वचनपुण्णे--सत्य और शुभ वचन योगसे।

८—कायपुण्णे--कायकी निष्पाप सेवासे।

९—नमस्कारपुण्णं – मानरहित होकर नमन करने से।

पुण्यके उत्कृष्ट ४२ भेद

१—'सातावेदनीय' जिस कर्म-प्रकृतिके उदयसे सुखका अनुभव करता है।

२— उच्चगोत्र' सच्चरित्र माता-पिताके रजोवीर्य, रूप, उच्चकुल, उच्चजातिमें पैदा होता है।

३—जिस कर्मके उदयसे जीवको मनुष्यगति' मिलती है।

४—जिस कर्मके उदयसे मनुष्यको मनुष्यकी 'आनुपूर्वी' मिले।

आनुपूर्वी क्या है ?

आनुपूर्वीका आशय यह है कि—विग्रहगतिसे गत्यन्तरमें जानेवाला जीव जब शरीरको छोड़कर समश्रेणीसे जाने लगता है तब आनुपूर्वीकर्म उस जीवको जबरदस्तीसे जहां पैदा होना हो वहाँ पहुंचा देता है। मनुष्यगतिकर्म और मनुष्यानुपूर्वीकर्म इन दोनों की 'मनुष्यद्विक' संज्ञा है।

५—जिस कर्मसे जीवको देवगति मिले, उसे 'देवगति' कहते हैं।

६—जिस कर्मसे जीवको देवताकी आनुपूर्वी मिले, उसे 'देवानुपूर्वी' कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीवको पांचों इन्द्रियां मिलें, उसे 'पंचेन्द्रिय-जातिकर्म' कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवको औदारिक शरीर मिले, उसे 'औदारिकशरीरकर्म' कहते हैं।

औदारिक शरीर क्या है ?

उदार अर्थात् बड़े बड़े अथवा तीर्थंकरादि उत्तम पुरुषोंकी अपेक्षा उदार-प्रधान पुद्गलोंसे जो शरीर बनता है उसे 'औदारिक' कहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदिका शरीर भी औदारिक कहलाता है।

६—जिस कर्मके उदयसे वैक्रिय शरीर मिले, उसे 'वैक्रियकर्म' कहते हैं।

वैक्रिय शरीर क्या है ?

अनेक प्रकारकी क्रियाओंसे बना हुआ शरीर 'वैक्रिय' कहलाता है। उसके दो भेद हैं 'औपपातिक' और 'लब्धिजन्य'; देवता, नरक निवासी जीवोंका शरीर 'औपपातिक' होता है। लब्धि अर्थात् तपोबलके सामर्थ्य विशेषसे प्राप्त होने पर तिर्यंच और मनुष्य भी कभी कभी वैक्रिय शरीर धारण करते हैं वह 'लब्धिजन्य' है।

१०—जिस कर्मसे आहारक शरीरकी प्राप्ति हो उसे 'आहारिक-शरीर कर्म' कहते हैं। दूसरे द्वीपमें विद्यमान तीर्थंकरसे अपना सन्देह दूर करनेके लिये या उनका ऐश्वर्य देखनेके लिये १४ पूर्वधारी मुनिराज जब चाहें तब निज शक्तिसे एक हाथका लम्बा, चर्मचक्षुके देखनेमें न आवे ऐसा अदृश्य अति सुन्दर शरीर बनाते हैं उसे 'आहारिक शरीर' कहते हैं।

११—जिस कर्मके उदयसे तैजस शरीरकी प्राप्ति हो उसे 'तैजस शरीर' कहते हैं।

तैजस शरीर क्या है ?

किये हुए आहारको पकाकर रस-रक्त आदि बनानेवाला तथा तपोबलसे तेजोलेश्या निकालने वाला 'तैजस' कहलाता है।

१२—जीवोंके साथ लगे हुये आठ प्रकारके कर्मोंका विकाररूप तथा सब शरीरोंका कारणरूप 'कार्मण' कहलाता है। तैजस शरीर और कार्मण शरीरका अनादि कालसे जीवके साथ सम्बन्ध है। और मोक्ष पाये बिना उनके साथ वियोग नहीं होता।

१३-१४-१५—जिन कर्मसे अंग-उपांग और अंगोपांग मिलें, उनको अंग कर्म-उपांग कर्म और अंगोपांग कर्म कहते हैं।

जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि सब अंग हैं। अंगुली आदि उपांग और अंगुलीके पर्व रेखा आदि 'अंगोपांग' कहलाते हैं।

औदारिक-वैक्रिय-आहारक शरीरको अंग-उपांग आदि होते हैं। लेकिन तैजस कार्मण शरीरको नहीं।

१६—'प्रथम संहनन'—वज्रऋषभनाराच—जिस कर्मसे मिले उसे 'वज्रऋषभनाराच' नाम कर्म कहते हैं।

संहनन क्या है ?

हड्डियोंकी रचनाको 'संहनन' कहते हैं। दो हाडोंसे मर्कटबन्ध होनेपर एक पट्टा (वेष्टन) दोनोंपर लपेट दिया जाय फिर तीनोंपर खीला ठोक दिया जाय इस प्रकारकी मजबूतीवाली रचनाको 'वज्र-ऋषभ नाराच संहनन' कहते हैं।

१६—प्रथम संस्थान—समचतुरस्र जिस कर्मसे मिले उसे 'समचतुरस्र' संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

'पर्यंक आसन लगाकर बैठनेसे दोनों जानु और दोनों कन्धों-का इसी तरह बाएं जानु और वामस्कन्धका अन्तर समान हो तो उस संस्थानको 'समचतुरस्र' संस्थान कहते हैं। जिनेश्वर भगवान् तथा देवताओंका यही संस्थान है।

१८ से २१—जिन कर्मोंसे जीवका शरीर, शुभ-वर्ण, शुभ-गंध, शुभ-रस और शुभ-स्पर्शवाला हो उन कर्मों को भी अनुक्रमसे 'शुभ-वर्ण', 'शुभ-गन्ध', 'शुभ-रस', और शुभ-स्पर्श 'नामकर्म' कहते हैं।

पीला, लाल, सफेद रंग, शुभवर्ण कहलाता है। सुगन्धको शुभ गन्ध कहते हैं। खट्टा, मीठा और कसायला रस शुभ रस कहलाता है। हल्का, सुकोमल, गर्म और चिकना स्पर्श शुभ स्पर्श है।

२२—जिस कर्मसे जीवका शरीर न लोहेके समान भारी होता है, न रुई जैसा हल्का हो वह 'अगुरुलघु' नाम कर्म कहलाता है।

२३—जिस कर्मसे जीव, बलवानोंसे भी पराजित न हो उसे 'पराघात' नाम कर्म कहते हैं।

२४—जिस कर्मसे जीव श्वासोच्छ्वास ले सके उसे 'श्वासो-च्छ्वास' नाम कर्म कहते हैं।

२५—जिस कर्मसे जीवका शरीर उष्ण न होकर उष्णता प्रकाश करे उसे 'आतप' नाम कर्म कहते हैं। सूर्यमण्डलमें रहनेवाले पृथ्वी-कायके जीवोंका शरीर ऐसा ही है।

२६—जिस कर्मसे जीवका शरीर शीतल प्रकाश करनेवाला हो, उसे 'उद्योत' नाम कर्म कहते हैं। ऐसे जीव चन्द्रमण्डल और ज्योतिषचक्रमें होते हैं। वैक्रियलब्धीसे साधु, 'वैक्रिय' शरीर धारण

करते हैं। उस शरीरका प्रकाश शीतल होता है। वह इस 'उद्योत' नाम कर्मसे समझना चाहिये।

२७--जिस कर्मसे जीव हाथी, हंस बैल, जैसी चाल चले उसे शुभ 'विहायोगति' कहते हैं।

२८—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरके अवयव नियत स्थान पर ही व्यवस्थित हों उसे 'निर्माण' नामकर्म कहते हैं।

२९--३८--त्रस-दशकका विचार अगाड़ी किया जायगा।

३९-४१—जिन कर्मोंसे जीव देव-मनुष्य और पशुकी योनीमें जीता है, उनको क्रमसे 'देवायु' 'मनुष्यायु' और 'तिर्यंचायु' कहते हैं।

४२—जिस कर्मसे जीव तीन लोकका पूजनीय होता है उसे 'तीर्थंकर' नाम कर्म कहते हैं।

त्रसदशक क्या होते हैं ?

१—जिस कर्मसे जीवको 'त्रस' शरीर मिलता है उसे 'त्रस' नाम कर्म कहते हैं। त्रस जीव वे होते हैं, जो धूपसे व्याकुल होने पर छायामें जांय और शीतसे दुःख पाकर धूपमें जा सकें। २, ३, ४, ५ तक इन्द्रिय युक्त जीव 'त्रस' कहलाते हैं।

२—जिस कर्मसे जीवका शरीर या शरीर समुदाय देखनेमें आ सके उसे इतना स्थूल होनेपर 'बादर' नाम कर्म कहते हैं।

३—जिसके उदयसे जीव अपनी पर्याप्तियोंसे युक्त हो, उसे 'पर्याप्ति' नाम कर्म कहते हैं।

४—जिस कर्मसे एक शरीरमें एकही जीव स्वामी होकर रहे उसे 'प्रत्येक' नाम कर्म कहते हैं।

५—जिस कर्मसे जीवकी हड्डी-दांत आदि अवयव मज़बूत हों उसे 'स्थिर' नाम कर्म कहते हैं।

६—जिस कर्मसे जीवकी नाभिके ऊपरका भाग शुभ हो उसे 'शुभ' नाम कर्म कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीव सबका प्रीतिपात्र हो, उसे 'सौभाग्य' नाम कर्म कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवका स्वर (आवाज़) कोयलकी तरह मीठा हो उसे 'सुस्वर' नाम कर्म कहते हैं।

९—जिस कर्मसे जीवका वचन लोगोंमें आदरणीय हो उसे 'आदेय' नाम कर्म कहते हैं।

१०—जिस कर्मसे लोगोंमें यशःकीर्ति फैले उसे 'यशःकीर्ति' नाम कर्म कहते हैं।

इति पुण्य-तत्त्व।

पाप-तत्त्व

पाप किसे कहते हैं ?

जिस कर्मसे जीव दुःख पाता है, जो अशुभ भावोंसे बन्धता है, तथा अपने आप नीच गतिमें गिरता है और संसारमें दुःखका देने-वाला है, वह पाप पदार्थ है।

पापकर्म १८ प्रकारसे बांधता है

१—प्राणातिपात—हिंसा करना। २—मृषावाद—असत्य बोलना। ३—अदत्तादान—विना आज्ञा किसीकी वस्तु लेना, धरना। ४—मैथुन—व्यभिचार सेवन करना। ५—परिग्रह—वस्तुको ममता बुद्धिसे देखना रखना। ६—क्रोध। ७—मान। ८—माया। ९—लोभ। १०—राग। ११—द्वेष। १२—कलह। १३—अभ्याख्यान—सामने किसीको बुरा कहना। १४—पैशुन्य—पीठ पीछे बुराई करना। १५—परपरिवाद—दोनों तरहसे अपवाद करना। १६—रति—अनुकूल संयोग पाकर हर्षित होना। १७—अरति—प्रतिकूल संयोग पाकर उदास होना। १८—मायामृषा, मिथ्यात्व दर्शन, शल्य।

पाप ८२ प्रकारसे भोगता है

१—मन और पांच इन्द्रियोंके सम्बन्धसे जीवको जो ज्ञान

होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं. उस ज्ञानका 'आवरण' अर्थात् 'आच्छादन' 'मतिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

२—शास्त्रको 'द्रव्यश्रुत' कहते हैं, और उसके सुनने या पढ़नेसे जो ज्ञान होता है उसे 'भावश्रुत' कहते हैं, उसका आवरण 'श्रुतज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

३—अतीन्द्रिय—अर्थात् इन्द्रियोंके बिना आत्माको रूपीद्रव्यका जो ज्ञान होता है, उसे 'अवधिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहते हैं।

४—संज्ञी पंचेन्द्रियके मनकी बात जिस ज्ञानके द्वारा मालूम होती है उसे 'मनःपर्ययज्ञान' कहते हैं, उसका आवरण 'मनःपर्ययज्ञानावरणीय' पापकर्म है।

५—समस्त संसारका पूरा ज्ञान जिससे होता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। उसका आवरण 'केवलज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

६—दानसे लाभ होता है, उसे जानता हो, पासमें धन हो, सुपात्र भी मिल जाय, परन्तु दान न कर सके, इसका कारण 'दानान्तराय' पापकर्म है।

७—दान देनेवाला उदार है, उसके पास दानकी सब वस्तुएँ भी हैं, लेनेवाला भी समझदार है, तब भी मांगी वस्तु न मिले इसका कारण 'लाभान्तराय' है।

८—भोग्य चीजें विद्यमान हैं, भोगनेकी शक्ति भी है, लेकिन भोग न सके उसका कारण है 'भोगान्तराय' पापकर्म।

९—उपभोग्य वस्तुएँ भी हैं, उपभोग करनेकी शक्ति भी है, लेकिन उपभोग न कर सके उसका कारण 'उपभोगान्तराय' है।

जो वस्तु एक वार भोगनेमें आवे वह भोग्य है, जैसे आहार, स्त्री आदि। जो पदार्थ वार-वार उपयोगमें आवे उसे उपभोग्य कहते हैं, जैसे पुस्तक, वस्त्र आदि।

१०—रोगरहित युवावस्था रहनेपर और सामर्थ्य होते हुए भी अपनी शक्तिका विकास न कर सके उसका कारण 'वीर्यान्तराय' है।

११—आंखसे पदार्थोंका जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे 'चक्षुदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'चक्षुदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१२—कान, नाक, जीभ, त्वचा, तथा मनके सम्बन्धसे शब्द, गन्ध, रस, और स्पर्शका जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे 'अचक्षुदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'अचक्षुदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१३—इन्द्रियोंके विना रूपीद्रव्यका जो सामान्य वोध होता है, उसे 'अवधिदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'अवधिदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१४—संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंका जो सामान्य-वोध होता है, उसे 'केवलदर्शन' कहते हैं। उसका आवरण 'केवलदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

१५—जो सोया हुआ आदमी ज़रासी आहट पाकर भी जाग उठता है, उसकी नींदको 'निद्रा' कहते है जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मका नाम भी निद्रा है।

१६—जो आदमी वड़े जोरसे चिल्लाने, या हाथसे खूब हिलाने

पर बड़ी कठिनाई से जागता है, उसकी नींदको 'निद्रा-निद्रा' कहते हैं। जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मको भी 'निद्रा-निद्रा' कहा है।

१७—खड़े-खड़े या बैठे-बैठे जिसको नींद आती है, उसकी नींद-को 'प्रचला' कहते हैं। जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे, उस कर्मका नाम भी 'प्रचला' है।

१८—चलते फिरते जिसको नींद आती हो, उसकी नींदको 'प्रचला-प्रचला' कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे ऐसी नींद आवे उसे भी 'प्रचला-प्रचला' कर्म प्रकृति कहते हैं।

१९—दिनमें सोचे हुए कामको रातमें नींदकी अवस्थामें जो कर डालता है, उसकी नींदको 'स्त्यानर्द्धि' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आती है उस कर्मको 'स्त्यानर्द्धि' या 'स्त्यानगृद्धि' कहते हैं।

स्त्यानर्द्धिकी हालतमें वज्रऋषभनाराच संहनन वाले जीवको वासुदेवका आधा बल होता है।

२०—जिस कर्मसे नीच कर्म करने वाले माता-पिताके रजोवीर्य से नीच कुलमें जन्म हो उसे 'नीचैर्गोत्र' कहते हैं।

२१—जिस कर्मसे जीव दुःखका अनुभव करे, उसे 'असाता-वेदनीय' पाप कर्म कहते हैं।

२२—जिस कर्मसे मिथ्यात्वकी प्राप्ति हो उसे 'मिथ्यात्व मोहनीय' पाप कर्म कहते हैं।

मिथ्यात्व क्या है ?

जिसके द्वारा वस्तु-स्वभावसे अनभिज्ञ रहता है, एकान्त पक्ष

लेकर लड़ता है, अहंकारके आनेसे चित्तमें उपद्रव सोचता है। डावांडोल रहनेसे आत्मा विश्राम नहीं पाता। बगूलेके पत्तेकी तरह संसारमें रुलता रहता है, क्रोधमें तप्त रहता है, लोभसे मलिन रहता है, मायासे कुटिलता आजाती है, मानसे बड़बोला होकर कुवाक्य बोलता है, आत्माकी घात करने वाला ऐसा मिथ्यात्व है। इससे आत्मा कठोर हो जाता है। यह दुःखोंका दूत है, परद्रव्य जनित है, अन्धकूपके समान है, कठिनाईसे हटाया जा सकता है, यह मिथ्यात्व विभाव है। जीवको अनादि कालसे यह रोग लगा हुआ है, इसी कारण जीव परद्रव्यमें अहंबुद्धि रखकर अनेक अवस्थाएँ धारण करता है। मिथ्यात्व, अव्रत. प्रमाद, कपाययोग इसके कारण हैं। जिसमें देवके गुण न हों उसे । देव मानता है, जिसमें गुरुके गुण न हों तथा हिंसाके उपदेशकको गुरु मानता है, और हिंसा आदि अधर्ममें धर्म समझता है उसका नाम मिथ्यात्व है।

२३-३२—स्थावर दशक जिसे अगाड़ी कहा जायेगा।

३३—जिस कर्मसे जीव नरकमें जाता है उसे 'नरक गति' कहते हैं।

३४—जिस कर्मके उदयसे जीव नरकमें जीवित रहता है, उसे 'नरकायु' पापकर्म कहते हैं।

३५—जिस कर्मके उदयसे जीवको विना इच्छाके नरकमें जाना पड़े, उसे 'नरकानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

३६-३९—जिस कर्मसे जीवको संसारमें अनन्त कालतक घूमना पड़ता है, उसे 'अनन्तानुवन्धी' पापकर्म कहते हैं। इसके चार

भेद हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ जबतक जीवित रहता है ये प्रायः तबतक बने रहते हैं, और अन्तमें प्रायः नरकगति प्राप्त करता है।

अनन्तानुबन्धी चौकड़ीमें विशेषता

अनन्तानुबन्धी क्रोध-पर्वतकी लकीर जैसा अमिट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पत्थरका स्तंभ होता है। अनन्तानुबन्धी माया बांसकी जड़की तरह दृढ़ होती है। अनन्तानुबन्धी लोभ कृमिज रंगके समान पक्का होता है। इससे समदृष्टि नहीं होने पाता।

४०-४३—जिस कर्मसे जीवको देशविरतिरूप प्रत्याख्यानकी प्राप्ति न हो, उसे 'अप्रत्याख्यानी' पाप कर्म कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं। 'अप्रत्याख्यान' क्रोध, मान, माया और लोभ। इनकी स्थिति एक वर्षकी है। इनके उदयसे अणुव्रत धारण करनेकी इच्छा नहीं होती, और मरने पर प्रायः 'तिर्यंचगति' होती है। अप्रत्याख्यान क्रोध पृथ्वीकी लकीरके समान है, मान दांतका स्तंभ है, माया मेंढेके सींगके समान है। लोभ नगरके कीच जैसा है।

४४-४७—जिसके उदयसे सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यानकी प्राप्ति न हो, उसे 'प्रत्याख्यान' पापकर्म कहते हैं।

इसके चार भेद हैं, प्रत्याख्यानका क्रोध, मान, माया, लोभ इनकी स्थिति चार मासकी है। ये पापकर्म सर्वविरतिरूप पवित्र चारित्रको रोकते हैं, और मरकर प्रायः मनुष्यगति पा सकता है। प्रत्याख्यानका क्रोध बालुकी लकीरके समान है, मान लकड़ीके स्तंभ

जैसा है, माया बैलके पेशावके आकारके समान है, लोभ गाड़ीके पहियेके खंजनके रंग जैसा है।

४८-५१—जिस कर्मसे यथाख्यात चरित्रकी प्राप्ति न हो, उसे 'संज्वलन' पापकर्म कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, इनकी स्थिति १५ दिनकी है, और मरकर देवता बनता है। इसका क्रोध पानीकी लकीरकी भांति है। मान तृण स्तंभ जैसा है। माया वेतके फच्चट जैसा है, लोभ हल्दीके रंग जैसा है।

५२—जिस कर्मके उदयसे विना कारण या कारणवश हँसी आ जाय, उसे 'हास्य मोहनी' पापकर्म कहते हैं।

५३ - जिस कर्मके उदयसे अच्छे और मनके अनुकूल संयोग या पदार्थोंमें अनुराग या प्रसन्नता हो, उसे 'रतिमोहनीय' पापकर्मकहते हैं।

५४—जिस कर्मसे बुरे और मनके प्रतिकूल संयोग तथा अनिष्ट पदार्थोंसे घृणा हो उसे 'अरतिमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५५—जिस कर्मसे इष्ट वस्तुका वियोग होनेपर शोक हो उसे 'शोकमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५६—जिस कर्मसे विना कारण या कारणवश मनमें भय हो उसे 'भयमोहिनी' कहते हैं।

५७—जिस कर्मसे दुर्गन्धी या वीभत्स पदार्थोंको देखकर घृणा हो उसे 'जुगुप्सामोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

५८-६०—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदका अर्थ पहले लिखा जा चुका है।

६१— जिस कर्मसे तिर्यंचगति मिले उसे 'तिर्यंचगति' कहते हैं।

६२—जिस कर्मसे जीवको जबरदस्ती तिर्यंचगतिमें जाना पड़े उसे 'तिर्यंचानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

६३— जिस कर्मके उदयसे जीवको एकेन्द्रिय जातिमें प्राप्त होना पड़े उसे 'एकेन्द्रिय जाति' पापकर्म कहते हैं। इसी प्रकार—

६४—द्वेन्द्रियजाति। ६५—त्रेन्द्रियजाति भी जानना चाहिये।

६६—चतुरिन्द्रियजाति पापकर्मोंको भी समझना योग्य है।

६७— जिस कर्मके उदयसे जीव ऊंट, गधा, कव्वा, टीडे जैसी चाल चले उसे 'अशुभविहायोगति' पापकर्म कहते हैं।

६८—जिस कर्मसे जीव अपने ही अवयवोंसे दुःखी हो उसे 'उपघात' पापकर्म कहते हैं। ये अवयव प्रतिजिह्वा, (पडजीभ) कण्ठमाला छठी उंगली आदि हैं।

६९-७२—जिन कर्मोंसे जीवका शरीर अशुभवर्ण, अशुभगन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पर्शयुक्त हो, उनको क्रमसे अप्रशस्तवर्ण, अप्रशस्तगन्ध, अप्रशस्तरस, अप्रशस्तस्पर्श पापकर्म कहते हैं।

नील और नलेकी स्याही जैसे रंग अशुभवर्ण हैं। दुर्गन्ध अशुभ गन्ध है। भारी, खरदरा, रूखा और शीतस्पर्श अशुभ स्पर्श हैं। तीखा और कडुवा रस अशुभ रस हैं।

७३-७७—जिन कर्मोंसे अन्तिम पांच संहननोंकी प्राप्ति हो उन्हें 'अप्रथमसंहनन' नाम पापकर्म कहते हैं।

ये पांच संहनन ये हैं—१—ऋषभनाराच, २—नाराच, ३—अर्धनाराच, ४—कीलिका, ५—सेवार्त।

१—हड्डियोंकी सन्धिमें दोनों ओरसे मर्कटबन्ध और उनपर लपेटा हुआ पट्टा हो लेकिन खीलना न हो वह 'ऋषभनाराच' संहनन है।

२—दोनों ओर मात्र मर्कटबंध हो वह 'नाराच' है।

३—एक ओर मर्कट बन्ध और दूसरी ओर खीला हो वह 'अर्धनाराच' है।

४—मर्कट बंधन न हो, सिर्फ खीलेसे ही हड्डियां जुड़ी हुई हों, वह 'कीलिका' है।

५—खीला न होकर योंही हड्डियां आपसमें जुड़ी हुई हों वह 'सेवार्त' है।

७८-८२—जिन कर्मोंसे अन्तिम पांच संस्थानोंकी प्राप्ति हो उन्हें 'अप्रथमसंस्थान' नाम पापकर्म कहते हैं। पांच संस्थान ये हैं। १—न्यग्रोधपरिमण्डल, २—सादि, ३—कुब्ज, ४—वामन और हुंड।

१—वड़के वृक्षको न्यग्रोध कहते हैं। वह जैसा ऊपर पूर्ण और नीचे हीन होता है, वैसे ही जिस जीवके नाभिका ऊपरी भाग पूर्ण और नीचेका हीन हो तो 'न्यग्रोधपरिमण्डल' संस्थान जानना चाहिये।

२—नाभिके नीचेका भाग पूर्ण हो ऊपरका हीन हो वह 'सादि' होता है।

३—हांथ, पर, सिर आदि अवयव ठीक हो और पेट तथा छाती हीन हो वह 'कुब्ज' है।

४—छाती और पेटका परिमाण ठीक हो और हाथ, पैर, सिर आदि छोटे हों तो 'वामन' होता है।

५—शरीरके सब अवयव हीन हों तो 'हुंड' होता है।

विपरीत त्रसदशक क्या हैं ?

१—जिस कर्मके उदयसे स्थावर शरीरकी प्राप्ति हो, उसे 'स्थावरनामकर्म' कहते हैं। स्थावर शरीरवाले एकेन्द्रिय जीव गर्मी या सर्दीसे चल फिर न सकनेके कारण दुःखमें अपना बचाव नहीं कर सकते।

२—जिस कर्मसे आंखोंसे न देखने योग्य शरीर मिले, उसे 'सूक्ष्म' नामकर्म कहते हैं। निगोदके जीवोंका सूक्ष्म शरीर होता है।

३—जिस कर्मसे अपनी पर्याप्तियां पूरी किये बिना ही जीव मर जावे, उसे 'अपर्याप्त' नामकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्मसे अनन्त जीवोंको एक शरीर मिले उसे 'साधारण' नामकर्म कहते हैं। जैसे कि आलू, जमीकन्द आदि।

५—जिस कर्मसे कान, भौंह, जीभ आदि अवयव अस्थिर होते हैं, उसे 'अस्थिर' नामकर्म कहते हैं।

६—जिस कर्मसे नाभिके नीचेका भाग अशुभ हो उसे 'अशुभ' नामकर्म कहते हैं।

७—जिस कर्मसे जीव किसीका प्रीतिपात्र न हो, उसे 'दुर्भग' नामकर्म कहते हैं।

८—जिस कर्मसे जीवका स्वर सुननेमें बुरा लगे, उसे 'दुःस्वर' नामकर्म कहते हैं।

९—जिसकर्मसे जीवका वचन लोगोंमें माननीय न हो, उसे 'अनादेय' नामकर्म कहते हैं।

१०—जिस कर्मसे लोकमें अपयश और अपकीर्ति हो, उसे 'अयशःकीर्ति' नामकर्म कहते हैं।

नोट—५—ज्ञानावरणकी, ९—दर्शनावरणकी, १—वेदनीय कर्मकी, २६—मोहनीय कर्मकी, १—आयुष्य कर्मकी, ३४—नाम-कर्मकी, १—गोत्रकर्मकी, ५—अंतराय कर्मकी।

सब मिलकर ८२ प्रकृतिएँ हुईं, जिन्हें जीव पाप प्रकृतिएँ होनेके कारण दुःख भोग करता है।

इति पाप-तत्त्व।

आस्रव-तत्त्व

आस्रव किसे कहते हैं ?

आत्मामें समवन्ध करनेके लिये जिसके द्वारा पुद्गल द्रव्य आते हैं उसे आस्रव कहते हैं, आस्रवमें पुण्य और पाप प्रकृतियें आत्मामें समय समय मिलती और निर्जरित होती रहती हैं। इसके सामने त्रस और स्थावर सब जीव बलहीन हो जाते हैं। ये द्रव्यास्रव-और भावास्रवके भेदसे दो तरहके हैं जैसे—

द्रव्यास्रव

आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें पुद्गलका आगमन होना द्रव्यास्रव है।

भावास्रव

जीवके राग, द्वेष, मोह रूपी परिणाम भावास्रव है।

द्रव्यास्रव और भावास्रवका अभाव आत्माका सम्यक् स्वरुप है। जहाँ ज्ञानकी कलायें प्रगट होती हैं वहाँ अन्तरंग और वहिरंगमें ज्ञानको छोड़ कर और कुछ नहीं रहने पाता।

ज्ञायक आस्रव रहित होता है।

जो द्रव्यास्रव रूप नहीं होता और जहाँ पर भावास्रव भाव भी

३३—हिरन, खरगोश आदि जीवोंको शिकारी कुत्तोंसे मरवाने-से या स्वयं मारनेसे जो क्रिया लगती है वह 'स्वहस्तिकी' कहलाती है।

३४—जीव तथा जड़ पदार्थोंको किसीकी आज्ञासे या स्वयं लाने ले जानेसे जो क्रिया लगती है उसे 'आनयनिकी' कहते हैं।

३५—जीव और जड़ पदार्थोंको चीरनेसे 'विदारिणिकी' क्रिया लगती है।

३६—बे पर्वाहीसे चीज वस्तु उठाने रखनेसे तथा चलने फिरनेसे 'अनाभोगिकी' क्रिया होती है।

३७—इस लोक तथा परलोकके विरुद्ध आचरण करनेसे 'अनवकांक्षाप्रत्ययिकी'।

३८—मन, वचन और शरीरके अयोग्य व्यापारसे 'प्रायोगिकी' क्रिया लगती है।

३९—किसी महापापसे आठों कर्मका समुदित रूपसे बन्धन हो तो 'सामुदायिकी'।

४०—माया और लोभ करनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रेमिकी' कहते हैं।

४१—क्रोध करनेसे तथा मान करनेसे द्वेपिकी' क्रिया कहते हैं।

४२—मात्र शरीर व्यापारसे जो क्रिया लगती है उसे ईर्याप-थिकी' क्रिया कहते हैं।

यह क्रिया अप्रमत्त साधु तथा सयोगी केवली को भी लगती है।

इति आस्रव-तत्त्व।

हैं। क्योंकि सिद्धोंके समान देह आदिके ममत्वसे अलिप्त हैं। वे मिथ्यात्व रहित हैं अनुभव युक्त हैं। अतः ज्ञानी निरास्रव हैं।

राग, द्वेष, मोह और ज्ञानका लक्षण

मुहब्बतमें राग भाव है, नफरतका भाव द्वेष है, परद्रव्यमें अहं-बुद्धिका भाव मोह और तीनोंसे रहित निर्विकार भाव सम्यग्ज्ञान है।

राग, द्वेष, मोह ही आस्रव है

राग, द्वेष, मोह ये तीनों आत्माके विकार हैं। आस्रवके कारण हैं, और कर्मबन्ध करके आत्माके स्वरूपको भुलाने वाले हैं। परन्तु जहां राग-द्वेष और मोह नहीं हैं वह सम्यक्त्व भाव है, इसीसे समदृष्टि आस्रव रहित है।

निरास्रवी जीवोंका सुख

जो कोई निकट भव्यराशि संसारी जीव मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्भाव ग्रहण करता है, निर्मल श्रद्धानसे राग, द्वेष, मोहको जीत लेता है, प्रमादको हटाता है, चित्तको शुद्ध कर लेता है। योगोंको निग्रह कर शुद्धोपयोगमें लीन रहता है, वह ही बन्धकी परम्पराको नष्ट करके परवस्तुका सम्बन्ध छोड़ देता है, और अपने रूपमें मग्न होकर निज स्वरूपको प्राप्त होकर सिद्ध अवस्थाको पा लेता है।

उपशम तथा क्षयोपशमकी अस्थिरता क्यों है ?

जिस प्रकार लुहारकी संडासी कभी अग्निमें गर्म होती है और कभी पानीमें ठंढी होती है, उसी प्रकार क्षयोपशमिक और औपश-

मिक समदृष्टि जीवोंकी दशा है, अर्थात् कभी मिथ्यात्व भाव प्रगट होता है तो कभी ज्ञान ज्योति चमक जाती है, जब तक ज्ञानका अनुभव रहता है तब तक चरित्र मोहनीयकी शक्ति और गति-कीलित सर्पके समान शिथिल रहती है, और जब मिथ्यात्वरस देने लगता है तब वह उकीले हुए सर्पकी प्रगट हुई शक्ति और गतिके समान अनन्त कर्मोंका बन्ध बढ़ाता है।

विशेषार्थ

उपशम* सम्यक्त्वका उत्कृष्ट व जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, और क्षयोपशम१ सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल ६६ सागर२ और जघन्य काल अन्तर मुहूर्त है। ये दोनों सम्यक्त्व नियमसे नष्ट ही हो जाते हैं। अतः जब तक सम्यक्त्व भाव रहता है तब तक आत्मा एक प्रकारकी विलक्षण शांति और आनन्दका अनुभव करता है, और जब तक सम्यक्त्व भाव नष्ट होकर मिथ्यात्वका उदय होता है तब आत्मा अपने स्वरूपसे स्खलित होकर कर्म परम्पराको बढ़ाता है।

---

* अनन्तानुबन्धीकी चार और दर्शनमोहनीयकी ३ इन सात प्रकृतिओंका उपशम होनेसे उपशम सम्यक्त्व होता है।१ अनन्तानुबन्धीकी चौकड़ी और मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व इन छह प्रकृतिओंका अनुदय और सम्यक्प्रकृतिका उदय रहते हुए क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है।२ अनन्त संसारकी अपेक्षासे तो यह बहुत ही थोड़ा है।

अशुद्धनयसे बन्ध और शुद्ध नयसे मुक्ति

आत्माको शुद्ध नयकी रीति छोड़नेमें बन्ध और शुद्धनयकी रीति ग्रहण करने से मोक्ष होता है। संसारी जीव कर्मके चक्करमें भटकता हुआ मिथ्यात्वी हो रहा है और अशुद्धतामें घिरा पड़ा है, मगर जब अन्तरंगका ज्ञान उज्वल होता है तब निर्मल प्रभुताकी झांकी होती है। शरीरादिसे स्नेह हटा देता है। राग, द्वेष, मोह छूट जाता है तब समता रसका स्वाद मिलता है, शुद्धनयका सहारा पाकर अनुभवका अभ्यास बढ़ाता है। नव पर्यायमेंसे अहंबुद्धि नष्ट हो जाती है और अपने आत्माका अनादि, अनन्त, निर्विकल्प नित्यपद अवलम्बन करके आत्मस्वरूपको देखता है।

शुद्धात्मा ही निरास्रव और सम्यग्दर्शन है।

जिसके उजालेमें राग, द्वेष, मोह नहीं रहते हैं, आस्रवका अत्यन्ताभाव हो जाता है। तब बन्धका त्रास मिट जाता है। जिसमें समस्त पदार्थोंके त्रिकालवर्ती अनन्तगुणपर्याय प्रतिबिंबित होते हैं, और जो आप स्वयं अनन्तानन्त गुण पर्यायोंकी सत्ता सहित है, ऐसा अनुपम, अखण्ड, अचल नित्य ज्ञानका निधान चिदानन्द घन ही सम्यग्दर्शन है। भावश्रुतज्ञान प्रमाणसे पदार्थको विचारा जाय तो वह अनुभव गम्य है, और द्रव्यश्रुत अर्थात् शब्द शास्त्रसे विचारा जाय तो वचनसे कहा नहीं जाता। अतः आत्मानुभवमें लीन रहने के लिये उस आस्रवके अलग २ भेद ज्ञानिओंने इस प्रकार कह कर बताये हैं।

जघन्य आस्रवके २० भेद

(१) मिथ्यात्व, आस्रव, (२) अव्रत आस्रव, (३) कषाय आस्रव, (४) योग आस्रव, (५) प्रमाद आस्रव, (६) प्राणातिपातास्रव, (७) मृषावादास्रव, (८) अदत्तादानास्रव, (९) मैथुनास्रव, (१०) परिग्रहास्रव, (११) श्रुतेन्द्रियास्रव, (१२) चक्षुरिन्द्रियास्रव, (१३) घ्राणेन्द्रियास्रव, (१४) रसेन्द्रियास्रव, (१५) स्पर्शेन्द्रियास्रव, (१६) मनोयोगास्रव, (१७) वचनयोगास्रव, (१८) काययोगास्रव, (१९) अयत्न पूर्वक भंडोपकरणदानादानास्रव, (२०) अयत्न पूर्वक सूची कुशाग्रग्रहणस्थापनास्रव।

उत्कृष्ट आस्रवके ४२ प्रकार

५—इन्द्रियाँ, ४—कषाय, ५—अव्रत, ३—योग, २५—क्रियायें ये आस्रवके ४२ प्रकार हैं।

आस्रवके दो प्रकार

भावास्रव, द्रव्यास्रव।

भावास्रव

जीवका शुभ-अशुभ परिणाम भावास्रव है।

द्रव्यास्रव

शुभ-अशुभ परिणामोंको पैदा करनेवाली ४२ प्रकारकी वृत्तियोंको द्रव्यास्रव कहते हैं।

दो प्रकारकी इन्द्रियें

द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय पुद्गल रूप है, और भावेन्द्रिय जीवकी शब्दादिक ग्रहण करनेकी शक्ति है।

कषाय चार हैं

१—क्रोध, २—मान, ३—माया, ४—लोभ।

अव्रत पांच हैं

५—प्राणातिपात, ६—मृषावाद, ७—अदत्तादान, ८—मैथुन, ९—परिग्रह।

तीन योग

१०—मनोयोग, ११—वचनयोग, १२—कायायोग।

पांच इन्द्रिय

१३—श्रोतेन्द्रिय, १४—चक्षुरिन्द्रिय, १५—घ्राणेन्द्रिय, १६—रसेन्द्रिय, १७—स्पर्शेन्द्रिय।

२५ क्रिया

१८—असावधानीसे शरीरके व्यापारसे जो क्रिया लगती है उसे 'कायिकी' क्रिया कहते हैं।

१९—जिस क्रियासे जीव नरकमें जानेका अधिकारी होता है, उसे 'अधिकरणिकी' कहते हैं। जैसे तलवार आदिसे संक्लिष्ट भावों द्वारा किसी जीवकी हत्या करना।

गदले पानीमें निर्मली डालनेसे वह पानीको साफ़ करके मैल हटा देती है। दहीका मथने वाला दहीको मथकर मक्खनको निकाल लेता है, हंस दूध पी लेता है और पानीको छोड़ देता है उसी तरह ज्ञानी जन भेद-विज्ञानके वलसे आत्मसम्पदाको ग्रहण करते हैं, तथा राग-द्वेष आदि अथवा पुद्गलादि परपदार्थोंको त्याग देते हैं।

भेदविज्ञान मोक्षकी जड़ है।

भेदविज्ञान आत्माके और परद्रव्योंके गुणोंको स्पष्ट जानता है। परद्रव्योंसे अपनेको छुड़ाकर शुद्ध अनुभवमें स्थिर होता है, और उसका अभ्यास करके संवरको प्रगट करता है, आस्रव द्वारका निग्रह करके कर्मजनित महा अन्धकार नष्ट करता है राग-द्वेष आदि विभाव छोड़कर समता भाव स्वीकार करता है, और विकल्प रहित निज पद पाता है, तथा निर्मल, शुद्ध, अनन्त, अचल और परम अतिन्द्रिय सुख प्राप्त करता है। अतः मोक्षके कारण भूत संवरके २० और ५७ भेद वर्णन किये जाते हैं।

संवरके २० भेद

(१) सम्यक्त्व-संवर, (२) व्रत-संवर, (३) अप्रमाद-संवर, (४) अकषाय-संवर, (५) अयोग-संवर, (६) अहिंसा-संवर, (७) सत्य-संवर, (८) अचौर्यकर्म-संवर, (९) ब्रह्मचर्य-संवर, (१०) अपरिग्रह-संवर. (११) श्रुतेन्द्रियनिग्रह संवर, (१२) चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह-संवर, ...णेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१४) रसेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१५) . निग्रह-संवर, (१६) शुभमनोयोग-संवर, (१७) शुभवचन

योग-संवर, (१८) शुभकाययोग-संवर, (१९) सुयत्नपूर्वक भंडोपकरणा दान निक्षेप-संवर, (२०) सुयत्नपूर्वक सूची कुशाग्रादान निक्षेप-संवर।

उत्कृष्ट ५७ भेद इस प्रकार हैं

पांच समिति

१—ईर्या समिति, २—भाषा समित, ३—एपणा समिति, ४—आदान निक्षेप समिति, ५—परिष्ठापनिका समिति।

ईर्यासमिति किसे कहते हैं ?

१—कोई जीव चलते समय पैरसे दब न जाय इस प्रकार राहमें सावधानीसे ३॥ हाथ अगाड़ीकी भूमि देखकर चलना।

इसके चार भेद हैं।

१— आलंबन, २—काल, ३—मार्ग, ४—यत्ना।

विशेषार्थ

१—ईर्याका आलम्बन, ज्ञान, दर्शन, चरित्र है।

२—ईर्याके कालमें देखे विना न चलना, रात्रिमें प्रतिलेखना बिना न चलना।

३—ईर्याका मार्ग—कुत्सित मार्गसे न चलना।

ईर्याकी यत्नाके ५ भेद

१—द्रव्यसे—देखे विना न चले।

२—क्षेत्रसे—३॥ हाथ भूमि देखे विना न चले।

संवर-तत्त्व

—∞∞—

संवरका लक्षण

जिसके द्वारा आत्मासे पुद्गल द्रव्यका संबन्ध न हो सके उसे 'संवर' कहते हैं। अथवा जो ज्ञान-दर्शन उपयोगको प्राप्त करके योगोंकी क्रियासे विरक्त होता है, और आस्रवको रोकता है वह 'संवर' पदार्थ कहलाता है।

मोक्षका मार्ग संवर है

मोक्षका मार्ग एक संवर है, यह संवर जितना इन्द्रिय कषाय संज्ञा आदिका निरोध करे उतना ही होता है, अर्थात् जितने अंशमें आस्रवका निरोध होता है उतने ही अंशमें संवर हो जाता है। इन्द्रिय, कषाय, संज्ञा, ये भाव पापास्रव हैं. इनका निरोध करना भावपापसंवर है। ये ही भावपापसंवर द्रव्यपापसंवरके कारण हैं। अर्थात् जब इस जीवके सब अशुद्ध भाव ही नहीं होते तब पौद्गलिक वर्गणाओंका आस्रव भी नहीं रहने पाता, क्योंकि जिस जीवके राग, द्वेष, मोहरूपभाव परद्रव्योंमें नहीं हैं उसी ही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होते, उसे नियमसे संवर ही होता है, इसी कारण राग, द्वेष, मोह, परिणामोंका रोकना भावसंवर कहलाता है। उस

भावसंवरके निमित्तसे योगद्वारोंमें शुभाशुभ रूप कर्मवर्गणाओंका रुक जाना 'द्रव्यसंवर' है।

भावसंवर

योगीकी सर्वथा प्रकारसे शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृति हो जाती है, तब उसके आगामी कर्मोंके आनेमें रोक-थाम हो जाती है। क्योंकि मूलकारण भावकर्म हैं, जब भावकर्म चले जायँगे तब द्रव्य-कर्म आयगा क्योंकर। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि—शुभाशुभ भावोंको रोकना भावपुण्य-पाप-संवर है। यह ही भावसंवर द्रव्यपुण्य पापोंको रोकनेवालोंमें प्रधान कारण है।

ज्ञान संवर है

जो आत्माके गुणोंका घातक है, और आत्मानुभवसे रहित है, ऐसा जो आस्रवरूप महा अन्धकार अखंड अंडेके समान सब जीवों-को घेरे हुए है। उस आस्रवको नष्ट करनेके लिए तीनों जगतमें विकास करनेमें सूर्यके समान जिसका प्रकाश है, और जिसमें सब पदार्थ प्रतिविम्बित होते हैं, तथा आप उन सब पदार्थोंका आकार रूप होता है, तथा आकाशके प्रदेशकी तरह उनसे अलिप्त ही रहता है। वह ज्ञानरूपी सूर्य शुद्ध संवरके रूपमें है।

ज्ञान परभावसे रहित है, अतः शुद्ध है, निज परका स्वरूप बतानेवाला है, इसलिये स्वच्छन्द है, इसमें किसी परवस्तुका मेल न होनेके कारण एक है। नय-प्रमाणकी इसमें बाधा न होनेसे अबा-धित है। अतः यह भेदविज्ञानका पैना आरा जब अन्तरंगमें प्रवेश

करता है तब स्वभाव और विभावको अलग-अलग कर देता है और जड़ तथा चेतनका भेद बतला देता है। इसी कारण भेद-विज्ञानियोंकी रुचि परद्रव्यसे हट जाती है, वे धन परिग्रह आदिमें रहें तोभी बड़े हर्षसे परमतत्त्वकी परीक्षा करते हुए आत्मिक रसका आनन्द लेते हैं।

सम्यक्त्वसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति

अनन्त संसारमें संसरण करता हुआ जीव काललब्धि—दर्शन-मोहनीयका अनोदय और गुरु उपदेश आदिका अवसर पाकर तत्वका श्रद्धान करता है, तब द्रव्यकर्म--भावकर्मोंकी शक्ति ढीली पड़ जाती है, और अनुभवके अभ्याससे उन्नति करते-करते कर्म बंधनसे मुक्त होकर ऊर्ध्व गमन करता है, अर्थात् सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है।

सम्यग्दृष्टिका माहात्म्य

जिन्होंने मिथ्यात्वका विनाश करके तथा सम्यक्त्वका स्वाद अमृत जैसा चखकर ज्ञानज्योति प्रकट की है, अपने निज गुण, दर्शन, ज्ञान, चरित्रको ग्रहण कर चुके हैं। हृदयसे परद्रव्योंकी ममता छोड़ दी है, और देशव्रत, महाव्रत आदि ऊंची-ऊंची क्रियाएं स्वीकार करके ज्ञान ज्योतिको उत्तरोत्तर बढ़ाता चला जाता है, वह आत्मज्ञ सुवर्णके समान है जिन्हें अब शुभाशुभ कर्म मल नहीं लगता है।

भेदज्ञान संवरका कारण है।

भेद ज्ञान निर्दोष है. संवरका कारण है. संवर निर्जराका कारण है, और निर्जरा मोक्षका कारण है। इससे उन्नतिके क्रममें भेद विज्ञान ही परम्परा मोक्षका कारण है। किसी अवस्थामें उपादेय और किसी अवस्थामें त्याज्य है। क्योंकि भेदविज्ञान आत्माका निज स्वरूप नहीं है इसलिए मोक्षका परम्परा कारण है, असली कारण नहीं है। परन्तु उसके विना मोक्षके असली कारण सम्यक्त्व. संवर, निर्जरा नहीं होते, इसलिये प्रथम अवस्थामें उपादेय है, और कार्य होने पर कारण कलाप प्रपंच ही होते है, इसलिये शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होने पर हेय है। क्योंकि भेद-विज्ञान वहीं तक सराहनीय है जब तक मोक्ष अर्थात् शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती और जहां ज्ञानकी उत्कृष्ट ज्योति प्रकाश कर रही हो वहां पर अब कोई विकल्प नहीं रह गया है। अतः जिन जीवों ने भेदज्ञानरूप संवर प्राप्त किया है वे मोक्षरूप ही कहलाते हैं, और जिनके हृदयमें भेदविज्ञान नहीं है वे कम समझ प्राणी शरीरादिमें सदैव बन्धते रहते हैं। इससे यह परिणाम निकला कि—समदृष्टिरूप धोबी है, भेदविज्ञानरूप साबुन है, और समतारूप निर्मल जलसे आत्म गुण रूप वस्त्रको साफ करते हैं।

भेदविज्ञानकी क्रियामें उदाहरण

जैसे रजका शोधन करनेवाला धूलको शोधकर उसमेंसे सोना चांदी निकाल लेता है, अग्नि धातुको गलाकर सोना निकालता है।

गदले पानीमें निर्मली डालनेसे वह पानीको साफ़ करके मैल हटा देती है। दहीका मथने वाला दहीको मथकर मक्खनको निकाल लेता है, हंस दूध पी लेता है और पानीको छोड़ देता है उसी तरह ज्ञानी जन भेद-विज्ञानके बलसे आत्मसम्पदाको ग्रहण करते हैं, तथा राग-द्वेप आदि अथवा पुद्गलादि परपदार्थोंको त्याग देते हैं।

भेदविज्ञान मोक्षकी जड़ है।

भेदविज्ञान आत्माके और परद्रव्योंके गुणोंको स्पष्ट जानता है। परद्रव्योंसे अपनेको छुड़ाकर शुद्ध अनुभवमें स्थिर होता है, और उसका अभ्यास करके संवरको प्रगट करता है, आस्रव द्वारका निग्रह करके कर्मजनित महा अन्धकार नष्ट करता है राग-द्वेप आदि विभाव छोड़कर समता भाव स्वीकार करता है, और विकल्प रहित निज पद पाता है, तथा निर्मल, शुद्ध, अनन्त, अचल और परम अतिन्द्रिय सुख प्राप्त करता है। अतः मोक्षके कारण भूत संवरके २० और ५७ भेद वर्णन किये जाते हैं।

संवरके २० भेद

(१) सम्यक्त्व-संवर, (२) व्रत-संवर, (३) अप्रमाद-संवर, (४) अकपाय-संवर, (५) अयोग-संवर, (६) अहिंसा-संवर, (७) सत्य-संवर, (८) अचौर्यकर्म-संवर, (९) ब्रह्मचर्य-संवर, (१०) अपरिग्रह-संवर, (११) श्रुतेन्द्रियनिग्रह संवर, (१२) चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह-संवर, (१३) घ्राणेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१४) रसेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१५) स्पर्शेन्द्रिय निग्रह-संवर, (१६) शुभमनोयोग-संवर, (१७) शुभवचन

संयोजना—दूधमें शक्कर आदिका संयोग मिलाकर खाना।

पमाणं—प्रमाणसे अधिक आहार करना।

इङ्गाले—प्रशंसा करता हुआ खाय।

धूम—निन्दा करके खाना।

कारणं—विना कारण खाना।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

आहार करनेके ६ कारण

१—क्षुधा वेदनाको शान्त करनेके लिये।

२—औरोंकी सेवा करनेके लिये।

३—ईर्या पूर्वक देखनेकी शक्तिको स्थिर रखनेके लिये।

४—संयमका पालन करनेके लिये।

५—प्राणोंको सुरक्षित रखनेके लिये।

६—धर्म चिन्तवन क्रिया सुगमतासे स्थिर रखनेके लिये।

(गा० ३३ उ० अ० २६)

उपरोक्त ६ कारणोंसे साधु आहार पानी भोगता है अन्यथा नहीं।

आदान निक्षेप समितिके पांच भेद

१—द्रव्यसे—मर्यादा पूर्वक भंडोपकरण रक्खे।

२—क्षेत्रसे—घर गृहस्थीके घर न रक्खे।

३—कालसे—यथा काल, नियत कालमें प्रति लेखना करे।

४—भावसे—उपयोग पूर्वक।

३—कालसे— जबतक चले।

४—भावसे उपयोग पूर्वक दश बातें त्याग दे, (१) शब्द (२) रूप (३) रस (४) गन्ध (५) स्पर्श (६) पढ़ना (७) पूछना (८) परिवर्तना (९) अनुप्रेक्षा (१०) धर्मकथा। ये दश कार्य चलते समय न करे।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

भाषासमितिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—विना विचारे न बोले।

२—क्षेत्रसे—चलते समय बातें न करे।

३—कालसे— तीन घण्टे रात बीतनेपर उच्चस्वरसे न बोले।

४—भावसे—उपयोग पूर्वक आठ प्रसङ्ग छोड़कर वार्तालाप करे।

(१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ (५) हंसी (६) भय (७) वेतुकी बातें कहना (८) विकथा।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

एषणा समितिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—४२ दोष रहित आहार ले।

२—क्षेत्रसे दो कोससे अधिक आहार-विहारमें न ले जावे।

३—कालसे—पहले पहरका लाया हुआ आहार पिछले पहरमें न खाय।

४—भावसे उपयोग पूर्वक, पांच दोष मण्डलके न लगने दे, यथा—

वचनगुप्तिके ५ भेद

१—द्रव्यसे सरंभ, समारंभ, आरंभमें वचनको न लगावे।

२—क्षेत्रसे—जहां भी निवास करता हो।

३—कालसे—दिन रात।

४—भावसे—उपयोग पूर्वक।

५—गुणसे – निर्जरार्थ।

कायागुप्तिके पांच भेद

१—द्रव्यसे—सरंभ, समारंभ, आरंभमें काययोग न लगावे।

२—क्षेत्रसे—जिस क्षेत्रमें हैं।

३—कालसे—दिन रात।

४—भावसे—उपयोग पूर्वक।

५—गुणसे—निर्जरार्थ।

ये आठ दयामाताके प्रवचन हैं

१—उपयोगसे चलना 'ईर्या समिति' है।

२—निर्दोष भाषा कहना 'भाषा समिति' है।

३—निर्दोष आहार ४२ दोष रहित लेना, एषणा समिति है।

४—आंखोंसे देखकर रजोहरणसे मार्जन करके वस्तुओंका रखना, उठाना, 'आदान निक्षेप समिति' है।

५—कफ, मूत्र, मल आदिको निर्जीव स्थानपर त्यागना 'परिष्ठापनिका' समिति है।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

परिष्ठापनिका समतिके ५ भेद

१—द्रव्यसे—दश बोलको छोड़कर परिष्ठापना करे।

अणावायमसंलोए, अणावायचेव होय संलोए।
अवायमसंलोय. अवायचेवसंलोय ॥१॥
अणावयमसंलोए परस्सणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि. अचिरकालकयम्मिय ॥२॥
विच्छिन्ते दूरमोगाढे, नासन्ने विलवज्जिए।
तसपाणवीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥३॥

२—क्षेत्रसे—अचितस्थानमें।

३—कालसे—दिनमें देखकर रातको पूंजकर परठे इत्यादि।

४—भावसे उपयोग पूर्वक।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

तीन गुप्तिऐं

मनोगुप्तिके ५ भेद

द्रव्यसे—सरंभ, समारम्भ, आरम्भमें मनको न लगावे।

२—क्षेत्रसे—जिस क्षेत्रमें रहता हो।

३—कालसे—दिन रातमें।

४—भावसे—उपयोग सहित।

५—गुणसे—निर्जराके लिये।

५ यथाख्यातचरित्र

सव लोकमें यथाख्यात चरित्र प्रसिद्ध है। जिसका सेवन करनेपर साधु मोक्ष पाता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार कषायोंका क्षय होनेपर जो चरित्र होता है उसका नाम 'यथाख्यात चरित्र' है।

इति संवर-तत्व ।

६ मनोगुप्तिके तीन भेद

१—असत्कल्पना वियोगिनी—आर्त तथा रौद्रध्यान सम्बन्धी कल्पनाओंका त्यागना।

२—समताभाविनी—सब जीवोंमें समभाव रखना।

३—केवल ज्ञान होनेपर सम्पूर्ण योगोंका निरोध करते समय 'आत्मारामता' होती है।

७ वचनगुप्तिके दो भेद

१—'मौनावलम्बिनी'—किसी अभिप्रायको समझानेके लिये भ्रकुटी आदिसे संकेत न करके 'मौन धारण' करना।

२—'वाङ्नियमिनी' मुखवस्त्रिकाको रखना।

८ कायगुप्तिके दो भेद

चेष्टानिवृत्ति - योगनिरोधावस्थामें केवलीका सर्वथा शरीर चेष्टाका परिहार तथा कायोत्सर्गके समय अनेक उपसर्ग होनेपर भी शरीरको स्थिर रखना है।

'यथा सूत्रचेष्टानियमिनी'—साधु लोक उठते, बैठते, सोते समय जैनसिद्धान्तके अनुसार शारीरिक चेष्टाओंको नियमित रखते हैं।

२२ परिषह

१ क्षुधापरिषहजय

भूख लगनेपर धैर्य रखना, यह सबमें कड़ा है।

२ पिपासा परिषह

निर्दोष और अचित पानी न मिलनेपर प्यासके वेगको रोकना।

३ शीतपरिषह

तीन वस्त्रसे अधिक न रखना और शीत लगनेपर सेकने तापने-की इच्छा न करना शीतपरिषह है।

४ उष्णपरिषह

गर्मीके दिनोंमें आतापना लेना, स्नान न करना, छाता न तानना, पंखेसे हवा न करना, गर्मीको समभावसे सहना, यह 'उष्णप-रिषह' कहलाता है।

५ दंशपरिषह

डांस, मच्छर, सांप, बिच्छूके उपद्रवको सहना, इनके डरसे मच्छरदानी न तानना।

६ अचेलपरिषह

पुराने वस्त्र रखना, और वह भी तीनसे अधिक न रखना, "निग्रन्थेहि पावचउत्थेहि इत्याचारांगवचनात" और गर्मीमें एक या दो रखना, तथा उनको भी त्याग देना।

७ अरतिपरिषह

प्रतिकूल संयोगमें खेद न करना।

८ स्त्रीपरिषह

स्त्रियोंके हाव-भावोंमें मोहित न होना स्त्रीपरिषह है।

९ चर्यापरिषह

जंघामें वल रहते हुए एक स्थानपर न रहकर सदैव विचरते रहना। अप्रतिवद्धविहारी होकर धर्मोपदेश करनेके लिये घूमना।

१० नैषेधिकीपरिषह

भयका निमित्त मिलनेपर भी ध्यानसे आसन न हटाना, श्मशान, शून्यमकान, गुफा आदि स्थानोंमें ध्यान करते समय नाना उपसर्ग आनेपर निषिद्ध चेष्टा न करना।

११ शय्यापरिषह

जहां ऊंची-नीची जमीन हो, धूल पड़ी हो, विस्तर अनुकूल न हो, नींदको हानि पहुंचती हो, परन्तु उस समय मनमें उद्वेग न करना।

१२ आक्रोशपरिषह

किसीकी गाली या कटुक वचनका सहना, स्वयं कटुक शव्द न कहना।

१३ बधपरिषह

कोई मारे पीटे या जान निकाल दे तव भी क्रोध न करे। साधुका यही धर्म है, इसके विना वह धर्मद्रोही है।

१४ याचनापरिषह

उसके स्थानपर यदि कोई गृहस्थ किसी वस्तुको लाकर दे तब न लेना, किन्तु स्वयं भिक्षा मांगनेके लिये जाना, अगर वहां कोई अपमान कर दे तो उसे सहना, बुरा न मानना, मानहानि न समझना, प्राण जानेपर भी आहारके लिये दीनतारूप प्रवृत्तिका सेवन न करना।

१५ अलाभपरिषह

अन्तराय कर्मके उदयसे वांछित पदार्थकी प्राप्ति न हो तब खेद खिन्न न होना। समचित्तवृत्ति रखना।

१६ रोगपरिषह

रोग जनित कष्ट सहना, परन्तु उसके दूर करनेका उपाय न करना, यह सोचना कि अपना किया कर्मफल मिल रहा है, किन्तु वेदना प्रयुक्त आर्तध्यान कभी न करना, 'रोगपरिषह' जीतना है।

१७ तृणस्पर्शपरिषह

घास फूसकी शय्या चुभने लगे तब व्याकुल न होकर शान्त चित्तसे कठोर स्पर्शको सहना, तिनका या कांटा चुभनेपर घबराहट न करना।

१८ मलपरिषह

मलमूत्र या दुर्गंधित पदार्थोंसे ग्लानि न करना, तथा पसीनेसे शरीर कष्ट पाता हो, या शरीरमें मैल बढ़ गया हो, बदबू आने लगे

तव भी स्नान न करना क्योंकि यह शरीरका मंडन बुरा है।

१६ सत्कारपुरस्कारपरिषह

मान अपमानकी परवाह न करना, अनादर पाकर संक्लेश भाव पैदा न करना।

२० प्रज्ञापरिषह

विशाल ज्ञान पाकर गर्व न करना, बड़ी विद्वता पाकर घमण्डी न बनना।

२१ अज्ञानपरिषह

अल्पज्ञान होनेसे लोग छोटा गिनते हैं, इससे शायद दुःख होने लगे तो उसे दमन करते हैं, उसे साधु समतासे सहते हैं. तथा ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे पढ़ते समय खूब परिश्रम करनेपर भी ज्ञान न प्राप्त होता हो, तब साधु कुछ भी चिन्ता न करे, विद्या न आनेपर अपनेको न धिक्कारे, किन्तु अपने कृतकर्मका परिणाम सोचकर सन्तोष धारण करे।

२२ दर्शनपरिषद

दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनमें कदाचित् दोष उत्पन्न होने लगे तब सावधान रहे चलायमान न हो, वीतरागके उपदिष्ट पदार्थोंपर सन्देह न करे। इत्यादि २२ परिषह हैं।

दश विध यति धर्म

१—सब प्राणियोंपर समान दृष्टि रखनेसे तथा उनमें और

अपनेमें अभेद दृष्टि रखनेसे क्रोध नहीं होता। क्रोधका न होना 'क्षमा' है।

२—अहंकारका त्याग करना 'मार्दव' है।

३—कपट न करना 'आर्जव' है।

४—लोभ न करना 'मुक्ति' है।

५—इच्छाका रोकना 'तप' है। यह बाह्य और अभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है।

६—प्राणातिपात (हिंसा) आदिका त्यागना 'संयम' है।

७—सच बोलना 'सत्य' है।

८—अपने वर्तावमें किसीको कष्ट न होना तथा शरीर और मन तथा आत्माका पवित्र रखना 'शौच' है।

९—सब परिग्रहोंका त्यागना 'अकिंचनत्व' कहाता है।

१०—मैथुन तथा इन्द्रिय विषय-वासनाओंका त्याग करना, तथा आत्म गुणमें रमण करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है।

ऊपर कहे गये दश गुण जिसमें हों, वही साधु होता है।

१२ भावना

१ अनित्य भावना

शरीर, कुटुम्ब, धन, परिवार, जीवन, पर्याय, सब विनाशी हैं, जीवका मूल धर्म अविनाशी है. चांद-सूर्य उदय होकर नित्य अस्त हो जाते हैं, छहों ऋतुएँ बदलती रहती हैं। अपनी आयुको पल पल घटना देखते हैं, पानी पहाड़ोंसे बह कर नदिओंमें मिल जाता है,

परन्तु वहां वापस नहीं जाता, इसी भांति निकले हुए शरीरके श्वांस फिर न आयेंगे। युवावस्था ओस बून्दकी तरह लुप्त हो जाती है, संसारका वैभव आकाश धनुषकी तरह अधिक नहीं रहता। जिन्हें आप अपनी आंखोंसे देख रहे हो वे सब वस्तुएं अनित्य हैं।

२ अशरण भावना

संसारमें मरणके समय जीवका त्राण शरण कोई नहीं है, आत्मा का धर्म ही शरणभूत है। काल बाज़की तरह बलवान् है, जीवरूप कबूतरको संसार वनमें घेर लेता है, उस समय बचाने वाला कोई नहीं है। मंत्र, यंत्र, तंत्रसे तथा सेना, धनसे जीवन और वैभव बच नहीं सकता। काल लुटेरा काय नगरमें से न जाने कब आत्म धन चुरा ले जाय, जिसकी खबर किसीको नहीं है। अतः अर्हन् प्रभुका उपदिष्ट धर्म और सद्गुरुका शरण ही भव जलधिसे बेड़ा पार करेगा। अतः चेतन! भ्रमणाकी भटकन छोड़! और उनका साथ पकड़!

३ संसार भावना

मेरे जीवने संसारमें भ्रम कर सब प्रकारके जन्म धारण किये हैं। हाय! इस संसारसे मैं कब छूटूंगा। यह संसार मेरा नहीं है। मैं तो अज हूं, अजर-अमर हूं, मोक्षमय हूं। संसारमें जीव सदैव जन्म-मरण और जरा रोगसे दुःखी रहता है। सब द्रव्य-क्षेत्र काल भावोंमें परिवर्तनका दुधारा सहता रहा है। नरकके छेदन-भेदन आदि तथा पशु पर्यायके वध-बन्धन आदि अनन्त कष्ट

परवशतया अनन्तवार सह चुका है। रागके उदयसे देवता स्वर्गमें भी पराई सम्पत्तिको भी देख देख कर झूरता रहा है। इसी कारण उसे तीव्र रागानुबन्धमें देवभवसे पतित होकर एकेन्द्रियमें गिरना पड़ा, मनुष्य जन्म भी अनेक विपत्तियोंसे घिरा हुआ है। पंचम गति, मोक्षके विना किसीकी शरण सुखप्रद नहीं है।

४ एकत्व भावना

मेरा आत्मा अकेला ही है, अकेला ही आया है और अकेला ही जायगा, अपने किये कर्मोंको अकेला ही भोगेगा। संसारकी संगतिमें जन्म मरणकी मार लोहमें आगकी तरह खानी पड़ती है। कोई और संगी साथी आपत्तिमें न होगा। शरीर सबसे पहले जवाब दे जाता है। लक्ष्मी इस जन्मकी भी साथी नहीं होती, परिवार श्मशानमें जाकर अपने हाथों भस्म कर आता है। रोना, पीटना अपने सुखको याद करते समय होता है। उसके दुःखकी किसे पर्वाह है। मेलेमें पथिकोंकी प्रीति चार घड़ी रहती है। स्टेशनपर मुसा-फिर दो घड़ी मिल पाते हैं। वृक्षोंपर पक्षीगण एक रात बसेरा करते हैं। सूखे तालाबपर कोई नहीं जाता, इसी तरह स्वार्थमय संसारका स्वार्थमय प्रेम-सम्बन्ध है, हंस परलोकमें अकेला हो जाता है, इसके साथ और किसको पर मारना है ?

५. अन्यत्व भावना

इस विश्वमें कोई किसीका नहीं है, मोहकी मृगतृष्णा है, इसमें मिथ्या जल चमक रहा है। चेतनरूप मृग दौड़-दौड़कर थक चुका

है। सुखका जल क्षण मात्रको भी नहीं मिल पाया है, योंही भटक-भटक कर प्राण देकर मर रहा है। पर वस्तुको अपना मान कर नाहक मूर्ख वन रहा है। ओ आत्मन् ! तू तो चेतन है ! अनन्त सुखकी राशि है। यह देह अचेतन है, जड़ है, नरककी कुंभी है किसपर मोहित है। आह तेरी कितनी नादानी है, इसीमें अनादि कालसे दूध और पानीकी तरह मिलकर विछड़ता रहा है। जीव ! तेरा रूप सबसे न्यारा और निराला है. अब कुछ भेद विज्ञान प्राप्तकर पानीसे पयको अलग स्थापन कर। इसीको अलग करनेका अथक परिश्रम किया जाय।

६ अशुचि भावना

यह शरीर मल-मूत्रकी खान है, अपवित्र है. जरा-रोगसे भरपूर है। मैं शरीरसे अलग ही वस्तु हूं, तू किसकी पोषणा कर रहा है, इसे हाथीकी तरह नित्य क्यों धोता है, कितना ही धोता रह मगर इसे तो सदैव अशुद्ध ही रहना है, वाहरका पर्दा चाहे गौर वर्णका लगता है. परन्तु अन्दरकी रचना अत्यन्त घिनावनी है, माता पिताके रजोवीर्यसे ही तो आखिर यह तेरा देह वना है, खेहसे वननेवाली वस्तुपर इतना नेह आखिर किस लिये करता है, मांस, हाड़, लहू, राधका परनाला है, इसमें कुछ सार तो नहीं है. फिर किसपर इतना आसक्त है। इसकी अपावनताको तो जरा देख ! केसर चन्दन, फूल, मिठाई, कपड़ा, रेशम, इसकी ज़रासी संगतिसे बेआव हो जाते हैं, तथा अपने मूल्यसे गिरकर मिट्टी वन जाते हैं।

इसमेंसे तो ज्ञान, ध्यान, तप, संयमका ही सार निकाल ! आखिर यह मानव देहमात्र धर्मका आराधन करनेके लिये ही तो है, नहीं तो अन्तमें इसे रखेंगे और कुत्ते खायेंगे, या आगमें स्वाहा, या जमीनमें गायब ।

७ आस्रव भावना

राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व, प्रमुख ये सब आस्रव हैं, इन्होंने पानीमें कंकरकी तरह आत्माको भारी बना डाला है ।

तालाबका पानी जिस प्रकार उसमें आकर पड़नेवाली नालियोंसे बढ़ता है, इसी तरहसे पुण्य-पाप रूप कर्म-आस्रव जीवके प्रदेशोंमें आकर इसे भारी बनाए डालते हैं । इसके ५७ हेतु हैं । अतः 'अहं-भाव' ममता भावकी परिणतिका नाश कर, और निरास्रवी बनकर मोक्षका यतन कर, यदि तू ज्ञानी है तो !

८ संवर भावना

ज्ञान-ध्यानमें वर्तनेवाला जीव नवीन कर्मबंध नहीं करता, जिस प्रकार उन नालियोंमें डाट लगा जानेपर पानी आनेसे रुक जाता है, इसी प्रकार संवर भाव आस्रवोंको एकदम रोक देता है. महाव्रत, समिति, गुप्ति, यतिधर्म, भावना, परिषह सहना, इत्यादि प्रयास संवर-मय हैं । संसार रूप अवस्थासे निकाल कर यह प्रयत्न चेतनको जागृत दशामें लानेवाला है ।

९ निर्जरा भावना

ज्ञान सहित चरित्र निर्जराका कारण है, जिस प्रकार रुके हुए

संवर जल नामक प्रयासको ताप सुका देता है, इसी प्रकार अतीत कालके कर्म जलको सुकानेवाली निर्जरा है। उदयावलीको भोग ले, क्योंकि विपाकके समय आमके फल पक जाते हैं। मगर जिस भांति पालमें देकर भी फलको पका लिया जाता है. इसी भांति उदीरणा-उद्यमसे भी कर्मको उदयमें लाकर उसे भोगकर आत्मासे अलग कर दिया जाता है। इसीलिये संवर समेत १२ प्रकारका तप करनेसे मुक्तिरानी जल्दी पा सकोगे। उस मुक्ति दुलहनको यह निर्जरा नामक सखी आत्मासे मिलानेमें सबसे चतुर है।

१० लोक स्वरूप भावना

१४—राजुलोकका स्वरूप विचारना।

११ बोधि दुर्लभ भावना

संसारमें भटकते हुए जीवको सम्यक्त्वका पाना तथा ज्ञानका पाना दुर्लभ है, अथवा सम्यक्त्वको पाकर भी सर्वविरति रूप चरित्र परिणाम रूप धर्मका पाना तो और भी दुर्लभ है। नर जन्म, आर्यदेश, आर्यजाति, आर्यकर्म आदिका योग मिलना वार-वार नहीं होता। ४—५ वां गुणस्थान दुर्लभ है। रत्नत्रयका आराधन और दीक्षा वहन दुर्लभ है। मुनि वनकर शुद्ध भावको वृद्धि करना तो और भी दुर्लभ है। सबसे अलभ्य केवलज्ञान पाना है जिसे अब तक नहीं पा सका है।

१२ धर्म भावना

धर्म और सच्चा धर्मोपदेष्टा, तथा शुद्ध आगमका श्रवण कठिन है।

१२ भावनाओंका पृथक्-पृथक् मनन करनेवाले

१—भरतचक्रवर्ती, २—अनाथी महानिग्रन्थ, ३—शालिभद्र-धन्य सेठ, ४—नमिराजऋषि, ५—मृगापुत्र, ६—सनत्कुमार चक्रवर्ती, ७—समुद्रपाली, ८—केशीगौतम, ९—अर्जुनमाली, १०—शिवराजऋषि, ११—ऋषभदेवजीके ९८ पुत्र, १२—धर्मरुचि।

पांच चरित्र

१ सामायिक चरित्र

सदोष व्यापारका त्याग, और निर्दोष व्यापारका सेवन अर्थात् जिससे ज्ञान, दर्शन, चरित्रकी सम्यक् प्राप्ति हो उसे या उस व्यापार-को 'सामायिक चरित्र' कहते हैं।

२ छेदोस्थापनीय चरित्र

प्रधान साधुके द्वारा प्राप्त पांचमहाव्रतोंको कहते हैं।

३ परिहारविशुद्धि चरित्र

नव साधु गच्छसे अलग होकर सूत्रानुसार विधिके अनुकूल १८ मासतक तप करते हैं।

४ सूक्ष्मसम्पराय चरित्र

दशवें गुणस्थानमें पहुंचे हुए साधुका श्रेष्ठ चरित्र।

५ यथाख्यातचरित्र

सब लोकमें यथाख्यात चरित्र प्रसिद्ध है। जिसका सेवन करनेपर साधु मोक्ष पाता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार कषायोंका क्षय होनेपर जो चरित्र होता है उसका नाम 'यथाख्यात चरित्र' है।

इति संवर-तत्त्व ।
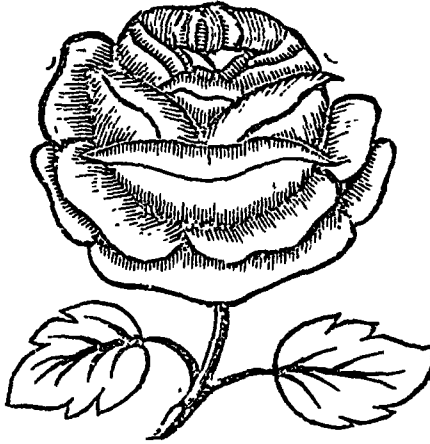
निर्जरा-तत्त्व

निर्जरा किसे कहते हैं ?

आत्मासे लगे हुए कुछ कर्म जिसके द्वारा अलग हो जायँ, उसे निर्जरा कहते हैं। जीव कपड़ेकी तरह है, इस पर कर्म रूप मैल चढ़ गया है, संयम साबुन है, ज्ञान रूप पानी है, इससे आत्मा उज्वल होता है। जिसे निर्जरा कहते हैं।

अथवा जो पूर्वस्थित-कर्म अपनी अवधि पूर्ण करके जब झड़नेको तत्पर होता है उसे 'निर्जरा, पदार्थ कहते हैं।

अथवा जो संवरकी अवस्था प्राप्त करके आनन्द करता है, जो पूर्वके बांधे हुए कर्मोंको नष्ट करता है, जो कर्मके फंदेसे छूटकर फिर नहीं फँसता उस भावको निर्जरा कहते हैं।

ज्ञानबलसे कर्म बन्ध नहीं होता

सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे और वैराग्यके बलसे शुभाशुभ क्रिया करते हुए और उसका फल भोगते हुए भी कर्मबंध नहीं होता है। जिस प्रकार राजा खेलने या छोटे काम करने लगे तब भी वह खिलाड़ी कहलाता है, उसे कोई गरीब नहीं कहता। अथवा जैसे व्यभिचा-रिणी स्त्री पतिके पास रहती है तब भी उसका मन उसके उपपतिमें

ही रहता है, अथवा जिस प्रकार धाय अन्यके बालकको दूध पिलाती है, लाड़ करती है, गोदमें लेती है तब भी उसे दूसरेका बालक जानती है, अपना नहीं। मुनीम जैसे आय-व्ययका ठीक हिसाब रखता है, खजानेकी तालियां खुद रखता है, परन्तु उस धनको अपनी मालिकीमें नहीं समझता किन्तु रक्षक समझता है। उसी प्रकार ज्ञानी जीव उदयकी प्रेरणासे* भांति भांतिकी शुभाशुभ क्रिया करता है, परन्तु उस क्रियाको आत्म स्वभावसे भिन्न कर्म जनित मानता है इससे सम्यग्ज्ञानी जीवको कर्मकालिमा नहीं लगती, जैसे कमल कीचसे उतपन्न होता है और दिन-रात कीच-कर्दममें रहता है परन्तु उस पर कीचड़ नहीं जमता, अथवा जिस प्रकारसे मन्त्रवादी अपने शरीरको सांपसे कटवा लेता है परन्तु मन्त्रकी शक्तीसे उस पर विषका प्रभाव नहीं होता. अथवा जिस प्रकार जीभ चिकने पदार्थ खाती है, परन्तु चिकनी नहीं होती सदैव रूखी ही रहती है, अथवा जिस प्रकार सोना पानीमें पड़ा रहे तब भी उस पर काई नहीं आती। उसी प्रकार ज्ञानी जीव उदयकी प्रेरणासे भांति-भांतिकी शुभाशुभ क्रिया करता है, परन्तु उसे आत्म स्वभाव से भिन्न कर्म जनित मानता है, इससे सम्यग्ज्ञानी जीवको कर्मका-लिमा नहीं लगती।

वैराग्य शक्ति

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व जन्मके बंधे कर्मोंके उदयसे विषयादि

* गृहवासी, तीर्थंकर, भरत, चक्रवर्ती, राजाश्रेणिक, कृष्ण, वासुदेव, आदिकी समान।

भोगते हैं परन्तु उन्हें कर्मबंध नहीं होता यह उनके अन्तरात्माके वैराग्यका प्रभाव है।

ज्ञान और वैराग्यसे मुक्ति

सम्यग्दृष्टि जीव सदैव अन्तःकरणमें ज्ञान और वैराग्य दोनों गुण धारण करते हैं। जिनके प्रतापसे निज आत्म-स्वरूपको देखते हैं। और जीव अजीव आदि तत्त्वोंका निर्णय करते हैं। वे आत्म अनुभव द्वारा निज स्वरूपमें स्थिर होते हैं। तथा संसार समुद्रसे आप स्वयं पार होते हैं और दूसरोंको पार करते हैं। इस प्रकार आत्म तत्त्वको सिद्ध करके कर्मोंका फंदा हटा देते हैं। और मोक्षका आनन्द प्राप्त करते हैं।

सम्यग्ज्ञानके बिना चरित्रकी निःसारता

जिस मनुष्यमें सम्यग्ज्ञानकी किरण तो प्रगट हुई न हो और अपनेको सम्यग्दृष्टि मानता है। वह निजके आत्म-स्वरूपको अबंधरूपमें निश्चय नयसे एकान्त पक्षको लेकर मानता है, शरीर आदि पर वस्तुमें ममत्व रखता है, और कहता है कि हम त्यागी हैं। वह मुनिराजके समान वेष धरता है, परन्तु अन्तरंगमें मोहकी ध्वंस-रूप ज्वाला धधकती है, वह सूना और मुर्दादिल होकर मुनिराज जैसी क्रिया करता है। परन्तु वह मूर्ख है। वास्तवमें वह साधु न कहलाकर द्रव्यलिंगी है।

भेद विज्ञानके बिना कुछ नहीं

वह मूर्ख ग्रन्थ रचता है, धर्मकी चर्चा करता है, शुभ-अशुभ

क्रियाको जानता है, योग्य व्यवहार और सन्तोषको संभालता है, अर्हन् प्रभुकी भक्ति करता है। उत्तम और निर्वद्य उपदेश करता है। विना दिया कुछ नहीं लेता। वाह्य परिग्रह छोड़कर नग्न फिरता है, अज्ञान रसमें उन्मत होकर वालतप-अज्ञान कष्ट करता है। वह मूर्ख ऐसी क्रियायें करता है, परन्तु आत्म सत्ताका भेद नहीं जानता। आसन लगा कर ध्यान करता है, इन्द्रियोंका दमन करता है, शरीरसे अपने आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं गिनता, धन, सम्पत्ति-का त्याग करता है [स्नान नहीं करता] प्राणायाम आदि योग※ साधन करता है। संसार और भोगोंसे विरक्त रहता है, मौन धारण करता है, कषायोंको मंद करता है, वध-बन्धन सह कर सन्तापित नहीं होता। वह मूर्ख ऐसी क्रियायें करता है परन्तु आत्म-सत्ता और अनात्मसत्ताका भेद नहीं जानता! और जो सम्यग्ज्ञानके विना चरित्र धारण करता है या विना चरित्रके मोक्ष चाहता है, तथा विना मोक्षके अपनेको सुखी कहता है वह अज्ञानी है, मूर्खोंमें प्रधान अर्थात् महामूर्ख है।

गुरु शिक्षा अज्ञानी नहीं मानता

श्रीगुरु संसारी जीवोंको उपदेश करते हैं कि-तुम्हें इस संसारमें मोह नींद लेते हुए अनन्तकाल बीत चुका है, अब तो प्रमादको छोड़-कर जागृत हो जाओ। और सावधान होकर शान्त चित्तसे

※ आसन, प्राणायाम, यम, नियम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार, समाधि ये आठ योग पहिचान।

भगवान् वीतरागकी वाणी सुनो ! जिससे इन्द्रियोंके विषयोंको जीता जा सके। मेरे समीप आओ मैं कर्म कलंक रहित 'आनन्दमय परमपद' तुम्हारे आत्माके गुण तुम्हें बताऊं। श्रीगुरु ऐसे वचन कहते हैं, तब भी संसारसे मोहीत जीव कुछ ध्यान नहीं देते। मानों वे मिट्टीके पुतलेके समान होते जा रहे हैं। अथवा चित्रमें लिखे मनुष्य हैं।

जीवकी शयनावस्था

इतने पर भी कृपालु गुरु जीवकी निद्रित और जाग्रत दशाका कथन मधुर भाषामें करते हुए बताते हैं कि-पहले निद्रित दशाको इस तरह विचारो कि—शरीर रूपी महलमें कर्मरूपी बड़ा पलंग है, माया (कर्म प्रकृतिओं) की सेज सजाकर तैयार की गई है, जब राग द्वेषके बाह्य निमित्त नहीं मिलते तब मनमें नाना संकल्प विकल्प उठते हैं, यह कल्पनारूपी चादर है, स्वरूपकी विस्मृतरूप नींद ले रहा है, मोहके झकोरोंसे नेत्रोंके पलक ढँक रहे हैं। कर्मोदयकी जबरदस्ती घुरकनेकी आवाज़ आती है। विषय सुखके कार्योंके हेतु भटकना ही एक प्रकारका स्वप्न है; ऐसी अज्ञान अवस्थामें आत्मा सदासे मग्न होकर मिथ्यात्वमें भटकता फिरता है, परन्तु अपने आत्म-स्वरूपको नहीं देखता।

जीवकी जाग्रत अवस्था

जब सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है तब जीव विचारता है कि—शरीररूप महल भिन्न है, कर्मरूप पलंग जुदा है, मायारूप सेज भी

जुदी है, कल्पनारूप चादर भी जुदी है, यह निद्रावस्था मेरी नहीं है. पूर्वकालमें सोनेवाली मेरी दूसरी ही पर्याय थी, अब वर्तमानका एक पल भी निद्रामें न विताऊंगा। उदयका निःश्वास और विपयका स्वप्न ये दोनों निद्राके संयोगसे दिखते थे। अब आत्मरूप दर्पणमें मेरे समस्त गुण दिखने लगे। इस प्रकार आत्मा अचेतन भावोंका त्यागी होकर ज्ञानदृष्टिसे देखकर अपने स्वरूपको सम्भालता है। तब इस प्रकार जो जीव संसारमें आत्मानुभव करके सचेत होता है, वह सदैव मोक्ष रूप ही है, और जो अचेत होकर सोते हैं वे संसारी हैं।

आत्मानुभव ग्रहण करो

जो जन्म मरणका भय हटा देता है, उपमा रहित है, जिसे ग्रहण करने पर और सब पद विपत्ति रूप भासने लगते हैं, उस आत्मपद रूप अनुभवको अंगीकृत करो। क्योंकि यह संसार तो सर्वथा असत्य है, और जब जीव सोता है तब ही स्वप्नको सत्य मानता है, परन्तु जब जागता है तब वह उसे झूठा प्रतीत होता है, और शरीर अथवा धन सामग्रीको अपना गिनता है. तदनन्तर मृत्युका खयाल करता है. तब उन्हें भी वह झूठा मानता है, जब अपने स्वरूपका विचार करता है तब मृत्यु भी असत्य ही जान पड़ने लगती है, और दूसरा अवतार सत्य दिखता है. जब दूसरे अवतार पर विचार करता है तब फिर इसी चक्करमें पड़ जाता है। इस प्रकार खोजकर देखा जाय तो यह जन्म मरण रूप समस्त संसार असत्य ही असत्य दिखता है।

सम्यग्ज्ञानीका आचरण

सम्यग्ज्ञानी जीव भेदविज्ञानको प्राप्त करके एक आत्मा ही को ग्रहण करता है, देहादिसे ममत्वके नाना विकल्प छोड़ देता है। मति, श्रुति, अवधि इत्यादि क्षायोपशमिक भाव छोड़ कर निर्विकल्प केवल ज्ञानको अपना स्वरूप जानता है, इन्द्रिय जनित सुख-दुःखसे रुचि हटाकर शुद्ध आत्म अनुभव करके कर्मोंकी निर्जरा करता है, और राग-द्वेष मोहका त्याग करके उज्वल ध्यानमें लीन होकर आत्माकी आराधना करके परमात्मा हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान समुद्र है

जिस ज्ञानरूप समुद्रमें अनन्तद्रव्य अपने गुण और पर्यायों सहित सदैव प्रतिबिम्बित होते हैं, पर वह उन द्रव्योंकेरूपमें नहीं होता। और न अपने ज्ञायक स्वभावको ही छोड़ता है, वह अत्यन्त निर्मल जलरूप आत्मा प्रत्यक्ष है, जो अपने पूर्ण रसमें मौज करता है, तथा जिसमें मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्याय और केवल ज्ञान रूप पांच प्रकारकी लहरें उठती हैं, जो महान् है, जिसकी महिमा अपार है, जो निजाश्रित है, वह ज्ञान एक है, तथापि ज्ञेयोंको जाननेकी अनेकताको लिये हुए है।

भावार्थ— यहां ज्ञानको समुद्रकी उपमा दी है, समुद्रमें रत्नादि अनन्त द्रव्य रहते हैं, ज्ञानमें भी अनन्त द्रव्य प्रतिबिम्बित होते हैं, समुद्र रत्नादिरूप नहीं हो जाता है, ज्ञान भी ज्ञेय रूप नहीं होता। समुद्रका जल निर्मल रहता है, ज्ञान भी निर्मल रहता है। समुद्र

परिपूर्ण रहता है, ज्ञान भी परिपूर्ण रहता है। समुद्रमें लहरें उठती है, ज्ञानमें मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय. केवल ज्ञान आदि तरंगे उठती है। समुद्र महान् होता है, ज्ञान भी महान् होता है, समुद्र अपार होता है, ज्ञान भी अपार है। समुद्रका पानी निजाधार रहता है, ज्ञान भी निजाधार है, समुद्र अपने स्वरूपकी अपेक्षा एक और तरंगोंकी अपेक्षा अनेक होता है, इसी प्रकार ज्ञान भी ज्ञायक स्वभावकी अपेक्षा एक और ज्ञेयोंको जाननेकी अपेक्षा अनेक होता है।

ज्ञान रहित क्रियासे मोक्ष नहीं

अनेक अज्ञजन कायक्लेश करते हैं, पांच धूनीकी अग्निमें अपने शरीरको जलाते हैं, गांजा, चरस, भांग, तमाखू आदि पीते हैं, नीचे सिर और ऊपर पैर करके लटकते हैं. महाव्रतोंको लेकर तपश्चरणमें लीन रहते हैं, परिषह आदिका कष्ट उठाते हैं, परन्तु ज्ञानके विना उनकी यह सब क्रिया कण रहित पयालके पूलोंके समान निस्सार है, ऐसे जीवोंको कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। वे पवनके वगूले (वंटोलिया) के समान संसारमें भटकते हैं,—कहीं ठिकाना नहीं पाते। जिनके हृदयमें सम्यग्ज्ञान है उन्हीं को मोक्ष है, जो ज्ञान शून्य क्रिया करते हैं, वे भ्रममें भूले हुए फिरते हैं।

मात्र क्रिया-लीनताका परिणाम

जो सिर्फ क्रियामें ही लीन है, और भेद-विज्ञानसे रहित है, तथा दीन होकर भगवान्के नाम और चरणोंको जपता है, और इसीसे

मुक्तिकी इच्छा करता है, उसे आत्मानुभवके विना मोक्ष कैसे मिल सकती है। भगवानका स्मरण करनेसे, पूजा-पाठ पढ़नेसे, स्तुति गानेसे तथा अनेक प्रकारका चरित्र ग्रहण करनेसे कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि मोक्ष स्वरूप तो आत्मानुभव ज्ञान गोचर है।

ज्ञानके विना मोक्ष कहां ?

कोई भी जीव विना प्रयोजनके कुछ भी उद्यम नहीं करता, विना स्वाभिमानके लड़ाईमें नहीं लड़ सकता, शरीरके निमित्तके पाये विना मोक्षकी साधना नहीं कर सकता, शील धारण किये विना सत्यका मिलाप साक्षात्कार नहीं होता। संयमके विना मोक्षका पद नहीं मिलता। प्रेमके विना रसकी रीति नहीं जानी जाती। ध्यानके विना चित्तकी स्थिरता नहीं होती, और इसी भांति ज्ञानके विना मोक्ष-मार्ग नहीं जाना जाता।

ज्ञानकी अपार महिमा है

जिनके अन्तरंगमें सम्यग्ज्ञानका उदय हो गया है, जिनकी आत्म-ज्योति जाग्रत हो गयी है, और बुद्धि सदैव निर्मल रहती है। जिनकी शरीरादि पुद्गलसे आत्म-बुद्धि हट गई है। जो आत्माके ध्यान करनेमें स्थायी निपुणता प्राप्त है। वे जड़ और चेतनकी गुण परीक्षा करके उन्हें अलग-अलग जानते है, और मोक्ष-मार्गको भलीभांति समझ कर रुचि-पूर्वक आत्माका अनुभव करते हैं।

अनुभवकी प्रशंसा

अनुभव रूप चिन्तामणि रत्नका जिसके हृदयमें प्रकाश हो जाता

है वह पवित्र आत्मा चतुर्गति भव-भ्रमणरूप संसारको नष्ट करके मोक्षपद पाता है। उसका चरित्र इच्छा रहित होता है। वह वर्तमानमें कर्मोंका संवर और पूर्वकृत कर्मोंकी निर्जरा करता है। उस अनुभवीकी आत्माके राग, द्वेष, परिग्रहका भार और आगे होनेवाले जन्म किसी भी गिनतीमें नहीं हैं। अर्थात् वह स्वल्प कालमें ही सिद्ध पद पावेगा।

सम्यग्दर्शनकी महिमा

जिनके हृदयमें अनुभवका सत्य सूर्य प्रकाशित हुआ है, और सुबुद्धि रूप किरणोंके फैलनेसे मिथ्यात्वका अन्धकार नष्ट हो गया है, जिनके सच्चे श्रद्धानमें राग द्वेषसे कोई नाता रिश्ता नहीं है, समतासे जिनका प्रेम है, और ममतासे द्रोह है, जिनकी चिन्तवना मात्रसे मोक्ष-मार्ग सधता है, और जो कायक्लेश आदिके विना मन आदि योगोंका निग्रह करते हैं, उन सम्यग्ज्ञानी जीवोंके विषय-भोगकी अवस्थामें भी समाधि कहीं नहीं जाती. उनका चलना, फिरना आसन और योग हो जाता है, और बोलना चलना ही मौन व्रत है। अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्रगट होते ही गुणश्रेणी निर्जरा प्रगट होती है। ज्ञानी चरित्र मोहके प्रवल उदयमें यद्यपि संयम नहीं ले सकते—और अव्रतकी दशामें ही रहते हैं। तथापि कर्म-निर्जरा होती ही है, अर्थात् विषयादि भोगते—चलते, फिरते और बोलते हुए भी उनके कर्म झड़ते रहते हैं। जो परिणाम, समाधि, योग, आसन, मौनका है वही परिणाम ज्ञानीके विषय, भोग, चलन, हलन

और बोल-चालका है, सम्यक्त्वकी ऐसी ही विलक्षण और पवित्र महिमा है।

परिग्रहके विशेष भेद

जिसका चित्त परिग्रहमें रमता है उसे स्वभाव और परस्वभावकी खबर ही नहीं रहती। सबप्रथम उसका त्याग करना आवश्यक है, और वह मात्र अपने आत्माको छोड़कर अन्य सब चेतन अचेतन परपदार्थ छोड़ने योग्य हैं, और यह एक सामान्य उपदेश है और उनका अनेक प्रकारसे त्याग कर देना यह परिग्रहका विशेष त्याग है। मिथ्यात्व राग-द्वेष आदि अन्तरंग और धन-धान्य आदि बाह्य परिग्रह त्याग सामान्य त्याग है। और मिथ्यात्वका त्याग, अव्रतका त्याग, कषायका त्याग, कुकथाका त्याग, प्रमादका त्याग, अभक्ष्यका त्याग, अन्यायका त्याग आदि विशेष त्याग हैं, मगर ज्ञानी जीव यद्यपि पूर्वके बांधे हुए कर्मके उदयसे सुख-दुःख दोनोंको भोगते हैं, पर वे उसमें ममता और राग-द्वेष नहीं करते हैं, और ज्ञान ही में मस्त रहते हैं, इससे उन्हें निष्परिग्रह ही कहा है।

इसका कारण

संसारकी मनोवांछित भोगविलासकी सामग्री अस्थिर हैं, वे अनेक चेष्टाएं करने पर भी स्थिर नहीं रहतीं। इसी प्रकार विषयकी अभिलाषाओंके भाव भी अनित्य हैं, भोग और भोगकी इच्छायें इन दोनोंमें एकता नहीं है, और नाशवान् हैं, इससे ज्ञानियोंको भोगोंकी अभिलाषा ही उत्पन्न नहीं होती, ऐसे भ्रम पूर्ण

कार्योंको तो मूर्ख ही करते हैं। ज्ञानी लोग तो सदा सावधान रह-कर विषयोंसे बचते रहते हैं। पर पदार्थोंसे कभी अनुराग ही नहीं करते। इसी कारण ज्ञानी पुरुषोंको वांछासे रहित कहा है।

उदाहरण

जिस प्रकार फिटकरी-लोद और हरड़ेकी पुट दिये विना मजीठके रंगमें सफेद कपड़ा डुबो देनेसे तथा बहुत समयतक डूबा रखनेसे भी उस पर रंग नहीं चढ़ता, वह बिल्कुल लाल नहीं होता अन्तरंगमें सफेदी ही रहती है, इसी प्रकार राग, द्वेष, मोह रहित ज्ञानी मनुष्य परिग्रह समूहमें रात दिन रहता हुआ भी पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा करता है, नवीन बंध नहीं करता। और वह विषय सुखकी वांछा भी नहीं करता और न शरीरसे मोह ही रखता है। अर्थात् राग-द्वेप मोह रहित होनेके कारण समदृष्टि जीव परिग्रह आदिका संग्रह रखते हुए भी निष्परिग्रह रहते हैं। जैसे कोई बलवान् पुरुष जंगलमें जाकर मधुका छाता निकालता है, तब उसको बहुतसी मक्खियां लिपट जाती हैं, मगर मुंह पर छलनी और शरीर पर कंबल ओढ़े रहनेसे उसे उनके डंक नहीं लगते। इसी प्रकार समदृष्टि जीव उदयकी उपाधि रहते हुए भी मोक्ष मार्गको साधते हैं, उन्हें ज्ञानका स्वाभाविक (सन्नाह) बक्तर प्राप्त है। इसीसे आनन्द मग्न रहते हैं, उपाधि जनित आकुलता न व्यापकर समाधिका काम देती है। क्योंकि उदयकी उपाधि सम्यग्ज्ञानी जीवोंको निर्जरा हीके लिये है। अतः उनकी उपाधि भी समाधिमें परिणत हो जाती है।

ज्ञानी जीव अबंध हैं

ज्ञानी मनुष्य राग-द्वेष मोह आदि दोषोंको हटाकर ज्ञानमें मस्त रहता है। और शुभाशुभ क्रियायें वैराग्य सहित करता है, जिससे उसे कर्म बन्ध नहीं होता। क्योंकि ज्ञान दीपकके समान है, मोहका अन्धकार मल नष्ट करके कर्मरूप पतंगको तड़ातड़ जला देता है और सुबुद्धिका प्रकाश करता है, तथा मोक्ष मार्गको दर्शाता है। जिसमें अविचारका जराला धुआं भी नहीं है। जो दुष्ट निमित्तरूप हवाके झकोरोंसे बुझ नहीं सकता। जो एक क्षणमें कर्मरूप पतंगोंको जला देता है। जिसमें नवीन संस्कारकी बत्तीका भोग नहीं है। और न जिसमें पर निमित्तरूप घृत तेलकी आवश्यकता ही है, जो मोहरूप अन्धेरेको मिटाता है, जिसमें कषायरूप आग जरा-सा भी नहीं है। और न रागकी लाली ही चमक सकती है। जिसमें समता-समाधि और योग प्रकाशित रहते हैं। वह ज्ञानकी अखंड ज्योति स्वयं सिद्ध आत्मामें स्फुरित हो रही है—शरीरमें नहीं।

ज्ञानकी निर्मलता किस प्रकार है।

यह एक मानी हुई बात है कि जो पदार्थ जैसा होता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है। कोई पदार्थ किसी अन्यके स्वभाव को ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे कि—शंखका रंग सफेद है, और वह खाता मिट्टी है, परन्तु मिट्टीके समान नहीं हो जाता—सदैव उज्वल ही बना रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी जन परिग्रहके संयोगसे अनेक भोग भोगते हैं, पर वे अज्ञानी नहीं हो जाते। उनके ज्ञानकी

किरण दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती है और भ्रामक दशा मिट जाती है। तथा भव स्थिति घट जाती है।

ज्ञान और वैराग्यकी एक समय उत्पत्ति

ज्ञान और वैराग्य दो वस्तु हैं, मगर एक साथ पैदा होते हैं, और उनके द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षके मार्गको साधते हैं, जैसे कि—नेत्र अलग अलग रहते हैं. पर देखनेका काम एक साथ करते हैं। यानी जिस प्रकार आंखें अलग अलग रहने पर भी देखने की क्रिया एक साथ करती हैं, उसी तरह ज्ञान-वैराग्य एक ही साथ कर्मोंकी निर्जरा करते हैं। मगर विना ज्ञानका वैराग्य और विना वैराग्यका ज्ञान मोक्षमार्ग साधने में असमर्थ है।

ज्ञानीको अवंध और अज्ञानीको वंध

जिस प्रकार रेशमका कीड़ा अपने शरीर पर स्वयं ही जाल पूरता है उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव स्वयं कर्म वन्ध करता है, और जिस प्रकार गोरख धन्धा नामक कीड़ा जालसे निकलता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव कर्मवन्धनसे स्वयं युक्त होते हैं जिससे अनन्त कर्मोंकी निर्जराका होना ही मुक्ति है। इस निर्जरा तत्वके १२ भेद हैं। जिनमें ६ प्रकार वाह्य तप हैं।

६ वाह्य तप हैं

१—अनशन—आहारका त्याग।

२—ऊनोदर—क्षुधासे कम भोजन करना।

३—वृत्तिसंक्षेप—जीवनके निर्वाहकी वस्तुओंका संक्षेप करना।

४—रस परित्याग—दूध, दही, घी, गुड़, तेल आदि पदार्थोंका न खाना।

५—कायक्लेश—अनेक आसनों द्वारा अच्छा अभ्यास करके शरीरको कसना,और प्राणको नियममें लाना और कुछ समय तक स्थिर करना या शरीरको अनेक प्रकारसे वशमें रखना और वालों-का लुंचन करना आदि।

६—संलीनता—इन्द्रियोंको वशमें रखना, क्रोध, लोभ आदि न करना, मन, वाणी, कर्मसे किसी जीवको कष्ट न पहुंचाना, अंगोपांग संकोच कर सो रहना, स्त्री. पशु, नपुंसक आदिकी शून्यता युक्त स्थानमें निवास करना।

आभ्यन्तर तप

७-प्रायश्चित्त-मानलो कि मैंने किसी सज्जनके संबंधमें झूठी बात फैला दी है, जिसके सुननेसे उसके विषयमें लोकोंके अनेक असत्य मत बन्ध गये हैं, उसके सम्बन्धमें ऐसी निन्दा कर डाली है कि उसका जीवन संकटोंसे भरपूर हो रहा है. परन्तु यदि मैं अपनी भूलको देख सकूं तथा मैं यह भी समझ सकूं कि—मेरा यह कृत्य खूनी काण्डके समान तिरस्कार पात्र है, जिससे मुझे उसके लिये मन-ही-मन पश्चात्ताप होने लगा हो, और मेरा मानसिक सूक्ष्म-शरीर पश्चात्ताप की सूक्ष्म अग्निमें जलने लग कर शुद्ध होता है। इस शुद्धताका विश्वास उसी समय हो सकता है जब कि—मैं उस शुद्धिकरणकी क्रियाका सच्चे दिलसे मनन करता हुआ उस मनुष्यके विषयमें उसकी सच्ची वातको लोकोंके सामने प्रगट करने के लिये स्वयं बाहर आ

जाऊं, और उसकी सच्चे दिलसे क्षमा चाहूं, इतना ही नहीं वल्कि यथा समय प्रसंग आनेपर उस मनुष्यकी सेवा वजाने के लिये यथानुकूलरीतिसे उसका यशोगान और कीर्ति करना न चूक जाऊं। इसीका नाम 'प्रायश्चित्त' तप है।

प्रायश्चित्त अमुक मन्त्र और अमुक दण्ड भर देनेसे यदि हो सकता है तो खूनी और व्यभिचारी पुरुषोंको नरक जानेका डर न रहता? अपनेसे वृद्ध ज्ञानी या गुणीके पास पापका स्वरूप प्रकाशित कर देनेसे वह मनुष्य हमें जो ज्ञान देता है, वह पापका निवारण कर सकने में उपयोगी हो सकता है, अतः गंभीर, विद्वान, पवित्र और सच्चरित्री पुरुषके पास पापका प्रकाश करके प्रायश्चित्त लेनेकी आज्ञा धर्म-शास्त्रोंने दी है।

परन्तु यह भी ध्यान रहे कि—प्रायश्चित्त तप वाह्य तपका विभाग नहीं है,वल्कि वह तो अभ्यन्तर तपका है, और इसी लिये इसमें वाह्य क्रियाका समावेश न होकर अभ्यन्तर तप पश्चात्ताप रूप है, और वह अपनी भूल सुधारने के लिये यथासाध्य वनने वाला एक निश्चय है। इसमें ये दोनों तत्व अवश्य होने चाहिये, और वल पूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि—जो मनुष्य अपने से होने वाले अपराधोंके लिये इस भांति हार्दिक खेद प्रकट करने के लिये तथा वन जाने वाले उस अपराधका असर यथाशक्य अच्छे प्रमाणमें निवारण करने के लिये उद्यमका अवलम्बी होकर तैयार न हो सकता हो तो वह मनुष्य ध्यान या कायोत्सर्ग जैसे उच्चकोटिके तपके लिये अभी योग्य नहीं हुआ है।

८-विनय—वहम और संकुचित बुद्धिको जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेवाली शक्तिसे भरपूर सत्यधर्म है, और वह भी धर्मकी फिलोसिफीसे खाली नहीं है। वह धर्मकी आज्ञानुसार वर्ताव करनेवाला, पवित्र हृदयवाला, धर्मगुरु है, वह धर्मका प्रचार करनेवाला महापुरुष है, उस धर्मके प्रचार और रक्षणके लिये स्थापित की हुई संस्था. इत्यादिकी ओर मानकी दृष्टि रखना, और सामान्यतः गुणीजनोंके प्रति नम्रताका भाव प्रगट करना, बस यही 'विनय' तप है।

जहां गुण दोष समझनेकी शक्ति अर्थात 'विवेक बुद्धि' 'Discrimination' न हो वहां 'विनय तप' के अस्तित्वका होना असम्भव है। जहां गुण दोषके पहचाननेकी जितनी शक्ति है, वहां अपने आप गुणीके प्रति नम्रता तथा विनय बनानेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है, और इस प्रकारके विनयसे वह मनुष्यके हृदयको अपनेमें अन्यके सद्गुणोंका आकर्षण करनेमें योग्य और चतुर बनता है।

९—वैयावृत्य—जिस धर्म, धर्म-गुरु, धर्म-प्रचारक, धर्म-रक्षक, धार्मिक संस्थाओंका विनय रखना कहा गया है, उन सबका विनय बनाकर ही नहीं रह जाना है बल्कि—अगाड़ी बढ़कर यथाशक्ति उनकी सेवा करना अर्थात् उन्हें उपयोगी बनाना 'वैयावृत्य' तप कहा जाता है।

१०-स्वाध्याय—पश्चात्ताप,विनय और वैयावृत्य सेवा तत्परता इन तीनों गुणोंको प्राप्त पुरुष अपने मस्तिष्क एवं हृदयको इतना शुद्ध और निर्मल बना लेता है कि जिससे उसे ज्ञान प्राप्त करनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती। अतः १० वें नम्बरमें 'स्वाध्यायतप' अथवा ज्ञानाभ्यासको

रक्खा गया है, ज्ञान प्राप्त करनेका अभ्यास भी आवश्यक तप है। जिसे कभी न भूलना चाहिये। जिसपर चढ़नेके लिये पांच ही पैड़ी वड़ी मार्केकी वताई गई हैं।

'वाचना' शिक्षक अथवा गुरुके पाससे अमुक पाठ लेना, धारण करना, अथवा गुरुका योग न हो तो अपनी मतिके अनुसार पुस्तकका अमुक भाग रोज पढ़ जाना।

'पृच्छना' उतने भागमें दीख पड़नेवाली कठिनाई या संशय गुरुके पास या किसी अन्य अनुभवीसे पूछ लेना।

'परावर्तना' सीखा हुआ भाग फिरसे याद करना।

'अनुप्रेक्षा' अभ्यस्त विपयपर फिरसे मनन करना।

'धर्म-कथा' अपना प्राप्त ज्ञान औरोंको कहकर सुनाना.समझाना, व्याख्यान, वार्तालाप, ग्रन्थ-रचना, ग्रन्थ-प्रकाशन, शान्त-चर्चा इत्यादिसे औरोंको ज्ञान दिलानेका उद्यम करनेसे अपना ज्ञान वढ़ता है, तथा औरोंमें ज्ञानका प्रचार होता है। जिससे अपने ज्ञानान्तराय सम्बन्धी कर्म कम रहकर विशेप प्रमाणमें ज्ञान पानेकी योग्यता आ जाती है।

ज्ञानके विपयमें पुनः पुनः वलपूर्वक कहनेकी इसलिए आवश्यकता है कि—ज्ञान अमुक-अमुक पुस्तकोंमेंसे या अमुक पुरुपोंके पाससे मिले वही ग्रहण करना, इस ढंगसे सीखनेवालोंकी संगति कभी न करना. एवं अमुक लोकप्रिय हो रहनेवाले ग्रन्थ 'सिद्धान्त' से विरुद्ध विचार रख जानेवाले सिद्धान्तकी दलील सुननेमें कभी भी आनाकानी न करना, वुद्धिमानो ! मनको वड़ा वनाओ ! आखें

खुली रक्खो! अखिल विश्वमें तुम्हारे माने हुए कुएँके जलकी अपेक्षा अधिक उत्तम जलका संभव किसी स्थानपर नहीं है ऐसा मोहका भार और मादकताको छोड़कर एक बार बाहर घूम-फिरकर अलग-अलग फिलॉसफीके सहवासमें आओ या उनके सिद्धान्तोंको पढ़ जाओ। भाषाका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो! न्याय-शास्त्रका अध्ययन करो, और फिर इन दोनोंकी मददसे विश्वका जितना प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान मिल सके उतना प्राप्त करो।

११—ध्यान—उपरोक्त सब तपोंकी अपेक्षा 'ध्यान तप' अधिक समर्थ है। सांसारिक विजयके लिये एवं आत्मिक मुक्तिके अर्थ दोनों कार्योंमें यह एक तीक्ष्ण शस्त्र है। चित्तकी एकाग्रता अथवा ध्यान द्वारा सब शक्तिएं एक विषयपर एक ही साथ उपयोगमें आती हैं, और इससे ईप्सित-अर्थ प्राप्त करनेमें अत्यधिक सरलता हो जाना स्वाभाविक है। असाधारण विजयको वरनेवाला नेपोलियन लश्करकी तोपों-की मार-मारके बीचमें राज्यकी कन्याशालाओंके लिये नियम घड़ लिया करता था, इतनेपर भी हद दर्जेकी एकाग्रता रख सकता था, और लगातार कितने ही दिन राततक अधिक काम होनेपर सो रहनेका समय लड़ाई-तूफानमेंसे १०-१५ या २० मिनिट तक इच्छा-नुसार नींद ले सकता था! ऐसा मनुष्य विजयको मुट्ठीमें बांधे रहे तो क्या आश्चर्य है?

खोई हुई चित्त शान्तिको फिरसे पानेके लिये व्यापार या पर-मार्थके काममें आनेवाली उलझनके व्यवहारका निराकरण या तोड़के लिये, वस्तुके स्वरूपकी पहचानके लिये, और मोक्ष मार्गकी प्राप्तिके

लिये भी 'ध्यान' की उपयोगिता अनिवार्य है।* शास्त्रकार भी ठीक ही कहते हैं कि—

निर्जराकरणे वाह्याच्छ्रेष्ठमाभ्यन्तरं तपः।
तत्राप्येकातपत्रत्वं, ध्यानस्य मुनयो जगुः॥१॥

---

* ध्यानके लिये किसी भी पदार्थ या पुद्गलकी खास आवश्यकता है, इस प्रकार कई महानुभावोंकी ओरसे यह भी प्रतिपादन किया जाता है। वास्तवमें प्रत्येक मनुष्यको अपनी-अपनी मान्यताओंपर प्रकाश डालनेका अधिकार है, अतः इन विचारोंको प्रकाशित करनेमें कोई हानि नहीं है। परन्तु इसी ही तरह एक फिलॉसफर विद्वान् "जहान एवरकोम्वी M.D.—oxon भी कहता है कि—एक मनुष्य होकर उसे भी पुनः पद्धतिसे—न्यायपुरस्सर सायन्टीफिक दृष्टिसे दलील करनेवाला मनुष्य होकर अपने किसी भावके विषयमें विचार प्रगट करनेका (अधिक न सही) समान हक तो अवश्य है। वह अपनी Science of mind नामक प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखता है कि—आत्माके मुख्य लक्षण और Phenamena इन्द्रिय कृत कृति ये दोनों मुकाबला करनेके योग्य नहीं हैं, इन्हें अपनी इन्द्रियोंमेंसे सबसे अधिक प्रबल इन्द्रियको भी अपना काम करनेके लिये 'वाह्य' पदार्थकी सहायता लेना आवश्यक है, देखनेके लिये प्रकाश और प्रकाशका प्रतिबिम्ब जिस वस्तुपर पड़ता है, वह वस्तु इन दोनोंकी मददके विना हम देख नहीं सकते, और यदि हम यह धारणा रख सकें कि—प्रकाशका नाश होता है तब आंखकी पूर्ण स्थिति कायम

रहनेपर भी दृष्टिका नाश हो जायगा, परन्तु "**आत्माको बाह्य वस्तुओंके ऊपर किसी प्रकारका आधार नहीं रखना पड़ता**" आत्मा विविध क्रियाएं दृश्यमान जगतके ज़रासे आधार बिना भी कार्य करता है। जिस पदार्थकी उपस्थिति बहुत समयसे बंद हो गई हो ऐसे पदार्थ भी आत्माके समक्ष खड़े हो जाते हैं, एक बार पदार्थको भूलकर भी पहलेकी अपेक्षा उसे पुनः अधिक स्पष्ट रीतिसे याद कर सकता है, और देखे, किए, और प्राणियोंको जो कि—पहले कभी भी अपने जीवनमें न आये हों उन्हें भी वह अपने समक्ष खड़ा कर सकता है। सभी दर्शनीय घटनाएँ और किये गये कृत्य तथा प्राणियोंकी अनुपस्थितिमें भी वे दृश्य और कृत्य प्राणियोंको वे बाहरके किसी भी प्रकारका कारण न मिलनेपर भी नजर आ सकते हैं।

आत्मा सदैव स्मरण करनेका, जोड़नेका तथा सत, असतके निर्णय करनेका कार्य करता रहता है और उसको इनके स्पष्ट करनेकी इच्छा भी होती है, **और वह कदाचित् सारे दृश्यमान पदार्थोंका नाश भी कर दिया जाय तब भी आत्मा वर्तमानकी भांति ही ये सब क्रियायें करता रहेगा।**

आत्मा सम्बन्धी विचार करनेवाला पुरुष उलझनमें पड़कर

बाह्य पदार्थोंमें पड़कर उसकी क्षमताकी शोधमें ललचा जाता है। परन्तु आत्मा सम्बन्धी तत्वज्ञान औरों-की अपेक्षा अलग तरहका है। कारण जिस सत्यपर वह शास्त्रज्ञान खड़ा है, वह सत्य चैतन्य Conciousness मात्र है। जिस शक्तिके द्वारा वह भूतकालका स्मरण कर सकता है, और भविष्यके लिये अनेकानेक साधन सजाता है। जिस शक्तिके द्वारा वह एक दुनियासे दूसरी दुनियामें और एक पद्धतिसे दूसरी पद्धतिमें आनेके बाद (निष्कंटक) घूमता है, और शाश्वत कारण Eternal cause का मनन करता है, तब वह शक्ति उस आत्मिक शक्तिको क्या वह जड़ पदार्थके साथ बराबरी कर सकता था? वह तत्व कि जो प्रेम करता है और डरता है, आनन्दमय बनता है और खेदित होता है, आशामय और निराश बनता है, उस तत्वको जड़-दृश्यमान पदार्थके साथ किस प्रकार समतोल किया जाय? इन स्थितियों (प्रेम आशा आदि) का बाहरके असरके साथ या शरीरके स्थितिके साथ भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। शरीरकी स्थिति शान्त होनेपर भी विचार, खेद या चिन्ता अन्दर घूमते रहते हैं, और अत्यन्त ही भयंकर कष्टसे क्लेशित शरीरका आत्मा शान्ति और आशामें लीन भी होता हैं। "प्राणीगुणशास्त्र" Physiology से वह जानता है कि—उसके शरीरके प्रत्येक भागका प्रतिक्षण रूपान्तर होता रहता है, और अमुक समयके अन्दर उस शरीरका प्रत्येक प्रमाणु बदल कर नया होनेवाला है, परन्तु इतना परिवर्तन होनेपर भी वह जानता है कि—

"निर्जरा करनेमें (कर्मको झाड़नेके कार्यके अन्तर्गत) बाह्य तपकी अपेक्षा अभ्यन्तर तप अच्छा है, जिसमें भी 'ध्यान तप' का तो आत्मामें एक छत्र राज्य है, यह तप चक्रवर्त्ती है, ऐसा मुनियोंने कहा है। क्योंकि—

अन्तर्मुहूर्तमात्रं, यदेकाग्रचित्ततान्वितम्।
तद्ध्यानं चिरकालीनां कर्मणां क्षयकारणम्॥

अन्तर्मुहूर्त मात्रके लिये भी चित्त एकाग्र हो जाता है तब वह भी ध्यान कहलाता है। अधिक कालके बांधे हुए कर्मोंको क्षय करनेमें कारण भूत है, यथा —

जह चिरसंचिअमिंधणमणलो य पवण सहिओ दुअं डहइ।
तह कम्मिंधणममिअं खणेण झाणाणलो डहई॥

जैसे चिरकालके एकत्रित किये गये काष्ठोंको पवनके साथ रहने वाला अग्नि तत्काल ही जलाकर भस्मका ढेर कर डालता है।

इस आत्माको जिसे वह 'मैं' कहता है वह तो ज्योंका त्यों ही रहने-वाला है, इस तरह वह सत्त्व जिसे कि हम आत्मा कहते हैं, जब वह इन्द्रियोंके परिणामोंसे इतना सारा अलग है तब जड़की किसी रचनासे वह आत्मापर कुछ भी असर डाल सकेगा ? ऐसा माननेके लिये आपके पास क्या प्रमाण और कारण है ? (यह विद्वान 'आत्मा' शब्दका 'मनस' Mind अर्थमें प्रयोग करता है। मनको उच्च भावनामें जोड़नेके लिये दृश्य या बाह्य अथवा जड़ पदार्थकी मुख्यतासे कोई आवश्यकता नहीं है। मानस शास्त्रियोंने यह सिद्ध किया है)

इसी रीतिसे अनन्तकर्म रूपी ईंधनको भी एक ही क्षणमें ध्यान रूपी अग्नि जला देता है।

सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति, यावन्तः केपि मानवाः।
ध्यानतपोबलेनैव, ते सर्वेऽपि शुभाशयाः ॥१॥

'जितने भी मनुष्य सिद्ध हुए हैं, होते हैं, और अगाड़ी होंगे, वे सब शुभ आशय वाले ध्यान तपके द्वारा ही सिद्धत्वको पाते हैं।

ध्यानके भेद—मार्ग आदिके सम्बन्धमें अधिकसे अधिक जानना और सीखना चाहिये। परन्तु उन सबका इस लेखमें समावेश नहीं हो सकता। ध्यानके सिद्धान्त पर पाश्चिमात्योंने रोग मिटानेके लिये, कुटेवोंसे सुधारनेके लिये, एक स्थल पर बैठ कर दूरके सन्देशोंको समझाने इत्यादि के अद्भुत और उपयोगी कार्य सिद्ध कर दिखाये हैं, तथा आर्य विचारकोंने इसी ध्यानके बलसे मोक्षका मार्ग हस्त सिद्ध किया है, और यह अद्भुत शास्त्र बुद्धिशाली पुरुषोंको विशेपतया धर्मगुरुओंको लक्ष पूर्वक क्रमवार अवश्य सीखना चाहिये।

१२—कायोत्सर्ग—ध्यानसे अगाड़ी बढ़ने वाली एक स्थिति 'कायोत्सर्ग' की है, इसमें काय अर्थात् स्थूल शरीरको एक दम मृतकसा बनाकर (कुछ समयके लिये निर्ममत्व दृष्टि रखकर) सूक्ष्म देहके साथ आत्माको उच्च प्रदेशोंमें ले जाया जाता है। इस समय चाहे शरीर जल जाय, कट जाय, तब भी उसका भान नहीं रहता। कारण जिस मनको भान होता है, वह मन अथवा मानसिक शरीर आत्माके साथ जब प्रदेशोंमें चला गया है। जिसे 'समाधि' भी

कहते हैं। मगर यह विषय इतना गंभीर है कि—इसमें मात्र वचन और तर्क काम नहीं कर सकते। यह अनुभवका विषय है। अतः इतनी योग्यताके बिना चुप रहना ही अच्छा है।

इसके विशेष भेद

अनशन तपके २ भेद—१—इत्तरिये, २—आवकहिए।

इत्तरिये तपके ६ प्रकार—१—श्रेणितप, २—प्रतर तप, ३—घन तप, ४—वर्ग तप, ५—वर्गावर्ग तप, ६—आकीर्ण तप।

श्रेणितपके १४ भेद—१—चउत्थभत्ते १ उपवास, २—छठ्ठभत्ते २ उपवास, ३—अठ्ठमभत्ते ३ उपवास, ४—दसमभत्ते ४ उपवास, ५—बारसभत्ते ५ उपवास, ६—चउदसभत्ते ६ उपवास, ७—सोलसभत्ते ७ उपवास, ८—अद्धमासिए ८ उपवास, ९—मासिए ९ उपवास, १०—दोमासिए १० उपवास, ११—तिमासिए ११ उपवास, १२—चोमासिए १२ उपवास, १३—पंचमासिए १३ उपवास, १४—छमासिए १४ उपवास।

दो घड़ी दिन चढ़े तक निराहार रहना नौकारसी तप कहलाता है. इससे लगाकर १ वर्ष पर्यन्त तप करना 'श्रेणितप' है।

प्रतर तप—इसके १६ कोठे भरे जाते हैं।

घनतप—इसके ६४ कोठेका यंत्र बनता है।

वर्गतप—इसके ४०९६ कोठे भरे जाते हैं।

वर्गावर्गतप—१६७७७२१६ कोठे भरे जाते हैं।

अकीर्णतपके १० भेद—१—नवकारसी, २—पहरसी, ३—पुरि-

मडु, ४—एकासन, ५—आंबिल, ६—निव्विगइ, ७—एकलठाण, ८—उपवास. ९—अभिग्गहे, १०—चरमे इसे इत्तरियतप कहते हैं।

आवकहियातपके ३ भेद—१—पाओवगमणेअ, २—भत्तपच्चक्खाणेअ. ३—इंगियमरणेअ।

पाओवगमणके ५ भेद—१—गाममें करे, २—गामसे बाहर करे, ३—कारण पड़नेपर करे, ४—विना कारण करे, ५—नियम—पराक्रमरहित करे।

इतने ही भत्तपच्चखाणके भेद हैं

इंगिअमरणके ७ भेद—१—नगरमें करे, २—नगरसे बाहर करे, ३—कारणपर करे, ४—विना कारण करे, ५—नियम-पराक्रम रहित करे, ६—नियमके-पराक्रमसे सहित करे, ७—भूमिकी मर्यादा करे। ये अनशन-तपके भेद हुए।

ऊनोदरतपके २ भेद—१—द्रव्य ऊनोदर, २—भाव ऊनोदर।

द्रव्य ऊनोदरतपके २ भेद—१—उपकरण ऊनोदर, २—भात-पानी ऊनोदर।

उपकरण ऊनोदरके ३ भेद—१—एक वस्त्र रक्खे, २—एक पात्र रक्खे, ३—पुराना उपकरण रक्खे-या उसे छोड़नेकी भावना करे।

भक्त-पान द्रव्य ऊनोदरके अनेक भेद हैं। (८) ग्रास जितना आहार ले, (१२) ग्रास जितना आहार ले, (१६) ग्रास जितना आहार ले, (२०) ग्रास जितना आहार ले, (२४) ग्रास जितना आहार ले, (२८) ग्रास प्रमाण आहार ले, (३२) ग्रास प्रमाण आहार ग्रहण

करें। ३२ में से १ भी ग्रास लेनेपर 'ऊनोदरतप' हो जाता है तथा श्रमण-निग्रन्थ इच्छानुसार रस और भोजन नहीं लेते।

भाव ऊनोदरतपके ८ भेद—१—क्रोध न करे, २—मान नहीं करता है, ३—माया नहीं करता है, ४—लोभ नहीं करता है, ५—कलह नहीं करता, ६—थोड़ा बोलता है, ७—उपाधि घटाता है, ८—हलके और तुच्छ शब्द नहीं कहता हो।

इति ऊनोदरतप

भिक्षाचरीके ४ भेद—१—द्रव्य भिक्षाचरी, २—क्षेत्र भिक्षाचरी, ३—काल-भिक्षाचरी, ४—भाव भिक्षाचरी।

द्रव्यभिक्षाचरीके २० भेद

१—दव्वाभिग्गहचरए (द्रव्यसे)
२—खेत्ताभिग्गहचरए (क्षेत्रसे)
३—कालाभिग्गहचरए (कालसे)
४—भावाभिग्गहचरए (भावसे)
५—उक्खित्तचरए (वर्तनसे निकाल कर दे तब ले)
६—निक्खित्तचरए (डालते समय दे)
७—णिक्खित्तउक्खित्तचरए (दोनों तरहसे दे)
८—उक्खितणिक्खितचरिए (वर्तनमें डालकर फिर देना)
९—वट्टिज्जमाणचरए (अन्यको देते समय बीचमें दे)
१०—साहरिज्जमाणचरए (अन्यसे लेते समय दे)
११—उवणीअचरए (अन्यको देने जाता हुआ दे)

१२—अवणीअचरए (अन्यको देनेके लिये लाता हो तब दे)

१३—उवणीअ अवणीअचरए (दोनों तरहसे दे)

१४—अवणीअ उवणीअचरए (अन्यका लेकर पीछा देता हो)

१५—संसठ्ठचरए (भरे हाथसे दे तब लेना)

१६—असंसठ्ठचरए (स्वच्छ हाथसे देता हो तो ले)

१७—तज्ञातसंसठ्ठचरए (जिससे हाथ भरे हो वही लेना)

१८—अण्णायचरए (अज्ञात कुलसे लेना)

१९—मोणचरए (चुपचाप लेना)

२०—दिठ्ठलाभिए (देखी वस्तु लेना)

२१—अदिठ्ठलाभिए (विना देखी वस्तु लेना)

२२—पुठ्ठलाभिए (पूछ कर दे तब लेना)

२३—अपुट्ठलाभिए (विना पूछे देनेपर लेना)

२४—भिक्खलाभिए (निन्दकसे लेना)

२५—अभिक्खलाभिए (स्तावकसे लेना)

२६—अण्णगिलायए (कष्टप्रद आहार लेना)

२७—ओवणिहिए (खातेके पाससे लेना)

२८—परिमितपिण्डवाइए (सरस आहार लेना)

२९—सुद्धेसणिए (एषणिय शुद्ध आहार लेना)

३०—संखायत्तिए (वस्तुकी गणना सोच कर लेना)

क्षेत्रभिक्षाचरीके ६ भेद

पेढाअ-अद्धपेढाअ गोमुत्ति पयंगवीहिआ चेव।
संवुक्काय वट्टाय गंतु पच्चागमा छट्ठा ।।१।।

१—चारों कोनोंके चार घरोंसे लेना, २—दो कोनेके दो घरोंसे लेना, ३—गोमूत्रके आकारसे बांके टेढ़े घरोंकी लाइनसे लेना, ४—पतंगकी उड़ती चालके समान लेना, ५—पहले नीचे घरोंसे लेकर फिर ऊपरके घरोंसे लेना या पहले ऊपरके घरोंसे लेकर फिर नीचेके घरोंसे लेना, ६—जाते हुए ले और आते समय न ले तथा जाकर पीछे आते समय ले।

कालभिक्षाचरीके ४ भेद

१—पहले पहरकी गोचरी ३ पहरका त्याग।

२—दूसरे पहरमें लाकर उसी पहरमें खाए पिये।

३—तीसरे पहरमें लाए, उसीमें खाये।

४—चौथे पहरमें लाए, उसीमें खाये।

भावभिक्षाचरीके १५ भेद

(१) तीनवयकी स्त्री यथा—बालक स्त्री, (२) युवती स्त्री, (३) वृद्धा स्त्री, (४) बालक पुरुष, (५) युवक पुरुष, (६) वृद्ध पुरुष, (७) अमुक वर्ण, (८) अमुक संस्थान, (६) अमुक वस्त्र, (१०) बैठा हो, (११) खड़ा हो, (१२) मस्तक खुला हो, (१३) मस्तक ढँका हो, (१४) आभूषण युक्त हो, (१५) आभूषण रहित हो।

॥ इति भिक्षाचरी तप ॥

(४) रस परित्याग तपके १२ भेद

१—णिव्विगिए (विकृति—घी आदिका त्याग)

२—पणीअरसपरिच्चाए (धारविगय त्याग)

३—आयंविलए (आचाम्लादि तप)

४—आयाम सित्थ भोई (ओसामनके दाने खावे)

५—अरस आहारे (मसालेदार आहार न ले)

६—विरस आहारे (निस्स्वादु आहार)

७—अंताहारे (उबली हुई वस्तु)

८—पंताहारे (ठंडा या बासी आहार)

९—लुहाहारे (जो चिकना न हो)

१०—तुच्छाहारे (खुरचन आदि जली वस्तु)

११—अंतजीवी (फेंकने योग्य वस्तुसे जीना)

१२—पंतजीवी (लुह-तुच्छ जीवी)

॥ इति रस परित्याग ॥

(५) कायक्लेश तपके १६ भेद

१—ठाणाट्ठित्तिए (कायोत्सर्ग पूर्वक खड़े रहना)

२—ठाणाए (विना मर्यादा योंही खड़े रहना)

३—उक्कुडु आसणे (उत्कट आसन)

४—पडिमट्ठाई (प्रतिज्ञा धारण करना)

५—नेसज्जिए (कायोत्सर्गमें बैठे रहना)

६—दंडायए (दंडकी तरह आसन लगाना)

७—लउडंसाई (लकड़की तरह स्थिर आसन)

८—आयावए (धूपमें आतापना लेना)

९—अवाउए (सर्दीमें वस्त्र न पहनना)

१०—अकुंडिअए (कुंठित न होना)

११—अणिठ्ठूए (अनिष्टकी तर्कना न करना)

१२—सव्वगायेपरिक्कम्म विभूस विप्पमुक्के (शरीर विभूषा मुक्त)

१३—सीयवेदणा (सर्दी सहना)

१४—उसिणवेयणा (गर्मी सहना)

१५—गोदुह आसणे (गोदुह आसन लगाना)

१६—लोयाइपरिसहे (लुंचनादि कष्ट सहना)

॥ इति कायाक्लेश तप ॥

(६) प्रतिसंलीनता तपके ४ भेद

१—इंदियपडिसंलीणया (इन्द्रिय निग्रह)

२—कषाय पडिसंलीणया (कषाय निग्रह)

३—जोगपडिसंलीणया (योग निग्रह)

४—विवित्तसयणासणपडिसेवणया (एकान्त स्थान सेवन)

इन्द्रियप्रतिसंलीनता तपके ५ भेद

(१) श्रुतेन्द्रिय, (२) चक्षुरिन्द्रिय, (३) घ्राणेन्द्रिय, (४) रसेन्द्रिय, (५) स्पर्शेन्द्रिय।

इन पांच इन्द्रियके २३ विषयोंकी उदीरणा न करे। उदयमें आनेपर सम भावसे सहकर इन्हें वशमें करे।

'कषायपडिसंलीणयाए' के ४ भेद

(१) क्रोध न करे, (२) मान न करे, (३) माया न करे, (४) लोभ न करे।

इन चारों कषायोंकी उदीरणा न करे, उदय होनेपर कषायोंको निष्फल करे। इसीका नाम 'कषायप्रतिसंलीनता' है।

'जोग पडिसंलीणया' के ३ भेद

(१) मन, (२) वचन, (३) काय।

इन तीनों अकुशल योगोंको रोकें, कुशलोंकी उदीरणा करे, अर्थात् अशुभ योगोंको रोके। शुभ योगोंका प्रवर्तन करे। इसे 'जोगपडिसंलीणयाए' कहते हैं।

विवित्तसयणासणपडिसेवणा

उद्यान, बाग, जंगल, उपाश्रय, शून्य घर आदिमें स्त्री १ पशु २ नपुंसक ३ न हों वहां निवास करे।

॥ इति बाह्य तप विवरण ॥

६ अभ्यन्तर तप

प्रायश्चित्तके ५० भेद

१० प्रकारसे दोष लगता है—(१) कामवासनासे, (२) प्रमाद सेवनसे, (३) उपयोगकी शून्यतासे, (४) अकस्मात् प्रसंगसे, (५) आपत्ति कालसे, (६) आतुरतासे, (७) रागद्वेषसे, (८) भयसे, (९) शंकासे, (१०) शिष्योंकी परीक्षा करनेसे।

आलोचना करते समय १० प्रकारसे दोष लगाता है

१—कम्पित होकर आलोचना करे तो।

२—प्रमाण बांधकर आलोचना करे तो ।

३—देखे हुएकी आलोचना करे तो ।

४—सूक्ष्मकी आलोचना करे तो ।

५—बादरकी आलोचना करे तो ।

६—गुनगुनाहटसे आलोचना करे तो ।

७—ऊंचे स्वरसे सुना कर करे तो ।

८—एक दोषकी बहुतोंपर आलोचना करे तो ।

९—प्रायश्चित्तके न जाननेवालेके पास आलोचना करे तो ।

१०—प्रायश्चितवानके पास आलोचना करे तो ।

आलोचकके १० गुण

(१) जातिमान, (२) कुलवान, (३) विनयवान, (४) ज्ञानवान, (५) चरित्रवान, (६) क्षमावान, (७) दमित-इन्द्रिय, (८) माया रहित (९) दर्शनवान, (१०) आलोचना लेकर न पछतानेवाला ।

आलोचना करानेवालेके १० गुण

१—आचारवान् ।

२—आधार देनेवाला ।

३—पांचों व्यवहारोंका ज्ञाता ।

४—प्रायश्चितकी विधिका ज्ञाता ।

५—लज्जा हटानेमें सामर्थ्यशील ।

६—शुद्धकरनेमें सामर्थ्यशील ।

७—आलोचनाके विषयका दोष किसीके सामने प्रगट न करता हो ।

८—खंड खंड करके प्रायश्चित दे।

९—संसार दुःखका चित्र वतानेवाला।

१०—प्रिय धर्मी।

१० प्रकारका प्रायश्चित्त

१—आलोयणारिहे [आलोचना करना]

२—पडिकमणारिहे [प्रतिक्रमण करना]

३—तदुभयारिहे [दोनों करना]

४—विवेगारिहे [विवेक]

५—विउसग्गारिहे [व्युत्सर्ग]

६—तवारिहे [तप]

७—छेदारिहे [संयमको कम कर देना]

८—मूलारिहे [पुर्नदीक्षा]

९—अणवठप्पारिहे [कठोर तप कराकर दीक्षा देना]

१०—पारंचिआरिहे [गुप्त पापका कठोर प्रायश्चित्त]

विनयतपके ७ भेद

(१) ज्ञान विनय, (२) दर्शन विनय, (३) चरित्र-विनय, (४) मन विनय, (५) वचन विनय, (६) काया विनय, (७) लोकोपचार विनय।

ज्ञानविनयके पांच भेद

(१) मतिज्ञानवालेका विनय, (२) श्रुतिज्ञानवालेका विनय, (३) अवधिज्ञानवालेका विनय, (४) मनपर्यायज्ञानवालेका विनय; (५) केवलज्ञानवालेका विनय।

दर्शनविनयके २ भेद

(१) सुश्रुपणविनय, (२) अनासातनाविनय।

सुश्रूपणविनयके १० भेद

(१) गुरुजनके आनेपर खड़ा होना, (२) आसनके लिये पूछना, (३) आसन प्रदान करना. (४ सत्कार देना, (५) सन्मान देना, (६) (६) उचित कृतिकर्म करना, (७) हाथ जोड़ कर मानका त्याग करना, (८) जाते समय पीछे चलना, (९) बैठने पर इनकी उपासना करना, (१०) कुछ दूर पहुंचा कर आना।

अनासातना विनयके ४५ भेद

(१) अर्हन् प्रभुका विनय, (२) अर्हन् कथित धर्मका विनय, (३) आचार्यका विनय, (४) उपाध्यायका विनय, (५) स्थविरका विनय, (६) कुलका विनय; (७) गणका विनय, (८) संघका विनय (९) चरित्रशीलका विनय, (१०) सांभोगिकका विनय, (११) मतिज्ञानीका विनय (१२) श्रुतज्ञानीका विनय, (१३) अवधिज्ञानीका विनय, (१४) मनः पर्याय ज्ञानीका विनय, (१५) केवल ज्ञानीका विनय।

(१५) का विनय करे, (१५) की भक्ति करे, (१५) असातना न करे।

चरित्र विनयके ५ भेद

(१) सामायिक चरित्रवालेका विनय करे।

(२) छेदोस्थापनीय चरित्रवालेका विनय करे।

(३) परिहार विशुद्धि चरित्रवालेका विनय करे।

(४) सूक्ष्म सम्पराय चरित्रवालेका विनय करे।

(५) यथाख्यात चरित्रवालेका विनय करे।

मन विनयके २ भेद

(१) प्रशस्तमन विनय, (२) अप्रशस्तमन विनय।

अप्रशस्तमन विनयके १२ भेद

(१) पाप मन, (२) सक्रिय मन, (३) सकर्कश मन, (४) कटुक मन, निष्ठुर मन, (६) परुशमन, (७) अनहत मन, (८) छेद मन, (९) भेद मन, (१०) परितापन मन, (११) उदद्रवण मन, (१२) भूतोपघात मन।

प्रशस्तमनके १२ भेद

(१) निष्पाप मन, (२) अक्रियमन, (३) अकर्कशमन, (४) मिष्ट मन, (५) अनिष्ठुर मन, (६) अपरुशमन, (७) अहतमन, (८) अछेद मन, (९) अभेद मन, (१०) अपरिताप मन, (११) अनुदद्रवण मन, (१२) अभूतोपघात मन।

वचन विनयके २ भेद

(१) प्रशस्त वचन विनय, (२) अप्रशस्त वचन विनय।

अप्रशस्त वचन विनयके १२ भेद

(१) पाप वचन, (२) सक्रिय वचन, (३) सकर्कश वचन, (४) कटुक वचन, (५) निष्ठुर वचन, (६) परुश वचन, (७) अनहत वचन

(८) छेदक वचन, (९) भेदक वचन, (१०) परितापन वचन, (११) उद्द्रवग वचन, (१२) भूतोपघात वचन

प्रशस्त वचन विनयके १२ भेद

(१) निष्पाप वचन, (२) अक्रिय वचन, (३) अकर्कश वचन, (४) मिष्ट वचन, (५) अनिष्ठुर वचन, (६) अपरुश वचन, (७) अहत वचन, (८) अछेद वचन, (९) अभेद वचन, (१०) अपरिताप वचन, (११) अनुद्द्रवण वचन, (१२) अभूतोपघात वचन।

काय विनयके २ भेद

(१) प्रशस्त काय विनय, (२) अप्रशस्तकाय विनय।

अप्रशस्तकाय विनयके ७ भेद

(१) अयत्नसे विचार कर चलना, (२) अयत्नसे खड़े रहना, (३) अयत्नसे बैठना, (४) अयत्नसे शयन करना, (५) अयत्न पूर्वक उल्लंघन करना, (६) अयत्न पूर्वक अधिक लांघना, (७) अयत्नसे सब इन्द्रियोंका उपयोग करना।

प्रशस्त कायाके ७ भेद

(१) यत्नसे चलना, (२) यत्नसे खड़े रहना, (३) यत्नसे बैठना, (४) यत्नसे शयन करना, (५) यत्नसे लांघना, (६) यत्नसे अधिक लांघना, (७) यत्नसे इन्द्रियोंके योगोंका प्रयोग करना।

लोकोपचार विनयके ७ भेद

(१) आचार्यके समीप बैठकर विनयाभ्यास करना।

(२) अन्यके कथनानुसार चलना ।

(३) कार्यके अर्थ विनय करना ।

(४) उपकारका बदला प्रत्युपकार देना ।

(५) दुःखी जीवोंपर उपकार करना ।

(६) देशकालज्ञ होना ।

(७) सब प्राणियोंके अनुकूल वर्ताव करना ।

वैयावृत्त्य तपके १० भेद

(१) आचार्य सेवा, (२) उपाध्याय सेवा, (३) शिष्यकी सेवा, (४) रोगी सेवा, (५) तपस्वी सेवा, (६) सहधर्मी सेवा, (७) कुल सेवा, (८) गण सेवा, (९) संघ सेवा, (१०) स्थविर सेवा ।

स्वाध्यायके पांच भेद

(१) वायणा, (२) पुच्छणा, (३) परियट्टणा, (४) अणुप्पेहा, (५) धम्म कथा ।

ध्यान तपके ४ भेद

(१) आर्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्म्मध्यान, (४) शुक्लध्यान ।

आर्तध्यानके चार भेद

१—माता, पिता, भ्राता, मित्र, स्वजन, पुत्र, धन, राज्य प्रमुख इष्ट वस्तुओंका वियोग होनेसे विलाप, चिन्ता, शोकका करना 'इष्ट-वियोग' नाम आर्तध्यान है ।

२—दुःखके जो अनिष्ट कारण हैं, जैसे शत्रु-दरिद्रत्व-कुपुत्रादिका

मिलना, स्त्रीका कुल्टापन इत्यादिकके मिलनेपर मनमें चिन्ता या दुःख उत्पन्न करना, 'अनिष्ट संयोग' नामक आर्तध्यान है।

३—शरीरमें रोग उत्पन्न होनेपर दुःखित होना, नाना प्रकारकी चिन्ता करना, 'चिन्ता' नामक आर्तध्यान है।

४—मन ही मन भविष्यकी चिन्ता करना, जैसेकी इस आनेवाले वर्षमें यह करूंगा वह करूंगा, तब हजारोंका लाभ होगा, तथा दानशील तपका फल शीघ्र पानेकी इच्छा करना, जैसे इस भवका तप संबंधी फल इन्द्र-चक्रवर्ती पदका परिणाम चाहना. इसका जो अग्रशोचना नामक परिणामका उत्पन्न करना है अथवा निदान करना है यह 'निदान' नामा आर्तध्यान कहलाता है। इस धर्म क्रियाका फलरूप निदान समदृष्टि नहीं करता।

आर्तध्यानके चार लक्षण

१—आक्रन्दन, २—शोक, ३—पीटना, ४—विलाप।

रौद्रध्यानके ४ भेद

१—हिंसानुबन्धी—जीव हिंसा करके खुश होना, तथा किसी अन्य को हिंसा करते देखकर प्रसन्न होना, युद्धकी अनुमोदना करना इत्यादि।

२—मृषानुबन्धी—असत्य बोलकर मनमें आनन्द मनाना, अपने कपटकी सराहना करना, अपने सत्यकी तथा माया जालकी प्रशंसा करना।

३—स्तेनानुबन्धी—चोरी करना, ठगना, जूआ खेलना, अपने

अनीति वलकी प्रशंसा करना। खुश होकर यह कहना कि मेरा काम पराया माल उड़ाना है।

४—परिग्रहरक्षणानुवन्धी—परिग्रह, धन अथवा कुटुम्बके लिये चाहे जैसे पाप करना, और परिग्रह वढ़ाना, अधिक धन पाकर अहं-कार करना, यह ध्यान नरक गतिका कारण भूत है। महा अशुभ कर्म वंधका वांधने वाला है। यह पांचवें गुण स्थान तक रह सकता है। किसी जीवके हिंसानुवन्धी रौद्रध्यानके परिणाम छठवें गुण-स्थानमें भी हो सकते हैं !

रौद्रध्यानके चार लक्षण

१—उसन्नदोष (हिंसादि कुकृत)।

२—वहुलदोष (पुनः पुनः धृष्टता)।

३—अज्ञानदोप (अज्ञानतासे हिंसाधर्मी)

४—आमरणान्तदोष—मरनेतक पापका पछतावा करे।

"जो व्यवहार क्रियारूप हो वही कारणरूप है"। धर्म तथा श्रुतज्ञान और चरित्र ये उपादान रूपसे साधन धर्म हैं, तथा रत्नत्रय भेदसे वह उपादान है, शुद्ध व्यवहार उत्सर्गानुयायी होना अपवादसे धर्म है। और अभेद रत्नत्रयी साधन शुद्धनिश्चय नयसे उत्सर्ग धर्म हैं। और जो वस्तुका सत्तागत शुद्ध पारिणामिक स्वगुण प्रवृत्ति और कर्त्तादिक तथा अनन्तानन्दरूप सिद्धावस्थामें रहा हुआ है वह एवंभूत उत्सर्ग उपादान शुद्धधर्म है। उस धर्मका भास होना तथा आत्माका उसमें रमण करना, एकाग्रतासे चिन्तन

और तन्मयताका उपयोग रखना, एकत्वका विचार करना धर्मध्यान कहलाता है। इसके चार पाए बताये गये हैं।

धर्मध्यानके ४ पाए

१—आज्ञा विचय धर्मध्यान—वीतरागकी आज्ञाका सत्यतासे श्रद्धान करना अर्थात् जिनेन्द्रने जो ६ द्रव्योंका स्वरूप, नय, निक्षेप-प्रमाण सहित सिद्धस्वरूप, निगोदस्वरूप आदि जिस प्रकार कहे हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना, वीतरागकी आज्ञा नित्य और अनित्य दोनों प्रकारसे, स्याद्वादपनसे, निश्चय और व्यवहारकी दृष्टि से श्रद्धान करना तथा उस आज्ञाके अनुसार यथार्थ उपयोगका भास हो गया है तब उसे हर्षपूर्वक उपयोगमें निर्धार, भास, रमण, अनुभवता, एकता, तन्मयतादिका जो रखना है वह 'आज्ञाविचय' धर्मध्यान है।

२—अपायविचय—जीवमें रागकी अशुद्धि और कर्मके योगसे सांसारिक अवस्थामें अनेक अपाय [दूषण] हैं। वे राग, द्वेष, कषाय, आस्रव आदि हैं परन्तु मेरे नहीं हैं। मैं इनसे अलग हूं मैं तो अनन्तज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यमयी, शुद्ध, बुद्ध, अज, अमर, अविनाशी हूं, अनादि, अनन्त, अक्षर, अनक्षर, अचल, अकाल, अमल, अप्राणी, अनाश्रव, असंगी इत्यादि एकाग्रतारूपध्यान ही अपायविचय धर्मध्यान है।

३—विपाक विचय धर्मध्यान—यद्यपि जीव ऐसा है तथापि कर्मके वशमें चिन्तित रहना, कर्मके वशमें रहनेसे एक प्रकारका दुःख ही है, और वह विवेकी कर्मका विपाक ही सोचकर धीरतासे अपनेको वशमें रखता है वह यही सोचता है कि जीवका ज्ञान गुण ज्ञानावरणीय,

कर्मने दाव लिया है। इस प्रकार क्रमशः जीवके आठों गुण दवे पड़े है, और इस संसारमें भ्रमण करते हुए इसे जो सुख-दुःख है, वह सव अपने किये कर्मसे है। इसी कारण सुखके उदयमें हर्प और दुःखके उत्पन्न होनेपर उदास न होना चाहिये। कर्मका स्वरूप, उनकी प्रकृति, स्थिति रस और प्रदेशका वंध, उदय, उदीरणा तथा सत्ताका चिन्तवन करके एकाग्र प्रणाम रखना विपाकविचय धर्मध्यान है।

४—संस्थान-विचय धर्मध्यान—मैंने अनन्त कालतक संसारमें-लोकमें सव स्थानोंपर जन्म मरण किया है, इसमें पंचास्तिकायका अवस्थान तथा परिणमन है, द्रव्यमें गुण और पर्यायका अवस्थान है जिसका एकाग्रतासे तन्मय चिंतवन परिणाम संस्थान—विचय धर्मध्यान है। ये धर्मध्यानके चार पाए हैं, धर्मध्यान चौथे गुण-स्थानसे लगाकर सातवें गुणस्थान तक रहता है।

धर्मध्यानके ४ लक्षण

(१) आज्ञारुचि, (२) निसर्गरुचि, (३) उपदेशरुचि, (४) सूत्र रुचि।

धर्मध्यानके ४ आलंबन

(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) धर्मकथा।

धर्मध्यानकी ४ अनुप्रेक्षाएं

(१) अनित्य—अनुप्रेक्षा, (२) अशरण—अनुपेक्षा, (३) एकत्व-अनुप्रेक्षा, (४) संसार—अनुप्रेक्षा।

शुक्लध्यान क्या है ?

यह ध्यान शुक्ल निर्मल और शुद्ध है, परका आलंबन न लेकर आत्माके स्वरूपको तन्मयत्वसे ध्यान करना शुक्लध्यान है।

शुक्लध्यानके ४ पाद

१—पृथक्त्ववितर्कसप्रविचार—जब जीव अजीवसे अलग होता है, स्वभाव और विभावको भिन्न दो भागोंमें अलग करता है, स्वरूपमें भी द्रव्य और पर्यायका अलग-अलग ध्यान करता है, पर्यायका संक्रमण गुणमें करता है फिर गुणका पर्यायमें संक्रमण कर देता है। इसी प्रकार स्वधर्मके अन्दर धर्मान्तर भेद करना पृथक्त्व कहलाता है। उसका वितर्क श्रुतज्ञानमें स्थित उपयोग है और सप्रविचार सविकल्प उपयोगको कहते हैं, जिसमें एकका चिन्तवन करनेके अनन्तर दूसरेका विचार किया जाता है। इसमें निर्मल तथा विकल्प सहित अपनी सत्ताका ध्यान किया जाता है। यह पाद आठवें गुण-स्थानसे लगाकर ११ वें गुणस्थानतक है।

२—एकत्ववितर्क अप्रविचार—जीव अपने गुण पर्यायकी एकतासे ध्यानको इस भांति करता है। जीवके गुण पर्याय और जीव एक ही है, मेरा सिद्ध स्वरूप जीव एक ही है, इस प्रकार एकत्व स्वरूप तन्मयतासे है। आत्माके अनन्त धर्मका एकत्वसे ध्यानवितर्क यानी श्रुतज्ञानावलम्बीपनसे और अप्रविचार-विकल्प रहित दर्शन ज्ञानका समयान्तरमें कारणता बिना जो ध्यान है, वीर्य उपयोगकी एकाग्रता ही एकत्ववितर्क अप्रविचार है। यह ध्यान १२ वें गुण-

स्थानमें आता है। श्रुतज्ञानी इसका अवलम्बन करते हैं। मगर अवधि मनःपर्यव ज्ञानमें संलग्न जीव इसका ध्यान नहीं कर सकते। ये दोनों ज्ञान परानुयायी हैं। अतः इस ध्यानसे ४ घातिया कर्म क्षय होते हैं। निर्मल केवलज्ञान पाता है। फिर तेरहवें गुणस्थानपर ध्यानान्तरिका द्वारा वर्तता है। तेरहवेंके अन्तमें और १४ वें गुणस्थानके अन्तर्गत शेपके दो पाद पाये जाते हैं।

३—सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्ति—सूक्ष्म मन, वचन, काय, योगका रुंधन करके शैलेशी करणके द्वारा अयोगी होते हैं, अप्रतिपाती-निर्मल वीर्य अचलता रूप परिणामको सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान कहा है।

४—उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति—योग निरोध करनेपर १३ प्रकृति क्षय होती है. अकर्मा हो जाते हैं, सब क्रियाओंसे रहित हो जाते हैं, वह समुच्छिन्न—क्रियानिवृत्ति शुक्ल ध्यान है। इस ध्यानके बलसे दल-क्षरणरूप क्रियाका उच्छेद करता है। देहमानमेंसे तीसरा भाग घटा देता है। शरीरको त्यागकर यहांसे सातराजू ऊपर लोकके अन्त तक जाता है।

प्रश्न—१४ वां गुणस्थान तो अक्रिय है, तब वहांपर जीव चलने-की क्रिया क्योंकर कर सकता है?

उत्तर—यद्यपि अक्रिय ही है तथापि अलिप्त तूंबेके समान जीवमें चलनेका गुण है, धर्मास्तिकायमें प्रेरणाका गुण है, अतः कर्म रहित जीव मोक्षतक जाता है और लोकके अन्ततक जाता है।

प्रश्न—यह जीव अलोकमें क्यों नहीं जाता?

उत्तर—अगाड़ी धर्मास्तिकाय नहीं है।

प्रश्न – अधोगतिमें और तिरछी गतिमें क्यों नहीं जाता ?

उत्तर—आत्मा कर्मके बोझसे हल्का हो गया है। अतः कोई प्रेरक नहीं है इसीसे नीची गति और तिरछी गतिमें नहीं जाता। तथा कम्पित भी नहीं होता क्योंकि अक्रिय है।

प्रश्न—सिद्धोंको कर्म क्यों नहीं लगते ?

उत्तर—जीवको कर्म अज्ञान और योगसे लगते हैं। परन्तु सिद्धोंमें ये दोनों ही आते नहीं हैं अतः कर्म नहीं लगते।

अन्य चार ध्यान

१—पदस्थ ध्यान—इसका साधक अरिहंतादि पांच परमेष्टीके गुणोंका स्मरण करना है। उनके शुद्ध स्वरूपका चित्तमें ध्यान करता है।

२—पिंडस्थ ध्यान—मुझमें अर्हन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुके गुण सम्पूर्ण हैं। तथा जीव द्रव्य और परमेष्टीमें एकत्व उपयोग करना पिंडस्थ ध्यान है।

३—रूपस्थ ध्यान—रूपमें रहा हुआ यह मेरा आत्मा अरूपी और अनन्त गुण सहित है। आत्मवस्तुका स्वरूप अतिशय गुणावलम्बी होनेपर आत्माका रूप अतिशय एकताको भजता है।

४—रूपातीत ध्यान—निरंजन, निर्मल, संकल्प विकल्प रहित, अभेद, एक शुद्ध सत्ता रूप, चिदानन्द, तत्वामृत, असंग, अखंड, अनन्त-गुण पर्याय रूप आत्माका स्वरूप है। इस ध्यानमें मार्गणा, गुण-स्थान, नय, प्रमाण, मत्यादिक ज्ञान, क्षयोपशम भावादि सब त्याज्य

हैं। एक सिद्धके ही मूलगुणका ध्यान किया जाता है। यह मोक्षका कारणभूत है।

॥ इति ध्यान तप ॥

व्युत्सर्ग तपके २ भेद

(१) द्रव्य-व्युत्सर्ग, (२) भाव-व्युत्सर्ग।

द्रव्य-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) शरीर-व्युत्सर्ग, (२) गण-व्युत्सर्ग, (३) उपधि-व्युत्सर्ग, (४) भक्तपान-व्युत्सर्ग।

भावव्युत्सर्गके ३ भेद

(१) कषाय-व्युत्सर्ग, (२) संसार-व्युत्सर्ग, (३) कर्म्म-व्युत्सर्ग।

कषाय-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) क्रोध-कषाय-व्युत्सर्ग, (२) मान-कषाय-व्युत्सर्ग, (३) माया-कषाय-व्युत्सर्ग, (४) लोभ-कषाय-व्युत्सर्ग।

संसार-व्युत्सर्गके ४ भेद

(१) नारक-संसार-व्युत्सर्ग, (२) तिर्यंच-संसार-व्युत्सर्ग, (३) मनुष्य-संसार-व्युत्सर्ग, (४) देव-संसार-व्युत्सर्ग।

कर्मव्युत्सर्गके ८ प्रकार

(१) ज्ञानावरणकर्म-व्युत्सर्ग, (२) दर्शनावरणकर्म व्युत्सर्ग; (३)

वेदनीयकर्म-व्युत्सर्ग, (४) मोहनीकर्म-व्युत्सर्ग, (५) आयुष्यकर्म-व्युत्सर्ग, (६) नामकर्म-व्युत्सर्ग, (७) गोत्रकर्म-व्युत्सर्ग, (८) अन्तरायकर्म-व्युत्सर्ग।

इति निर्जरा-तत्त्व ।

अथ बंध-तत्त्व
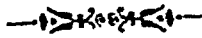
बंध किसे कहते हैं ?

आत्मा और पुद्गलोंका दूध और पानीकी सदृश परस्पर मिलना बंध कहलाता है। अथवा नवीन कर्म पुराने कर्मसे आपसमें मिलकर दृढ़तासे बंध जाते हैं, और कर्म शक्तिकी परम्पराको बढ़ाते हैं वह बंध पदार्थ है, अथवा जिसने मोहरूपी मदिरा पिलाकर संसारी जीवोंको व्याकुल कर डाला है, जो मोह जालके समान है, और वह ज्ञानरूपी चंद्रको निस्तेज बनानेके लिये राहुके समान है। उसे बंध कहते हैं।

ज्ञान चेतना और कर्म चेतना

जहांपर आत्मामें ज्ञान ज्योति प्रकाशित है, वहां धर्मरूपी पृथ्वी-पर सत्यरूप सूर्यका उद्योत है और जहां शुभ-अशुभ कर्मोंकी सघनता है वहां मोहके विस्तारका घोर अंधकाररूप कुआं है। इस प्रकार जीवकी चेतना दोनों अवस्थाओंमें अव्यक्त होकर शरीररूप मेघ-घटामें विजलीके समान फैल रही है, वह बुद्धि ग्राह्य नहीं है किन्तु पानीकी तरंगोंके समान पानी हीमें लय हो जाती है।

अशुद्ध-उपयोग कर्मबन्धका कारण

जीवको बंधके कारण न तो कार्माण वर्गणाएं हैं, न मन, वचन, कायके योग हैं, न चेतन अचेतनकी हिंसा है। न पांचों इन्द्रियोंके विषय हैं। केवल राग आदि अशुद्ध उपयोग बंधका कारण है। क्योंकि कार्म्माण वर्गणाओंके रहते भी सिद्ध भगवान् अबंध रहते हैं। योग होते हुए भी अर्हन् भगवान् अबंध रहते हैं। हिंसा हो जानेपर भी मुनिराज अबंध रहते हैं। पांचों इन्द्रियोंके भोग सेवन करते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव अबंध रहते हैं। भाव यह है कि–कार्माण वर्गणायोग, हिंसा, इन्द्रिय विषय भोग ये सब बंधके कारण कहे जाते हैं, परन्तु सिद्धालयमें अनन्तानन्त कार्माण वर्गणा (पुद्गल) भरी पड़ी हैं परन्तु ये रागादिके बिना सिद्ध भगवानसे नहीं बंध जातीं। १३ वें गुणस्थानवर्ती अर्हन् भगवानको मन वचन काय योग रहते हैं, परन्तु राग द्वेष आदि न होनेके कारण उन्हें कर्मबंध नहीं होता. महाव्रती साधुओंसे अबुद्धि पूर्वक हिंसा हो जाया करती है, परन्तु राग द्वेष न होनेसे उन्हें बंध नहीं है, अव्रत सम्यग्दृष्टि जीव पांचों इन्द्रियोंके विषय भोगते हैं परन्तु तल्लीनता न होनेसे उन्हें संवर निर्जरा ही होती है। इससे स्पष्ट है कि कार्माण वर्गणाएं, योग, हिंसा, और सांसारिक विषय बंधके कारण नहीं हैं केवल अशुद्धोपयोग ही से बंध होता है। क्योंकि कार्माण वर्गणाएं लोकाकाशमें रहती हैं, मन, वचन, कायके योगोंकी स्थिति, गति और आयुमें रहती है, चेतन अचेतनकी हिंसाका अस्तित्व पुद्गलोंमें है। इन्द्रियोंके विषय-भोग उदयकी प्रेरणासे होते हैं। इसमें वर्गणा, योग, हिंसा और भोग

इन चारोंका सद्भाव पुद्गल सत्तापर है—आत्म सत्तापर नहीं है. अतः ये जीवके लिये कर्मबंधके कारण नही हैं। और राग. द्वेप, मोह जीवके स्वरूपको भुला देते हैं. इससे बंधकी परम्परामें अशुद्ध उपयोग ही अन्तरंग कारण बताया गया है। सम्यक्त्व भावमें राग, द्वेप. मोह नहीं होते इस कारण सम्यग्दृष्टिको और सम्यग्ज्ञानीको सदा बंध रहित कहा है।

अबंधज्ञानी पुरुपार्थ कर्ता है

स्वरूपकी संभाल और भोगोंका अनुराग ये दोनों बातें एक साथ जैन-धर्मकी दृष्टिसे नहीं हो सकतीं। इससे यद्यपि सम्यग्ज्ञानी वर्गणा, योग, हिंसा और भोगोंसे अबंध है तथापि उन्हें पुरुपार्थ करने के लिये जिनराजको आज्ञा हैं। वे शक्तिके अनुसार पुरुपार्थ करते हैं, मगर फलकी अभिलापा नहीं करते और हृदयमें सदैव दया भाव धारण किये रहते हे निर्दय नहीं होते। प्रमाद और पुरुपार्थ-हीनता तो मिथ्यात्व दशामें ही होती है जहां जीव मोह निद्रासे अचेत रहता है, सम्यक्त्व भावमें पुरुपार्थहीनता नहीं है।

उदयका प्रावल्य

जिस प्रकार कीचड़के गड़ेमें पड़ा हुआ बूढ़ा हाथी अनेक चेष्टाएँ करने पर भी दुःखसे नहीं छूटता, जिस प्रकार लोहके कांटेमें फँसी हुई मछली दुःख पाती है—निकल नहीं सकती, जिस तरह तेज बुखार और मस्तक शूलमें पड़ा हुआ व्यथित मनुष्य अपना कार्य करने के लिये स्वाधीनता पूर्वक नहीं उठ सकता उसी प्रकार

सम्यग्ज्ञानी जीव सब कुछ जानते हैं परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मोदयके फंदेमें फंसे हुए रहने से उनका कुछ भी वश नहीं चलता जिसके कारण व्रत संयम आदि भी ग्रहण नहीं कर सकते। मगर जो जीव मिथ्यात्वकी निद्रामें सोये पड़े हैं वे मोक्ष मार्गमें प्रमादी और पुरुषार्थहीन हैं और जो विज्ञान ज्ञान नेत्र उघाड़ कर जग गये हैं वे प्रमाद रहित होकर मोक्ष मार्गमें पुरुषार्थ करते हैं।

ज्ञानी और अज्ञानीकी परिणति

जिस प्रकार विवेक रहित मनुष्य मस्तकमें कांच और पैरोंमें रत्न पहिनता है क्योंकि वह कांच और रत्नका मूल्य नहीं समझता। इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अतत्वमें मग्न रहता है, और अतत्वको ही ग्रहण करता है किन्तु वह सत् और असत्को नहीं पहचानता। संसारमें हीरेकी परीक्षा जौहरी ही करना जानते हैं, इसी तरह सांच झूठकी पहिचान मात्र ज्ञानसे और ज्ञानदृष्टिसे होती है। जो जिस अवस्थामें रहने वाला है वह उसीको सुन्दर मानता है और जिसका जैसा स्वरूप है वह वैसी ही परिणति प्राप्त करता है अर्थात् मिथ्यात्वी जीव मिथ्यात्वको ही ग्राह्य समझता है और उसे अपनाता है तथा सम्यक्त्वी जीव सम्यक्त्वको ही उपादेय जानता है और उसे अपनाता है।

जैसी करनी वैसी भरनी

जो विवेक हीन होकर कर्मबंधकी परम्पराको बढ़ाता है वह

अज्ञानी तथा प्रमादी है, और जो मोक्ष पानेका प्रयत्न करते हैं वे ही जन पुरुषार्थी हैं ।

ज्ञानमें वैराग्य है

जब तक जीवका विचार शुद्ध वस्तुमें रमता है तब तक वह भोगोंसे सर्वथा विरक्त है और जब भोगोंमें लय होता है तब ज्ञानका उदय नहीं रहता, क्योंकि—भोगोंकी इच्छा अज्ञानका रूप है, इससे प्रगट है कि—जो जीव भोगोंमें मग्न होता है वह मिथ्यात्वी है, और जो भोगोंसें विरक्त होकर आत्मदशामें रमण करता है वह सम्यग्दृष्टि है। यह जानकर भोगोंमें विरक्त होकर मोक्षका साधन करो। यदि मन भी पवित्र है तो कठौतीमें ही गंगा है, यदि मन मिथ्यात्व विषय, कषाय आदिसे मलिन है तो गंगा आदि करोड़ों तीर्थोंकी यात्रा करने से भी आत्मामें पवित्रता नहीं आती।

चार पुरुषार्थ

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थके चार अंग हैं, इन्हें कुटिलमतिके जीव मन चाहे ग्रहण करते हैं और सम्यग्दृष्टि जीव तथा ज्ञानी पुरुष सम्पूर्णतया वास्तविक रूपसे अंगीकार करते हैं।

अज्ञानी लोक कुलपद्धति, स्नान, चौका, पूजा-पाठ आदिको धर्म समझ बैठे हैं, और तत्वज्ञजन वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। अज्ञानी जीव मिट्टीके ढेर, सोने-चांदी आदिको द्रव्य कहते हैं परन्तु आत्मज्ञ पुरुष तत्वके अवलोकनको द्रव्य कहते हैं। अज्ञानीजन पुरुष-स्त्रीके विषय-भोगको काम कहते हैं; ज्ञानी आत्माको निस्पृहता-

को काम कहते हैं। अज्ञानी स्वर्गलोक और वैकुण्ठको मोक्ष कहते हैं परन्तु ज्ञानी कर्मबंधन नष्ट होनेको मोक्ष कहते हैं।

आत्मामें चारों पुरुषार्थ हैं

वस्तु स्वभावका यथार्थ ज्ञान करना धर्मपुरुषार्थकी सिद्धि करना है, छह द्रव्योंका भिन्न-भिन्न जानना अर्थपुरुषार्थकी साधना है, निस्पृहताका ग्रहण करना काम पुरुषार्थकी सिद्धि करना है, और आत्म स्वरूपकी शुद्धता प्रगट करना मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि करना है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको सम्यग्दृष्टि जीव अपने हृदयमें अन्तर्दृष्टिमें नित्य देखते रहते हैं, और मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके भ्रममें पड़कर चारों पुरुषार्थोंकी साधक और आराधक सामग्री पासमें रहनेपर भी उन्हें नहीं देखता और बाहर खोजता फिरता है।

वस्तुका तथ्य स्वरूप और जड़ता

तीन लोक और तीनों कालमें जगतके सब जीवोंको पूर्व उपार्जित कर्म उदयमें आकर फल देता है जिससे कोई अधिक आयु पाते हैं, कोई छोटी उमर पाते हैं, कोई दुःखी हो होकर मरते हैं, कोई सुखी होते हैं, कोई साधारण स्थितिमें ही मरते हैं, इसपर मिथ्यात्वी ऐसा मानने लगता है कि मैंने इसे जीवित किया, इसे मारा, इसे सुखी किया, इसे दुःखी किया है। इसी अहंबुद्धिसे अज्ञानका पर्दा नहीं हटता और यही मिथ्याभाव है जो कर्मबंधका कारण रूप है। क्योंकि जबतक जीवोंका जन्म मरण रूप संसारका कारण है तबतक

वे असहाय हैं कोई भी किसीका रक्षक नहीं है। जिसने पूर्वकालमें जैसी कर्म सत्ता बांधी है उदय प्रसंगमें उसकी वैसी ही दशा हो जाती है। ऐसा होनेपर भी जो कोई कहता है कि मैं पालता हूं, मैं मारता हूं इत्यादि अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ करता है, और वह इसी अहं-बुद्धिसे व्याकुल होकर सदा फिरता भटकता रहता है, और अपनी आत्माकी शक्तिका घात करता है।

जीवकी चार कक्षाएँ

उत्तम मनुष्य स्वभावका अर्थात् अन्तरंगमें और वाह्यमें किस-मिस-दाखके समान कोमल और मीठा होता है। मध्यम पुरुपका स्वभाव नारियलके समान वाहरसे कड़ा (अभिमानी) और अन्त-रंगमें कोमल रहता है। अधम पुरुपका स्वभाव वेर फलके समान वाहरसे कोमल किन्तु अन्दरसे कठोर होता है, और अधमाधम मनुष्यका स्वभाव सुपारीके समान अन्दर और वाहरसे सर्वांग कठोर रहता है।

उत्तम पुरुषोंका स्वभाव

कंचनको कीचड़ समान जानते हैं। राज्य पदको विल्कुल तुच्छ गिनते हैं, लोकोंमें मित्रता करना मृत्यु समझते हैं, प्रशंसाको वन्दूककी गोलीकासा प्रहार समझते हैं। उनके सन्मुख योगोंकी क्रियाएँ ज़हर ही लगती हैं। मंत्रादि करामातको दुःख जानते हैं, लौकिक उन्नति अनर्थके समान है, घरमें निवास करना वाणकी नोकपर सोने जैसा है। कुटुम्व कार्यको वे कालके समान जानते हैं।

लोक लाजको कुलकी लाग समझते हैं। सुयश नाकका मैल है, और भाग्योंके उदयको जो विष्टाके समान जानता है वह उत्तम पुरुष है। भाव यह है कि ज्ञानी जीव सांसारिक अभ्युदयको आपत्ति ही समझते हैं। मध्यम पुरुषके हृदयमें यह समाया रहता है कि—जैसे किसी सज्जनको कोई ठग मामूली ठगमूली खिला देता है और वह मनुष्य फिर उन ठगोंका दास बन जाता है जिससे सदैव उनकी आज्ञामें ही चलता है। परन्तु जब उस बूटीका असर मिट जाता है और उसे भान होता है तब ठगोंको भला न जानकर भी उनके अधीन रहकर अनेक प्रकारके कष्ट सहता है, उसी प्रकार अनादि कालका मिथ्यात्वी जीव संसारमें सदैव भटकता फिरता है और कहीं चैन नहीं पाता। परन्तु घटमें जब ज्ञान ज्योतिका विकाश होता है तब अन्तरंगमें यद्यपि विरक्त भाव रहता है तथापि कर्मोंके उदयकी प्रबलताके कारण शान्ति नहीं पाता है। (यह मध्यम पुरुष है)

अधम पुरुषका स्वभाव

जिस प्रकार गरीब मनुष्यको एक फूटी कौड़ी भी बड़ी सम्पत्तिके समान प्रिय लगती है, उल्लूको सांझ भी प्रभातके समान इष्ट होती है। कुत्तेको वमन ही दहीके समान स्वादिष्ट लगता है। कव्वेको नीमकी निंबोली भी दाखके समान प्रिय है। बच्चेको दुनियाकी गप्पें शास्त्रकी तरह रुच जाती हैं। हिंसक मनुष्यको हिंसा ही में धर्म दीखता है। उसी प्रकार मूर्खको पुण्य बंध ही मोक्षके समान प्यारा लगता है (ऐसा अधम पुरुष होता है)

अधमाधम पुरुषका स्वरूप

जिस प्रकार कुत्ता हाथीको देखकर कुपित होकर भौंकता है, धनी पुरुषको देखकर निर्धन मनुष्य अप्रसन्न होता है, रातमें जागने-वालेको देखकर चोरको क्रोध होता है, सच्चा शास्त्र सुनकर मिथ्यात्वी जीव नाराज़ होता है, हंसको देखकर कौव्वोंको कष्ट होता है, महा-पुरुषको देख देखकर घमंडी मनुष्यको क्रोध आता है, सुकविको देखकर कुकविके मनमें क्रोध भर जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुषको देखकर अधमाधम पुरुष क्रोधित होता है। अधमाधम मनुष्य सरल चित्त मनुष्यको मूर्ख कहता है, जो बातोंमें चतुर है उसे ढीठ कहता है, विनयवान्को धनीका गुलाम बतलाता है। क्षमावान्को कमज़ोर कहता है, संयमीको कृपण कहता है, मधुर भाषकको दीन या चाप-लूस कहता है। धर्मात्माको ढोंगी कहता है, निस्पृहको घमंडी कहता है। सन्तोषीको भाग्यहीन कहता है अर्थात् जहां सद्गुण देखता है वहां दोषका लांछन लगाता है, दुर्जनका हृदय इसी भांतिका मलीन होता है।

मिथ्या दृष्टिमें अहंबुद्धि होती है

मैं कहता हूं, मैंने यह कैसा अच्छा काम किया है, यह औरोंसे कब बननेवाला था। अब भी मैं जैसा कहता हूं वैसा ही कर दिखाऊँगा। जिसमें ऐसे अहंकार रूप विपरीत भाव होते हैं वह हे जन मिथ्यादृष्टि होता है। अहंकारका भाव मिथ्यात्व है, यह भाव जिस जीवमें होता है वह मिथ्यात्वी है। मिथ्यात्वी संसारमें

दुखी होकर भटकता है, अनेक प्रकारके रोदन और विलाप करता है।

मूर्खोंकी विषयोंसे अविरक्ति

जिस प्रकार अंजलीका पानी क्रमशः घटता है, उसी प्रकार सूर्य-का उदय अस्त होना है और प्रति दिन जीवनी घटती रहती है, जिस प्रकार करोंत खिचनेसे काठ कटता है, उसी प्रकार काल शरीर-को प्रतिक्षण क्षीण करता है, इतनेपर भी अज्ञानी जीव मोक्षमार्गकी खोज नहीं करता और लौकिक स्वार्थके लिये अज्ञानका बोझ उठा रहा है। शरीर आदि परवस्तुओंमें प्रीति करता है। मन वचन, कायके योगोंमें अहंबुद्धि करता है, तथा सांसारिक विषय भोगोंसे किंचित् भी विरक्त नहीं होता। जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें सूर्यका तीव्र आताप होनेपर प्यासा मृग उन्मत्त होकर मिथ्या जलकी ओर व्यर्थ ही दौड़ता है उसी प्रकार संसारी जीव माया ही में कल्याण सोचकर मिथ्या कल्पना करके संसारमें नाचते हैं। जिस प्रकार अन्धी स्त्री आटा पीसती है और कुत्ता खाता रहता है या अन्धा मनुष्य आगेको रस्सी बटता रहता है और पीछेसे बछड़ा खाता रहता है, तब उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव शुभाशुभ क्रिया करता है या शुभ क्रियाके फलमें हर्ष और अशुभ क्रियाके फलमें शोक मानकर क्रियाका फल खो देता है।

अज्ञानी बंधसे नहीं छूटता

जिस प्रकार लोटन कबूतरके पंखोंमें दृढ़ पेंच लगे रहनेसे वह

उलट पुलट होकर घूमता फिरता है उसी प्रकार संसारी जीव अनादि कालसे कर्मबंधके पेंचमें उलटा हो रहा है। कभी सन्मार्ग ग्रहण नहीं करता, और जिसका फल दुःख है ऐसी विषय भोगकी किंचित्साताको सुख मानकर शहदमें लिपटी तलवारकी धारको चाटता है। ऐसा अज्ञानी जीव सदाकाल परवस्तुओंको मेरा मेरा कहता है और अपनी आत्म ज्ञानकी विभूतिको नहीं देखता। परद्रव्यके इस ममत्व भावसे आत्महित इस तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह कांजीके स्पर्शसे दूध फट जाता है।

अज्ञानी जीवकी अहंमन्यता

अज्ञानी जीवको अपने स्वरूपकी खबर नहीं है, उसपर कर्मोदय-लेप* लग रहा है, उसका शुभ-पवित्र ज्ञान इस तरह दब रहा है जैसे कि—चन्द्रमा मेघोंसे दब जाता है। ज्ञाननेत्र ढँक जानेसे वह सद्गुरुकी शिक्षाको नहीं मानता, मूर्खतावश दरिद्री हुआ सदैव निश्शंक फिरता है। नाक उसके शरीरमें मांसकी एक डली है, उसमें तीन फांक हैं, मानों किसीने शरीरमें तीनका अंक ही लिख डाला है, उसे नाक कहता है, उस नाक (अभिमान) को रखनेके लिये विश्वमें लड़ाई ठानता है, कमरमें तलवार बांधता है और मनमेंसे टेढ़ापन निकालता ही नहीं।

* सफेद कांचपर जिस रंगका लेप लगाया जाता है उसी रंगका कांच दीखने लगता है. उसी प्रकार जीवरूपी कांचपर कर्मका लेप लग रहा है, वह कर्म जैसा रस देता है जीवात्मा उसी प्रकारका हो जाता है।

अज्ञानीकी विषयासक्ति

जिस प्रकार भूखा कुत्ता हाड़ चबाता है और उसकी अनी मुखमें कई जगह चुभ जाती है। जिससे गाल, तालु, जीभ और जबड़ोंका मांस फट जाता है और खून निकलता है, उस निकले हुए अपने निजके ही रक्तको वह बड़े स्वादसे चाटता हुआ आनन्दित होता है। उसी प्रकार अज्ञानी विषयासक्त जीव काम भोगोंमें आसक्त होकर सन्ताप और कष्टमें भलाई मानता है। काम-क्रीड़ामें शक्तिकी हानि और मल-मूत्रकी खानि तो आंखों आगे दीखती है तब भी वह ग्लानि नहीं करता, प्रत्युत राग, द्वेष और मोहमें मग्न रहता है।

निर्मोह प्राणी साधु है

वास्तवमें आत्मा कर्मोंसे निरनिराला है, परन्तु मोह कर्मके कारण निज स्वरूपको भूलकर मिथ्यात्वी बन रहा है, और शरीर आदिमें वह अहंभाव मानकर अनेक विकल्प करता है। जो जीव परद्रव्योंसे ममत्व जालको हटाकर आत्म-स्वरूपमें स्थिर होते हैं वे ही साधु हैं।

समदृष्टिकी आत्मामें स्थिरता

जिनराजका कथन है कि जीवके जो लोकाकाशके बराबर मिथ्यात्व भावके अध्यवसाय हैं, वे सब व्यवहार नयसे हैं। जिस जीवका मिथ्यात्व नष्ट होनेपर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह व्यव-हारको छोड़कर निश्चयमें लीन होता है, वह विकल्प और उपाधि रहित आत्म अनुभव ग्रहण करके दर्शन, ज्ञान, चरित्र रूप मोक्ष

मार्गमें लगता है. और वही परम ध्यानमें स्थिर होकर निर्वाण प्राप्त करता है, तथा कर्मोंका रोका नहीं रुकता।

प्रश्न—आपने मोह कर्मकी सब परिणति बंधका कारण ही बताई है अतः वह शुद्ध चैतन्य भावोंसे सदा निराली ही है और अब फिर आप ही कहिये कि बंधका मुख्य कारण क्या है? बंध जीवका स्वाभाविक धर्म है अथवा इसमें पुद्गल द्रव्यका निमित्त है?

उत्तर—जिस प्रकार स्वच्छ और सफेद सूर्यकान्ति या स्फटिक-मणिके नीचे अनेक प्रकारके लेप लगाये जायँ तो वह अनेक प्रकारसे रंग विरंगा दीखने लगता है, और यदि वस्तुका वास्तविक स्वरूप बताया जाय तो उज्वलता ही ज्ञात होती है। उसी प्रकार जीवद्रव्यमें पुद्गलके निमित्तसे उसकी ममताके कारण मोह मदिराकी उन्मत्तता होती है, पर भेद विज्ञान द्वारा स्वभावको सोचा जाय तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शान्ति प्रतीत होती है। जिस प्रकार भूमिपर यद्यपि नदीका प्रवाह एक रूप होता है, तथापि पानीकी अनेकानेक अवस्थाएँ हो जाती हैं, अर्थात् जहां पत्थरसे ठोकर खाता है वहां पानीकी धार मुड़ जाती है, जहां रेतका समूह होता है वहां फेन पड़ जाते हैं, जहां हवाका झकोरा लगता है वहां लहरें उठने लगती हैं। जहां धरती ढालू होती है वहां भँवर पड़ जाते हैं, उसी प्रकार एक आत्मामें भांति भांतिके पुद्गलोंका संयोग होनेसे अनेक प्रकारकी विभाव परिणतिएँ होती हैं। मगर आत्माका लक्षण चेतना है, और शरीर आदिका लक्षण जड़ है अतः शरीरादि ममता हटाकर शुद्ध चैतन्यका ग्रहण करना उचित है।

आत्म-स्वरूपकी पहचान ज्ञानसे होती है

आत्माको जाननेके लिये अर्थात् ईश्वरकी खोज करनेके लिये कोई तो बाबाजी बन गये हैं, कोई दूसरे देशमें यात्रा करनेके लिये निकलते हैं, कोई छीकेंपर बैठ पहाड़ोंपर चढ़ते हैं, कोई कहता है कि ईश्वर आकाशमें है और कोई पातालमें बतलाते हैं, परन्तु हमारा प्रभु दूर देशमें नहीं है बल्कि हम ही में है अतः हमें भली प्रकार अनुभव द्वारा ज्ञान हो चुका है। क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जन अत्यन्त वीत-रागी होकर मनको स्थिर रख आत्म-अनुभव करता है वही आत्म-स्वरूपको प्राप्त होता है।

मनकी चंचलता

यह मन क्षण भरमें पंडित बन जाता है, क्षण भरमें मायासे मलिन हो जाता है, क्षण भरमें विषयोंके लिये दीन होता है, क्षण भरमें गर्वसे इन्द्रके समान बन जाता है, क्षण भरमें जहां तहां दौड़ लगाता है, और क्षण भरमें अनेक वेष बनाता है, जिस प्रकार दही बिलोनेपर तक्रका गड़गड़ शब्द होता है वैसा कोलाहल तक मचाता है; नटका थाल, हरटकी माला, नदीकी धारका भँवर अथवा कुम्हार-के चाकके समान घूमता रहता है। ऐसा भ्रमण करनेवाला मन आज थोड़ेसे प्रयाससे क्योंकर स्थिर हो सकता है, जो स्वभावसे ही चंचल और अनादि कालसे वक्र है।

मनपर ज्ञानका प्रभाव

यह मन सुखके लिये सदैव भटकता रहा है, पर कहीं सच्चा सुख

नहीं पाया। अपने स्वानुभवके सुखसे विरुद्ध होकर दुःखोंके कुएँमें पड़ रहा है, धर्मका घातकी, अधर्मका साथी, महाउपद्रवी, सन्निपातके रोगीके समान असावधान हो रहा है, धन-सम्पत्ति आदिको चतुराई और फुर्तीके साथ ग्रहण करता है और शरीरसे प्रेम लगाता है. भ्रम जालमें पड़कर ऐसा भूल रहा है जैसे शिकारीके घेरेमें शशक (खर-गोश) फिरता है। यह मन ध्वजाके वस्त्रके समान है, वह ज्ञानका उदय होनेसे मोक्षमार्गमें प्रवेश करता है।

जो मन, विषय, कषायादिमें प्रवर्तता है वह चंचल रहता है, और जो आत्म स्वरूपके ही चिन्तवनमें लगा रहता है वह स्थिर हो जाता है। इससे मनकी प्रवृति विषय-कषायसे हटाकर उसे शुद्ध आत्म-अनुभवकी ओर ले जाओ और स्थिर करो।

आत्मामें अनुभव करनेकी विधि

प्रथम भेद-विज्ञानसे स्थूल शरीरको आत्मासे भिन्न मानना चाहिये, फिर उस स्थूल शरीरमें तेजस कार्मण सूक्ष्म शरीरमें जो सूक्ष्म शरीर हैं उन्हें भिन्न जानना समुचित है। पश्चात् अष्टकर्मकी उपाधि जनित राग-द्वेषोंको भिन्न करना और फिर भेद-विज्ञानको भी भिन्न मानना चाहिये। भेद-विज्ञानमें अखंड आत्मा विराजमान है। उसे श्रुतज्ञान प्रमाण या नय-निक्षेप आदिसे निश्चित कर उसीका विचार करना और उसीमें लीन होना चाहिये। मोक्षपद पानेकी निरन्तर ऐसी ही रीति है।

आत्मानुभवसे कर्मबंध नहीं होता

संसारमें समदृष्टि जीव ऊपर कहे अनुसार आत्माका स्वरूप

जानता है और राग-द्वेष आदिको अपना स्वरूप नहीं मानता अतः वह कर्मबंधका कर्ता नहीं है।

भेद विज्ञानकी क्रिया

आत्मज्ञानी जीव भेद-विज्ञानके प्रभावसे पुद्गल कर्मको अलग जानता है और आत्म स्वभावसे भिन्न मानता है। उन पुद्गल कर्मोंके मूल कारण राग, द्वेष, मोह आदि विभाव हैं, उन्हें नष्ट करनेके लिये शुद्ध अनुभवका अभ्यास करता है, पररूप तथा आत्मस्वभावसे भिन्न पद्धतिको हटाकर अपने हीमें अपने ज्ञान-स्वभावको स्वीकार करता है, इस प्रकार वह सदैव मोक्ष मार्गका साधन करके बंधन रहित होता है, और केवलज्ञान प्राप्त करके लोकालोकका ज्ञायक होता है।

भेदज्ञानीका पराक्रम

जिस प्रकार कोई अजान महाबलवान् मनुष्य अपने बाहुबलसे किसी वृक्षको जड़से उखाड़ डालता है, उसी प्रकार भेद-विज्ञानी मनुष्य ज्ञानकी प्रकर्ष शक्तिसे द्रव्यकर्म और भावकर्मको हटाकर हलके हो जाते हैं। इसी रीतिसे मोहका अन्धकार नष्ट हो जाता है, और सूर्यसे भी सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञानकी ज्योति जगमगा जाती है। फिर कर्म, नोकर्मसे न छिपने योग्य अनन्त शक्तिप्रगट हो जाती है। जिससे वह सीधा चार प्रकारके बंधोंको तोड़कर मोक्ष जाता है, और किसीका रोका नहीं रुक सकता।

चार बंधोंका स्वरूप क्या है ?

बंधतत्त्वके चार प्रकार है—१—प्रकृतिबंध, २—स्थितिबंध, ३—अनुभागबंध, ४—प्रदेशबंध।

आठ कर्मोंके नाम

१—ज्ञानावरणीय कर्म, २—दर्शनावरणीय कर्म, ३—वेदनीय कर्म, ४—मोहनीय कर्म, ५—आयुष्य कर्म, ६—नाम कर्म, ७—गोत्र कर्म, ८—अन्तराय कर्म।

कर्मके दो प्रकार

१—द्रव्यकर्म—ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल द्रव्यका पिण्ड द्रव्य-कर्म है।

२—भावकर्म—उस पुद्गल द्रव्यमें फल देनेकी शक्तिको भावकर्म कहते हैं. अथवा कार्यमें कारण रूप व्यवहार होनेसे उस शक्तिके द्वारा उत्पन्न हुए अज्ञानादि या क्रोधादि परिणाम भी भावकर्म हैं।

घातिककर्म

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चार घातिककर्म हैं। जीवके अनुजीवी गुणोंके नाशक हैं।

अघातिक कर्म

आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय ये चार अघातिक कर्म हैं। ये जली हुई जेवड़ीकी तरह रहनेसे आत्म-गुणका नाश नहीं होता।

घातिया कर्मोंका कार्य

केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्तशक्ति, और क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दानादिक, इन क्षायिक भावोंको तथा मति ज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधि, मनः पर्यय इन क्षायोपशमिक भावोंको ये ज्ञानावरणादि चार घातिक कर्म घातते हैं अर्थात् जीवके इन सब गुणोंको प्रगट नहीं होने देते अतः ये घातिक कर्म हैं।

अघातिक कर्मोंका कार्य

अज्ञानने कर्म किया गया है, मोह, अज्ञान, असंयम, और मिथ्यात्वने अनादि संसार बढ़ रहा है, उसमें आयुका उदय आनेके कारण मनुष्य आदि चार गतियोंमें जीवकी स्थिति करता है। जैसे – काठके यंत्रमें राजादिके अपराधीका पांव उस खोड़ेमें फंसा दिया जाता है, अपने छिद्रमें जिसका पैर आ गया है उसको उस छेदमें ही स्थिति करता है, उसको बाहर नहीं निकलने देता। इसी प्रकार आयु कर्म जिस गतिके शरीरमें उदय हुआ है उसी गतिमें जीवको ठहराता है।

नामकर्मका कार्य

गति आदि अनेक प्रकारका नाम कर्म, नारकी आदि जीवकी पर्यायोंके भेदोंको, औदारिक शरीरादि पुद्गलके भेदोंको तथा एकगतिसे दूसरी गतिरूप परिणमनशील अवस्थाका अनेक प्रकारसे परिवर्तन करता है। चित्रकारकी सदृश अनेक कार्योंको करता है। आशय यह निकलता है कि – जीवमें जितने फल हों ऐसा जीव-

विपाकी, पुद्गलमें जिनका फल हो ऐसी पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी इस भांति चार प्रकारकी प्रकृतिओंके परिणमनको 'नामकर्म' करता है।

गोत्र कर्मका कार्य

जीवके चरित्रकी गोत्र संज्ञा है, जिन माता पिताओंका आचरण सदाचरण हो वह उच्च गोत्र है, और जो माता-पिता दुश्चरित्री, व्यभिचारी आदि हों वह नीचगोत्र है। उनके कुल और जातिमें उत्पन्न होनेवाला वही कहलाता है जैसे एक 'किंवदन्ती' है कि—

गीदड़ीके किसी बच्चेको बचपनसे ही किसी सिंहनीने पाला था। वह भी बड़ा होकर उस सिंहनीके बच्चोंमें ही खेला करता था। एक दिन सब बच्चे खेलते खेलते किसी जंगलमें जा निकले, उन्होंने वहां हाथिओंके समूहको देखकर सिंहनीके बच्चे तो हाथियों पर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गये लेकिन वह हाथिओं को देख कर भागने लगा, क्योंकि उसमें अपने कुलके भीरुत्वका संस्कार था, तब वे सिंहोंके बच्चे अपने बड़े भाईको भागता देखकर वे भी वापस लौट पड़े, और मातोके पास आकर यह शिकायत की कि उसने हमको हाथीके शिकार करने से रोका है। तब सिंहनीने उस शृगाल पुत्रको एकांतमें ले जाकर इस आशयका एक श्लोक कहा कि हे वत्स! अब तू यहांसे भाग जा नहीं तो तेरी जान न बचेगी। श्लोक—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोऽसि पुत्रक।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते॥१॥

अर्थात् हे पुत्र ! तू शूर है विद्यावान रूपवान् है, परन्तु जिस कुलमें तू पैदा हुआ है उस कुलमें हाथी नहीं मारे जाते—भावार्थ यह है कि—कुल और जातिका चरित्र संस्कार अवश्य आ जाता है।

वेदनीय कर्मका कार्य

इन्द्रियोंको अपने रूपादि विषयका अनुभव करना वेदनीय है, जिसमें दुःखरूप अनुभव करना असाता वेदनीय है तथा सुखरूप अनुभव करना साता वेदनीय है। उस सुख दुःखका ज्ञान या अनुभव करानेवाला वेदनीय ही है।

आवरण कर्म

संसारी जीव पदार्थको देखकर फिर जानता है, तदनन्त सात भंगवाले नयोंसे वस्तुका निश्चय कर श्रद्धान करता है, यों क्रमसे दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व ये तीनों जीवके गुण हैं, और देखना, जानना और श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है, इसके अतिरिक्त सब गुणोंमें ज्ञान गुण सबसे अधिक पूज्य है, 'क्योंकि व्याकरणके मतसे भी नियमानुसार पूज्यको प्रथम कहा जाता है'। उसके बाद दर्शन कहा है, पुनः सम्यक्त्व बताया है, और अन्तमें वीर्यका नाम लिया है। क्योंकि वीर्य शक्ति रूप है, और वह शक्तिरूपसे जीव और अजीव इन दोनोंमें ही पाया जाता है, जीवमें ज्ञानादि शक्तिरूप वीर्य है और अजीव यांनी पुद्गलमें शरीरादि शक्तिरूप है अतः वह सबके पीछे कहा गया है, इसी प्रकार इनके गुणोंपर आवरण करनेवाले कर्म

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म क्रमशः हैं।

अन्तराय कर्म घातिक है यह अघातिकके अन्तमें क्यों ?

अन्तराय कर्म घातिया है तथापि अघातिया कर्मोंकी तरह जीवके समस्त गुणोंका घात करने में सामर्थ्य नहीं रखता, और नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीनों कर्मोंके निमित्तसे ही यह अपना कार्य करता है अतः इसे अघातियाओंके अन्तमें कहा है।

अन्य कर्मोंका क्रम

आयुकर्मकी सहायतासे नामकर्मका कार्य चारगतिरूप शरीरकी स्थितिमें रहता है इसलिये आयुकर्मको प्रथम कहकर फिर नामकर्म कहा गया है। शरीरके आधारसे ही नीचता और उत्कृष्टताकी कल्पना होती है इस कारण नामकर्मको गोत्रकर्मसे प्रथम कहा गया है।

अघातिक वेदनीयको-घातिकोंके बीचमें क्यों पढ़ा ?

वेदनीय कर्म घातिया कर्मोंकी सदृश मोहनीय कर्मके भेद जो राग, द्वेष हैं उनके उदयबलसे ही जीवोंका घात करता है, अर्थात् इन्द्रियोंके रूपादि विषयोंमें रति (प्रीति) अरति (द्वेष) होनेसे जीवको सुख तथा दुःख स्वरूप साता और असाताका अनुभव

कराकर अपने ज्ञानादि गुणोंमें उपयोग नहीं लगने देता, तथा परस्वरूपमें लीन कराता है। इस कारण घातियाकी तरह होनेसे घातियाओं के बीचमें तथा मोहनीय कर्मके पहले वेदनीय कर्मका पाठ किया गया है। क्योंकि जब तक राग, द्वेष रहते हैं तब तक यह जीव किसीको बुरा और किसीको अच्छा समझता है। एक वस्तु किसीको बुरी मालूम पड़ती है तो वही वस्तु किसीको अच्छी भी। जैसे कटुकरस युक्त नीमके पत्ते मनुष्यको अप्रिय लगते हैं, मगर वही पत्ते ऊंट और बकरीको प्रिय हैं। वस्तुतः वस्तु कुछ अच्छी या बुरी नहीं है। यदि वस्तु ही अच्छी या बुरी होती तो दोनोंको समान मालूम पड़ती। अतः यह सिद्ध हुआ कि—मोहनीयकर्म रूप रागद्वेषके होनेसे ही इन्द्रियोंसे उत्पन्न सुख तथा दुःखका अनुभव करता है। मोहनीयकर्मके विना वेदनीयकर्म "राजाके विना निर्बलकी तरह कुछ नहीं कर सकता"।

इनका पाठ क्रम

१—ज्ञानावरणीय, २—दर्शनावरणीय, ३—वेदनीय, ४—मोहनीय, ५—आयुष्य, ६—नाम, ७—गोत्र, ८—अन्तराय।

इन कर्मोंके स्वभाव पर उदाहरण

१—ज्ञानावरणीय—यह ज्ञानको ढांपता है, इसका स्वभाव किसीके मुख पर ढंके वस्त्रके समान है, किसीके मुंह पर ढंका हुआ कपड़ा मनुष्यके विशेष ज्ञानको नहीं होने देता उसी तरह ज्ञानावरण कर्म ज्ञानका आच्छादन करता है, विशेषज्ञान नहीं होने देता।

२—दर्शनावरणीय कर्म—यह दर्शनका आवरण करता है, वस्तुको प्रगटतया दिखने नहीं देता, इसका स्वभाव दरवानके समान है। क्योंकि यदि कोई राजाको देखने जाता है तब दरवान् राजाको न देखने देकर बाहरसे ही रोक देता है, ऐसे ही दर्शनावरण कर्म भी वस्तुका दर्शन नहीं होने देता।

३—वेदनीय कर्म - यह सुखदुःखका वेदन अर्थात् अनुभव कराता है, इसका स्वभाव मधुसे सनी हुई तलवारकी धारके समान है, जिसे पहले चखनेसे कुछ मिष्टताका सुख और फिर जीभके दो टुकड़े होनेसे अत्यन्त दुःख होता है, इसी प्रकार साता और असातासे उत्पन्न सुखदुःख हैं।

४—मोहनीय कर्म—इसका स्वभाव मदिरा आदि नशा करने वाली वस्तुओंके समान है. जैसे मद्य पीनेसे जीवको अचेतना या असावधानी आ जाती है, उसे अपने और परायेका कुछ भी ज्ञान और विचार नहीं रहता, इसी तरह मोहनीयकर्म आत्माको बेसुरत-बेभान बना देता है। उसे अपने स्वरूपका विचार नहीं रहता।

५—आयुष्यकर्म—जो 'एति' अर्थात् पर्यायको धारण करनेके निमित्त शक्ति प्राप्त हो वह आयुकर्म है, इसका स्वभाव लोहेकी संकल, जेलखाना या काठके यंत्रके समान है. जैसे संकल, जेलखाना, या काठयंत्र पुरुषको अपने स्थानमें ही स्थित रखता है किसी अन्य स्थानपर नहीं जाने देता, उसी प्रकार आयुकर्म भी मनुष्यादि पर्याय में स्थित रखता है, किसी अन्य पर्यायमें नहीं जाने देता।

६—नामकर्म—अनेक प्रकारसे 'मिनोति' अर्थात् कार्य बनवाता

है, चित्रकारकी तरह चित्रोंको नाना भांति रंगकर तैयार करता है उसी प्रकार नामकर्म नरक-पशु आदि अनेक रूप धारण कराता है।

७—गोत्रकर्म - जो कि 'गमयति' या 'गूयते' यानी ऊंच-नीच पन प्राप्त कराता है, इसका स्वभाव कुम्हारकी तरह है, जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीके छोटे बड़े वर्तन बनाता है। कोई घृतकुम्भ कहलाता है तो कोई विष्टापात्र, इसी तरह गोत्रकर्म भी ऊंच नीच अवस्था कराता है।

८—अन्तराय कर्म—जो 'अन्तरं एति' दाता और पात्रमें परस्पर अन्तर प्राप्त कराता है, इसका स्वभाव भण्डारीके समान है जैसे भण्डारी दूसरेको दान देनेमें विघ्न करता है देनेसे हाथ रोकता है, इसी प्रकार अन्तरायकर्म दान-लाभादिमें विघ्न करता है। इस प्रकार इन आठ कर्मोंकी मूल प्रकृतियां जानना चाहिये, और इनकी उत्तर प्रकृतिएं १४८ हैं। इन प्रकृतिओंका और आत्माका दूध-पानीकी तरह आपसमें एक रूप होना ही बंध कहलाता है। जैसे पात्रमें रक्खे हुए अनेक तरहके रस, बीज, फूल, फल सब मिलकर शराबके भावको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार कर्मरूप होने योग्य कार्मण-वर्गणानामके पुद्गल द्रव्य योग और क्रोधादिकषायके निमित्त कारणसे कर्मभावको प्राप्त होते हैं, तब ही कर्मत्वकी सामर्थ्य प्रगट होती है, और जीवके द्वारा एक समयमें होने वाले अपने एक ही परिणामसे ग्रहण (संबंध) किये गये कर्मयोग्य पुद्गल, ज्ञानावरणादि अनेक भेद रूप हो जाते हैं, और उन उन रूपोंमें परिणमते हैं। जिस प्रकार एक वारका खाया हुआ एक अन्नका ग्रास भी रस, रुधिर, मांस आदि

अनेक धातुरूप अवस्थाओंमें परिणमता है उसी प्रकार ये कर्म भी आत्मामें बंध कर अनेक अवस्थाओंमें परिणमते हैं। ये जिन २ अवस्थाओंमें आत्माको डालते हैं वही कर्मका कार्य है, क्योंकि कर्मोंके निमित्तसे ही जीवकी अनेक दशाएँ होती हैं। इस कारण सब प्रकृतिओंका स्वरूप जानना अत्यावश्यक है।

आठ कर्मके १५८ उत्तर भेद

(१) ज्ञानावरणके ५ भेद—१—मतिज्ञानावरणीय, २—श्रुतज्ञानावरणीय, ३—अवधिज्ञानावरणीय, ४—मनःपर्यवज्ञानावरणीय, ५—केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीयकर्मके ६ भेद—१—चक्षुदर्शनावरणीय, २—अचक्षुदर्शनावरणीय, ३—अवधिदर्शनावरणीय. ४—केवलदर्शनावरणीय, ५—निद्रा, ६—निद्रानिद्रा, ७—प्रचला, ८—प्रचला प्रचला, ९—स्त्यानर्द्धि।

(३) वेदनीय कर्मके दो भेद—१—साता वेदनीय, २—असातावेदनीय।

(४) मोहनीय कर्मके २८ भेद—१—सम्यक्त्वमोहनीय, २—मिश्रमोहनीय, ३—मिथ्यात्वमोहनीय, ४—अनन्तानुबंधी क्रोध, ५—अनन्तानुबन्धी मान, ६—अनन्तानुबन्धी माया, ७—अनन्तानुबन्धी लोभ, ८—अप्रत्याख्यांनी क्रोध, ९—अप्रत्यख्यानी मान, १०—अप्रत्याख्यानी माया, ११—अप्रत्याख्यानी लोभ, १२—प्रत्याख्यानी क्रोध, १३—प्रत्याख्यानी मान, १४—प्रत्याख्यानो माया,

१५—प्रत्याख्यानी लोभ, १६—संज्वलनका क्रोध, १७—संज्वलनका मान, १८—संज्वलनका माया, १९—संज्वलनका लोभ, २०—हास्य-मोहनीय, २१—रतिमोहनीय, २२—अरति मोहनीय, २३—शोक मोहनीय, २४—भय मोहनीय, जुगुप्सा मोहनीय, २६—स्त्रीवेद, २७—पुरुषवेद, २८—नपुंसकवेद।

(५) आयुष्यकर्मके ४ भेद—१—देवायु, २—मनुष्यायु, ३—तिर्यक् आयु, ४—नरकायु।

(६) नाम कर्मके १०३ भेद—१—देवगति, २—मनुष्यगति, ३—तिर्यक्गति, ४—नरकगति, ५—एकेन्द्रिय जाति, ६—द्वीन्द्रिय जाति, ७—त्रीन्द्रिय जाति, ८—चतुरिन्द्रिय जाति, ९—पंचेन्द्रिय जाति, १०—औदारिक शरीर, ११—वैक्रिय शरीर, १२—आहारक शरीर, १३—तैजस शरीर, १४—कार्मण शरीर, १५—औदारिक अंगोपांग, १६—वैक्रिय अंगोपांग, १७—आहारक अंगोपांग, १८ औदारिक बंधन, १९—वैक्रिय बंधन, २०—आहारक बंधन, २१—तैजस बंधन, २२—कार्मण बंधन, २३—औदारिक तैजस बंधन, २४—वैक्रिय तैजसबंधन २५—आहारक तैजस बंधन, २६—औदारिक कार्मण बंधन, २७—वैक्रियकार्मण बंधन, २८—आहारक कार्मण बंधन, २९—औदारिक तैजस कार्मण बंधन, ३०—वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन, ३१—आहारक तैजस कार्मण बंधन, ३२—तैजस कार्मण बंधन, ३३—औदारिक संघातन, ३४—वैक्रिय संघातन, ३५—आहारक संघातन, ३६—तैजस संघातन, ३७—कार्मण संघातन, ३८—वज्रऋषभनाराचसंहनन ३९—ऋषभनाराच संहनन, ४०—नाराच संहनन, ४१—अर्धनाराच

संहनन, ४२—कीलिका संहनन, ४३—असम्प्रातसृपाटिका संहनन, ४४—समचतुरस्र संस्थान, ४५—न्यग्रोध संस्थान, ४६—सादि संस्थान, ४७—कुब्ज संस्थान, ४८—वामन संस्थान, ४९—हुंड संस्थान, ५०—कृष्ण वर्ण, ५१—नील वर्ण, ५२—रक्त वर्ण, ५३-पीत वर्ण, ५४—श्वेत वर्ण, ५५—सुरभिगन्ध, ५६—दुरभिगन्ध, ५७—तिक्त रस, ५८—कटुक रस, ५९—कषाय रस, ६०—आम्ल रस, ६१—मधुर रस, ६२—गुरु स्पर्श, ६३—लघु स्पर्श, ६४—मृदु स्पर्श, ६५—खर स्पर्श, ६६—शीत स्पर्श, ६७—उष्ण स्पर्श, ६८—स्निग्ध स्पर्श, ६९—रूक्ष स्पर्श, ७०—देवानुपूर्वी, ७१—मनुष्यानुपूर्वी, ७२—तिर्यंचानुपूर्वी, ७३—नरकानुपूर्वी, ७४—शुभविहायोगति, ७५—अशुभविहायोगति, ७६—पराघात नामकर्म, ७७—श्वासोच्छ्वास नामकर्म, ७८—आतप नामकर्म, ७९—उद्योत्त नामकर्म, ८०—अगुरुलघु नामकर्म, ८१—तीर्थंकर नामकर्म, ८२—निर्माण नामकर्म, ८३—उपघात नामकर्म, ८४—त्रस नामकर्म, ८५—बादर नामकर्म, ८६—पर्याप्त नामकर्म, ८७—प्रत्येक नामकर्म, ८८—स्थिर नामकर्म, ८९—शुभ नामकर्म, ९०—सौभाग्य नामकर्म, ९१—सुस्वर नामकर्म, ९२—आदेय नामकर्म, ९३—यशःकीर्ति नामकर्म. ९४—स्थावर नामकर्म, ९५—सूक्ष्म नामकर्म, ९६-अपर्याप्त नामकर्म, ९७—साधारण नामकर्म, ९८—अस्थिर नामकर्म, ९९—अशुभ नामकर्म, १००—दुर्भाग्य नामकर्म, १०१—दुःस्वर नामकर्म, १०२—अनादेय नामकर्म, १०३—अपयश नामकर्म।

(७) गोत्रकर्मके २ भेद—१—उच्चगोत्र, २—नीचगोत्र।

(८) अन्तराय कर्मके ५ भेद— १—दानान्तराय, २—लाभान्तराय, ३—भोगान्तराय, ४—उपभोगान्तराय, ५—वीर्यान्तराय।

उपरोक्त प्रमाणसे प्रकृतियोंका संक्षेप—५ ज्ञानावरणीयकी प्रकृति हैं, ९ दर्शनावरणीयकी प्रकृति हैं, २ वेदनीयकी हैं, २८ मोहनीयकी होती हैं, ४ आयुष्यकी हैं, १०३ नामकर्मकी हैं, २ गोत्रकर्मकी हैं, ५ अन्तरायकर्मकी हैं।

ये सब मिलकर १५८ प्रकृतिएं हैं।

सत्तामें

सत्तामें भी उक्त कथित १५८ प्रकृतिएं ही होती हैं, कहीं १० बंधनको छोड़कर पांच शरीरके पांच ही बंधन गिननेपर १४८ भी होती हैं।

उदयमें

१५ बंधन, ५ संघातन, तथा वर्णादि १६, इन ३६ प्रकृतिओंको छोड़कर बाकीकी १२२ प्रकृतिएं गणनामें आती हैं। क्योंकि बंधन तथा संघातनको शरीरके साथमें रक्खा गया है और वर्णादि २० के बदलेमें सामान्यतया वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ये चार भेद गिनतीमें आ जाते हैं।

उदीरणामें भी उपरोक्त १२२ प्रकृतिएं ही समाविष्ट हैं।

बंधमें

ऊपर कही गई १२२ प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्व मोहनी और मिश्र

मोहिनीके अतिरिक्त १२० प्रकृतिएं गिनी गई हैं। क्योंकि सम्यक्त्व मोहिनी और मिश्र मोहिनी, ये दो प्रकृतिएँ बंधमें नहीं होतीं। कारण ये तो मिथ्यात्व मोहिनीके अर्धविशुद्ध तथा विशुद्ध किये हुए दलिक हैं। अतः इन्हें बंधनमें नहीं गिना जाता। ये दोनों प्रकृतिएँ अनादि मिथ्यात्वीके लिये उदयमें भी नहीं होतीं।

(१) गुणस्थानपर बंध विचार

सामान्य बंध १२० प्रकृतियोंका समझा जाता है। वर्ण १६, बंधन १५, संघातन ५, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्र मोहिनी २, इन ३८ के विना।

१—मिथ्यात्व गुणस्थानमें—११७ प्रकृतियोंका बंध होता है। तीर्थंकरनाम १, आहारक शरीर २, आहारक अंगोपांग ३ इन तीन प्रकृतियोंके अतिरिक्त।

२—सासादान गुणस्थानमें—१०१ प्रकृतियोंका बंध होता है। नरक त्रिक ३, जाति चतुष्क ४, स्थावर चतुष्क ४, हुंडक १, आतप १, छेवट्ट संहनन १, नपुंसक वेद १, मिथ्यात्व मोहिनी १, इन १६ प्रकृतियोंको छोड़कर।

३—मिश्र गुणस्थानमें—७४ प्रकृतियोंका बंध होता है। तिर्यंच त्रिक ३, स्त्यानर्द्धि त्रिक ३, दुर्भग त्रिक ३, अनन्तानुबन्धी ४, मध्य-संस्थान ४, मध्य संहनन ४, नीच गोत्र १, उद्योतनामकर्म १, अशुभ विहायोगति १, स्त्री वेद १, इन २५ के विना तथा २ आयुष्य (अबंधक होनेके कारण) सब २७ के विना।

४—अविरति गुणस्थानमें—७७ प्रकृतियोंका बंध होता है। आयुष्य २, तीर्थंकर नामकर्म १, इन तीन प्रकृतियोंके और मिलानेसे ७७ प्रकृति होती है। ये ३+७४ में मिलाई जायेंगी।

५—देशविरति गुणस्थानमें--६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। वज्रऋषभनाराच संहनन १, मनुष्यत्रिक ३, अप्रत्याख्यान चतुष्क ४, औदारिकद्विक २, इन प्रकृतियोंको छोड़कर।

६--प्रमत्त गुणस्थानमें--६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रत्याख्यान चतुष्क ४, को छोड़कर।

७--अप्रमत्त गुणस्थानमें--५९ अथवा ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शोक १, अरति २, अस्थिर १, अशुभ १, अयश १, असाता १, इन ६ को निकालनेसे ५७ प्रकृति रहती हैं, जिसमें आहारकद्विक २, का बन्ध यहां ही होता है अतः इन दो के मिलानेसे ५९ हो जाती हैं। जिसमेंसे भी देवायु १, निकलनेपर ५८ रह जाती हैं। क्योंकि यहां किसीका देवायु बन्ध होता है और किसीका नहीं होता, छठवेंसे बांधता बांधता यहां आ जाय तो उसे होता है, परन्तु यहां आरम्भ तो नहीं करता।

८--निवृत्ति गुण स्थानमें--इसके ७ भाग हैं जिसके पहले भागमें ५८ उपरोक्त प्रकृतियां हैं, द्वितीय भागमें निद्राद्विकको छोड़ कर ५६ प्रकृतियां, तृतीय भागमें भी ५६, चौथे भागमें ५६, पांचवेंमें ५६, छठवेंमें ५६, और सातवें भागमें सुरद्विक २, पंचेन्द्रियजाति १, शुभविहायोगति १, त्रसनवक ९, औदारिकको छोड़कर शरीर चतुष्क ४, अंगोपांगद्विक २, समचतुरस्र संस्थान १, निर्माणनाम १,

(२) सामान्य केवली 'अजिन-अतीर्थंकर सिद्ध' होते हैं। गौतम आदि।

(३) चतुर्विध संघकी स्थापना करनेके बाद जो मुक्ति पाते हैं, वे 'तीर्थसिद्ध' हैं।

(४) चतुर्विध संघकी स्थापना होनेसे पहले जो मोक्ष पाते हैं वे 'अतीर्थसिद्ध' जैसे—मेरुदेवी आदि।

(५) गृहस्थके वेषमें जो मोक्ष होते हैं वे 'गृहिलिंगसिद्ध'। जैसे मेरुदेवी माता।

(६) संन्यासी आदि अन्य वेषयुक्त साधुओंके मोक्ष होनेको 'अन्यलिंगसिद्ध' कहते हैं।

(७) अपने वेषमें रहकर जिन्होंने मुक्ति पाई हो वे 'स्वलिंगसिद्ध' होते हैं।

(८) 'स्त्रीलिंगसिद्ध' चन्दनबाला आदि।

(९) 'पुरुषलिंगसिद्ध' गजसुकुमार जैसे।

(१०) 'नपुंसकलिंगसिद्ध'।

(११) किसी अनित्य पदार्थको देखकर विचार करते-करते जिन्हें बोध हो गया हो पश्चात् केवलज्ञानको पाकर सिद्ध हुए हों वे 'प्रत्येकबुद्धसिद्ध' जैसे करकंडू आदि।

(१२) बिना उपदेशके पूर्व जन्मके संस्कार जाग्रत होनेपर जिन्हें ज्ञान हुआ और सिद्ध हुए हों वे 'स्वयंबुद्धसिद्ध' होते हैं। जैसे कपिल मुनि।

(१३) गुरुके उपदेशसे ज्ञान पाकर जो सिद्ध होते हैं वे 'बुद्धबोधित' सिद्ध होते हैं।

१—मिथ्यात्वगुणस्थानमें-मिश्र मोहिनी १, सम्यक्त्व मोहिनी १, आहारकद्विक २, जिननाम कर्म १, इन ५ प्रकृतियोंके अतिरिक्त ११७ प्रकृतियोंका उदय रहता है।

२—सासादान गुणस्थानमें—१११ प्रकृतियोंका उदय होता है। सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, साधारण १, आतप १, मिथ्यात्व १, इन पाचों के विना तथा नरकानुपूर्वीका अनुदय होनेसे कुल छ प्रकृतियोंके विना १११ प्रकृतियोंका उदय।

३—मिश्रगुणस्थानमें—उपरकी १११ में से अनंतानुबन्धी ४, स्थावर १, एकेन्द्रिय १, तथा विकलेन्द्रि ३, इन नव प्रकृतियोंका अन्त होता है, तथा तीन आनुपूर्वीका अनुदय होनेसे सब १२ प्रकृतियें छोड़कर ९९ प्रकृतियोंका उदय रहता है। और मिश्रमोहिनी मिलनेसे १०० प्रकृत्रियोंका उदय होता है।

४—अविरति गुणस्थानमें—१०४ प्रकृतियोंका उदय होता है। कारण ऊपरकी १०० प्रकृतियोंमें समकित मोहिनी १, तथा आनुपूर्वी चतुष्क ४, इन पांच प्रकृतियोंके मिलनेसे और मिश्रमोहिनीके उदय-का विच्छेद होनेसे बाक़ीकी चार प्रकृतियें मिलनेसे १०४ होती है।

५—देशविरति गुणस्थानमें—८७ प्रकृतिका उदय होता है। अप्रत्याख्यानी ४, मनुष्यानुपूर्वी १, तिर्यंगानुपूर्वी १, वैक्रियाष्टक ८, दुर्भाग्य १, अनादेय १, अयश १, इन १७ प्रकृतियोंको छोड़कर।

६—प्रमत्त गुण स्थानमें—८१ प्रकृतियोंका उदय होता है। तिर्यंगति १, तिर्यंगायु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, प्रत्याख्यानी ४, इन आठोंके विना तथा आहारकद्विक मिलने पर।

७—अप्रमत्त गुण स्थानमें—७६ प्रकृतियोंका उदय होता है, स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २, इन पांचोंके विना।

८—निवृत्ति गुण स्थानमें—७२ प्रकृतिका उदय है। सम्यक्त्वमोहिनी १, अन्तिम संहनन ३ इन चारोंके विना।

६—अनिवृत्ति गुणस्थानमें—६६ का उदय है, हास्यादिक ६ के विना।

१०—सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थानमें—६० का उदय है। वेद ३, संज्वलन क्रोध १ मान २, माया २, इन ६ के विना।

११—उपशान्त मोह गुण स्थानमें—५६ का उदय है। संज्वलनके लोभके विना।

१२—क्षीणमोह गुण स्थानमें—पहले भागमें ऋषभनाराच संहनन १, नाराच १, इन दो के विना ५७, तथा अन्तिम भागमें निद्रादिकको छोड़नेसे अन्तिम समयमें ५५ का उदय है।

१३ - सयोगी गुण स्थानमें—४२ का उदय है, ज्ञानावरणीय ५, अन्तराय ५, दर्शनावरणीय ४, इन १४ के विना तथा तीर्थंकर नामकर्मके मिलानेसे सब १३ प्रकृतियां शेष करनेपर ४२ रहती हैं (यहां तीर्थंकर नामकर्मका उदय रहता है)।

१४—अयोगी गुण स्थानमें—१२ प्रकृतियोंका उदय अन्तिम समयतक रहता है। क्योंकि ऊपरकी ४२ प्रकृतिमेंसे औदारिकद्विक २, अस्थिर १, अशुभ १, शुभविहायोगति १, अशुभविहायोगति १, प्रत्येक १, स्थिर १, शुभ १, संस्थान ६, अगुरुलघु १, उपघात १, श्वासोच्छ्वास १, वर्ण १, गन्ध १, रस १, स्पर्श १, निर्माण १,

तैजस १, पराघात १, कार्मण १, वज्रऋषभनाराच १, दुःस्वर १, सुस्वर, साता या असातामेंसे १, इन ३० प्रकृतियोंका उदय विच्छेद १३ वेंके अन्तमें ही हो जाता है, और १४ वें गुण स्थानके अन्तिम समयमें सुभग १, आदेय १, यश १, साता असातामेंसे १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, पंचेन्द्रिय जाति १, मनुष्यगति १, मनुष्यायु १, जिन नाम १, उच्चगोत्र १, इन १२ प्रकृतियोंके उदयका विच्छेद करता है।

(३) गुणस्थानमें उदीरणा विचार

पहले गुणस्थानसे छठवें अर्थात् प्रमत्त गुणस्थान तक उदयकी भांति ही उदीरणाको भी जानना चाहिये। अप्रमत्त गुणस्थानसे तीन तीन प्रकृतिएं कम करते जायं अर्थात् उदयमें प्रमत्त गुणस्थानमें स्त्यानर्द्धित्रिक ३, और आहारकद्विक २, इन पांच प्रकृतियोंका विच्छेद होता है। परन्तु उदीरणामें वेदनीय द्विक २, और मनुष्यायु १, इन तीन प्रकृति सहित आठ प्रकृतिओंका विच्छेद होनेसे अप्रमत्तादि गुणस्थानमें तीन-तीन प्रकृति उदय करते हुए उदीरणामें कम गिननी चाहिये, जिससे अप्रमत्तमें ७३, निवृत्तिमें ६९, अनिवृत्तिमें ६३, सूक्ष्मसम्परायमें ५७, उपशान्तमोहमें ५६, क्षीणमोहमें ५४, और सयोगीमें ३९, और अयोगी गुणस्थानमें वर्तते समय उदीरणा नहीं होती।

(४) गुणस्थानमें सत्ताविचार

समुच्चयतया १४८ प्रकृतिएं होती हैं (१५८ मेंसे बंधन १५ बता आये हैं, उन्हें पांच गिननेसे १४८ प्रकृतिएं होती हैं)।

१--मिथ्यात्व गुणस्थानमें--१४८ की सत्ता है।

२--सास्वादान गुणस्थानमें--१४७ की सत्ता है, जिन नामकर्मको छोड़ कर।

३--मिश्र गुणस्थानमें--१४७ की सत्ता है जिन नामकर्मको छोड़ कर।

४--अविरत्त गुणस्थानमें--१४८ की सत्ता है। अथवा अनन्तानुवन्धी ४, मिथ्यात्व १, मिश्र १, सम्यक्त्व मोहिनी १, इन सातोंका अन्त होनेसे १४१ की सत्ता अचरमशरीरी क्षायिक समदृष्टिको उपशमश्रेणीकी अपेक्षा होती है, और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे नरकायु १, तिर्यक् आयु, १, देवायु १, इन तीनोंके विना १४५ की सत्ता रहती है, और उसमेंसे सप्तक यानी सात और घटा देने पर १३८ की सत्ता रहती है (ये चारों भंग अविरति गुणस्थानसे लगाकर अनिवृत्ति वादर सम्पराय नामक नवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक होता है। जो कि इस प्रकार है)।

	ओघसे	क्षपक श्रेणी	उपशम श्रेणी		क्षपक श्रेणीमें सप्तक क्षय
५-देशविरति गुणस्थानमें	१४८	१४५	१४१	क्षा	१३८
६-प्रमत्त गुणस्थानमें	१४८	१४५	१४१	यक	१३८
७-अप्रमत्त गुणस्थानमें	१४८	१४५	१४१	सम	१३८
८-निवृत्ति गुणस्थानमें	१४८	१४५	१४२*	किती	१३८

*अनन्तानुबंधी ४, तिर्यगायु १, नरकायु १, इन ६ के विना १४२ जानना चाहिये।

९—अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थानमें ।

(उपशमश्रेणी)

	स्वभाविक	विसंयोजनी	क्षपकश्रेणी
पहले भागमें	१४८	१४२	१३८
दूसरे भागमें	१४८	१४२	१२२*

*स्थावरद्विक २, तिर्यंचद्विक २, नरकद्विक २, आतपद्विक २, स्त्यानर्द्धित्रिक ३, एकेंद्रिय जाति १, विकलेंद्रियत्रिक ३, साधारण १ इन १६ प्रकृतिओंके विना १२२ समझना चाहिये ।

३-तीसरे भागमें १४८, १४२, ११४, दूसरे कषाय ४, तीसरे कपाय ४, इन आठोंके विना ।

४ वें भागमें १४८ १४२ ११३ नपुंसक वेदको छोड़ कर
५ वें भागमें १४८ १४२ ११२ स्त्री वेदको छोड़ कर ।
६ वें भागमें १४८ १४२ १०६ हास्यादि ६ छोड़ कर ।
७ वें भागमें १४८ १४२ १०५ पुरुष वेद छोड़ कर ।
८ वें भागमें १४८ १४२ १०४ संज्वलनका क्रोध छोड़कर।
९ वें भागमें १४८ १४२ १०३ संज्वलनके मानको छोड़ कर ।

१०-सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें १४८, १४२, १०२ संज्वलनमाया छोड़नेसे ।

११—उपशान्त मोह गुण स्थानमें—१४८, १४२, १०१ संज्वलनका लोभ छूटनेसे।

१२—क्षीण मोह गुण स्थानसे—१०१ जिसमेंसे द्विचरम समयमें

निद्रा १, निद्रानिद्रा १, ये दो जानेसे ९९ प्रकृति सत्तामें होती हैं।

१३—सयोगी गुण स्थानमें—८५ की सत्ता होती है, क्योंकि ९९ में से ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४, अन्तराय ५, ये १४ प्रकृति चली जाती हैं।

१४—अयोगी गुण स्थानमें—अन्तसे पहले (द्विचरम) समयमें ८५ में से वेद २, विहायोगति २, गंध २, स्पर्श २, वर्ण २, रस २, शरीर ५, बंधन ५, संघातन ५, निर्माण १, संघयण ६, अस्थिर १, अशुभ १, दुर्भाग १, दुःस्वर १, अनादेय १, अयश १, संस्थान ६, अगुरुलघु १, उपघात १, पराघात १, उच्छ्वास १, अपर्याप्त १, साता, असातामें से १, पर्याप्त १, स्थिर १, प्रत्येक १, उपांग ३, सुस्वर १, नीचगोत्र १, इन ७२ प्रकृतियोंका अन्त होता है। तब अयोगी गुण-स्थानके अन्तिम समयमें १३ की सत्ता रहती है। मनुष्यत्रिक ३, त्रसत्रिक ३, यश १, आदेय १, सुभग १, जिननाम १, उच्चगोत्र १, पंचेंद्रिय जाती १, साता या असातामें से १, ये १३ अर्थात् नरानुपूर्वी समेत १३ प्रकृतियोंका अन्त होनेसे कर्मकी सत्ताका समग्र नाश होता है। जिसमें यदि नरानुपूर्वी समेत ७३ द्विचरम समयमें चली गई हों तो यहां उसके विना १२ का क्षय होता है। इस प्रकार बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता इन चारोंका विचार १४ गुणस्थानके आश्रयसे जानना चाहिये।

६२ मार्गणाओंपर गुणस्थान तथा उदय

६२ मार्गणाओं पर १४ गुणस्थान तथा उदयकी १२२ प्रकृतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

(१) नरक गति—गुणस्थान ४, वहां ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, मिथ्यात्व १, तैजस १, कार्मण १, वर्णादि ४, अगुरुलघु १, निर्माण १, स्थिर १, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, ये २७ प्रकृतियें ध्रुवोदयी हैं।

इसमें मिथ्यात्व पहले ही गुण स्थान तक ध्रुवोदयी है। और ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय, ५ अन्तराय, ये १४ प्रकृतियें १२ वें गुण स्थान तक सबको ध्रुवोदयी हैं। शेष १२ प्रकृतियें १३ वें गुण स्थानके अन्ततक सब जीवोंके लिये ध्रुवोदयी हैं। इसके अतिरिक्त ध्रुवोदयी २७, निद्रा २।५, वेदनीय २, नरकायु १, नीचगोत्र १, नरकद्विक २, पंचेन्द्रिय जाति १, वैक्रियद्विक २, हुंडक संस्थान १, अशुभ विहायोगति १, पराघात १, उच्छ्वास १, उपघात १, त्रस चतुष्क ४, दुर्भाग १, दुस्वर १, अनादेय १, अयश १, कषाय १६, हास्यादि ६, नपुंसकवेद १, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्र मोहिनी १, एवं ७६।७६ प्रकृतियें ओघसे नारकको उदय रहती हैं। यहां स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय नहीं होता। क्योंकि कहा भी है कि-

"निद्दानिद्दाइणत्ति असंखवासाय मणुआ तिरियाय, वेउव्वाहारगतणु वज्जित्ता अप्पमत्तेय ॥१॥

अर्थार्थः—असंख्यवर्षके आयुष्ययुक्त नर, तिर्यंच (युगलिया) वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तथा अप्रमत्त साधु, इत्यादिको छोड़कर शेष सब जीवोंमें स्त्यानर्द्धित्रिककी उदीरणा होती है।

इस कथनके अनुसार नारक और देव वैक्रिय होनेके कारण उनमें स्त्यनार्द्धित्रिकका उदय अघटित है जिससे इसको वर्ज्य कहा है।

भवधारणीय वैक्रिय शरीरकी अपेक्षा. स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय होता है और उत्तर वैक्रिय करते समय स्त्यानर्द्धित्रिकका उदय नहीं होता है। और नरक तथा देवमें उत्तर वैकिय भी होता है।

उस ७६।७९ के ओघमें से सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन दो को छोड़कर मिथ्यात्वमें ७४।७७ उसमेंसे नरकानुपूर्वी १, मिथ्यात्व इन दो के विना सासादानमें ७२।७५।

उसमें से अनन्तानुवन्धी ४ के विना और मिश्रयुक्त करने पर मिश्र गुण स्थानमें ६९।७२ उसमें नरकानुपूर्वी मिलानेसे अविरतमें ७०।७३ होती हैं।

(२) तिर्यंचगतिमें–देवत्रिक ३, नरकत्रिक ३. वैक्रियद्विक २. आहारकद्विक २. मनुष्यत्रिक ३ उच्चगोत्र १. जिननाम १. इन १५ के विना ओघसे १०७ तथा वैक्रियद्विक सहित गिननेपर १०९ होती हैं।

जिसमेंसे सम्यक्त्व १, मिश्र १. इन दो के विना मिथ्यात्वमें १०५।१०७।

उसमेंसे सूक्ष्म १ अपर्याप्त १, साधारण १. आतप १. मिथ्यात्व १, इन ५ के विना सासादान' में १००।१०२ होती हैं।

अनन्तानुवन्धी ४, स्थावर १, एकेन्द्रियादि जाति ४. तिर्यंचानुपूर्वी १. इन १० के विना और मिश्रयुक्त करनेपर मिश्र गुणस्थानमें' ९१।९३।

मिश्रको निकालनेसे तथा सम्यक्त्व १, और तिर्यंचानुपूर्वी १, इन दो के मिलनेसे 'अविरति' में ९२।९४।

अप्रत्याख्यानीकी ४. दुर्भग १ 'अनादेय' १, अयश १, तिर्यंचा-

नुपूर्व्वी १, इन आठोंके विना देशविरतिमें ८४।८६। यहां गुण प्रत्ययिक वैक्रियकी विवक्षा यदि न करें तो प्रत्येक गुणस्थानमें दो दो कम गिन सकते हैं।

(३) मनुष्यगति—गुणस्थान १४। वैक्रियाष्टक ८, जाति ४, तिर्यंचत्रिक ३, उद्योत १, स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, इन २० के विना ओघसे १०२ और वैक्रियद्विक गिनें तो १०४।

आहारद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पांचके विना 'मिथ्यात्वमें' ९७।९९। अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, इन दो के विना 'सासादानमें' ९५।९७।

अनन्तानुबन्धी ४, मनुष्यानुपूर्व्वी १, इन ५ के विना और मिश्र मिलानेसे 'मिश्र' में ९१।९३। मिश्रको अलग करनेसे सम्यक्त्व १, मनुष्यानुपूर्वी १, इन दो के मिलानेपर 'अविरतिमें' ९२।९४।

अप्रत्याख्यानी ४, मनुष्यानुपूर्वी १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन आठोंके विना देशविरति में ८४।

प्रत्याख्यानी ४, नीच गोत्र १, इन पांचोंको निकालनेपर तथा आहारकद्विक २, मिलानेपर 'प्रमत्त' में ८१ रहती हैं।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २ इन पांचोंके विना अप्रमत्त-में ७६।

सम्यक्त्वमोहिनी १, अन्तिम संहनन ३ इन चारोंके विना 'अपूर्व' में ७२।

हास्यादिके विना 'अनिवृत्ति' में ६६।

वेद ३, संज्वलन ३, इन छ के विना सूक्ष्म सम्परायमें ६०।

संज्वलनके लोभके विना 'उपशान्त मोह' में ५६ ।

ऋषभनाराच १, नाराच१, इन दो के विना 'क्षीण मोह' में ५७ ।

दो निद्राओंके विना 'क्षीण मोह' के अन्तिम समयमें ५५ ।

ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४, अन्तराय ५, इन १४ के विना 'सयोगी' में ४२ । कारण यहां जिननाम कर्मका उदय होता है ।

औदारिक २, विहायोगति २ अस्थिर १, अशुभ १, प्रत्येक १, स्थिर १, शुभ १, संस्थान ६, अगुरुलघु ४, वर्णादि ४, निर्माण १, तैजस १, कार्मण १, वज्रऋषभनाराच संहनन १, दुःस्वर १, सुस्वर १, साता असातामेंसे १, इन तीसके विना अयोगी गुणस्थानमें १२ रहें ।

सुभग १, आदेय १, यश १, वेदनीय १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, पंचेन्द्रिय जाति १ मनुष्यायु १, मनुष्यगति १, जिन नाम १, उच्च गोत्र १, ये १२ प्रकृतिएं अयोगी गुणस्थानके अन्तिम समयमें नष्ट हो जाती हैं ।

(४) देवगतिमें गुणस्थान ४, नरकत्रिक ३, तिर्यंचत्रिक ३, मनुष्य-त्रिक ३, जाति ४, औदारिकद्विक २, आहारकद्विक २, संहनन ६, न्यग्रोधादि संस्थान ५, अशुभ विहायोगति १, आतप १, उद्योत १, जिन नाम १, स्थावर चतुष्क ४, दुःस्वर १, नपुंसक वेद १, नीच गोत्र १, एवं ३६ प्रकृतिएँ छोड़कर ओघसे ८३ प्रकृतिएँ । जब स्त्यानर्द्धित्रिक छोड़ते हैं तब ८० का उदय होता है ।

जिसमेंसे सम्यक्त्व १, मिश्र १, के विना 'मिथ्यात्व' में ७८।८१।

मिथ्यात्वके विना 'सासादान' में ७७।८० ।

अनन्तानुबन्धी ४, देवानुपूर्वी १, इन पांचके विना मिश्र मिलने पर 'मिश्र गुणस्थान' में ७३।७६ ।

मिश्र रहित करके देवानुपूर्वी १, सम्यक्त्व १, इन दो के मिलानेपर अविरतिमें ७४।७७ ।

(५) एकेंद्रियजाति–गुण स्थान २, वैक्रियाष्टक ८, मनुष्यत्रिक ३, उच्चगोत्र १, स्त्रीवेद १, पुंवेद १, द्वीन्द्रियादि जाति ४, आहारकद्विक २, औदारिक अंगोपांग १, संहनन ६, संस्थान ५, विहायोगति २ जिन-नाम १, त्रस १, दुःस्वर १, सुस्वर १, सम्यक्त्व १, मिश्र १ सुभग १, आदेय १, इन ४२ के विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमें' ८० और वैक्रिय सहित ८१, । सूक्ष्म त्रिक ३, आतप १, उद्योत २, मिथ्यात्व १, पराघात १, श्वासोच्छ्वास १, इन ८ के विना 'सासादनमें' ७२।७० ।

(६) द्वीन्द्रिय जाति–गुण स्थान २, वैक्रियाष्टक ८, नरकत्रिक ३, उच्चगोत्र १, स्त्रीवेद १, पुंवेद १, एकेंद्रिय १, त्रींद्रिय १, चतुरिन्द्रिय १, पंचेन्द्रिय १, आहारकद्विक २ संहनन ५, संस्थान ५, शुभविहायोगति १, जिननाम १, स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १ आतप १, सुभग १ आदेय १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४० के विना ओघसे और 'मिथ्यात्वमें' ८२ प्रकृतिका उदय होता है।

उसमेंसे लब्धि अपर्याप्त १, उद्योत १, मिथ्यात्व १ पराघात १, अशुभ १, विहायोगति १, उच्छ्वास १, सुस्वर-दुःस्वर २, इन ८ के विना सासादनमें ७४ ।

(७-८) त्रींद्रिय तथा चतुरिन्द्रिय—इन दोनों मार्गणाओंको भी

द्वीन्द्रियकी तरह जानना चाहिये। परन्तु द्वीन्द्रियके स्थान पर त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय समझना चाहिये।

(९) पंचेन्द्रिय— गुणस्थान १४—जाति ४, स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, इन ८ के विना ओघसे ११४। इनमें आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना मिथ्यात्वमें १०९। मिथ्यात्व १, अपर्याप्त १, नरकानुपूर्वी १, इन ३ के विना 'सासादनमें' १०६।

अनन्तानुवंधी ४, आनुपूर्वी ३, इन ७ के विना मिश्र मिलाने पर 'मिश्रमें' १००।

मिश्रको छोड़कर आनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व १, इनके मिलाने पर 'अविरतिमें' १०४।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियाष्टक ८, नरकानुपूर्वी १, तिर्यंचानुपूर्वी १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १७ के विना देशविरतिमें ८७, छठवें गुणस्थानसे मनुष्यगतिकी तरह ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२, १२, इस क्रमसे जानना चाहिये।

(१०) पृथ्वीकायकी मार्गणामें—२ गुणस्थान, साधारण विना ओघसे और मिथ्यात्वमें ७९। सूक्ष्म १, लब्धि अपर्याप्त १, आतप १, उद्योत १, मिथ्यात्व १, पराघात १, श्वासोच्छ्वास १, इन ७ के विना 'सासादनमें' ७२ (यहां करण अपर्याप्तकी अपेक्षासे सासादनत्व जानना चाहिये)।

(११) अप्कायकी मार्गणामें—गुणस्थान २, आतप विना ओघसे

और मिथ्यात्वमें ७८। सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, उद्योत १, मिथ्यात्व १, पराघात १, उच्छ्वास १, इन ६ के विना 'सासादनमें' ७२।

(१२) तेजस्कायकी मार्गणामें—गुणस्थान १, उद्योत १; यश १, इन २ के विना ओघसे और मिथ्यात्वमें ७६।

(१३) वायुकायकी मार्गणामें--भी उपरोक्त रीतिसे ७६।

(१४) वनस्पतिकायकी मार्गणामें--गुणस्थान २। एकेन्द्रियके समान आतप विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमें' ७९, और 'सासादनमें' ७२।

(१५) त्रसकायकी मार्गणामें--गुणस्थान १४। स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, एकेंद्रियजाति १, इन पांचके विना ओघसे ११७।

आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पांचोंके विना 'मिथ्यात्वमें' ११२। मिथ्यात्व १, अपर्याप्त १, नरकानुपूर्व्वी १ इन तीनके विना 'सासादनमें' १०९।

अनन्तानुवन्धी ४, विकलेन्द्रिय ३, अनुपूर्वी ३, इन १० के विना और मिश्र मिलाने पर मिश्र गुणस्थानमें १००।

अनुपूर्व्वी ४, सम्यक्त्व १, इन ५ के मिलने पर और मिश्रके हटाने पर 'अविरतिमें' १०४। देशविरति आदि गुणस्थानमें ओघकी भांति ८७, ७१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२, १२ आदि जानना चाहिये।

(१६) मनोयोगीमें—गुणस्थान १३, स्थावर चतुष्क ४, जाति ४, आतप १, अनुपूर्वी १, इन १३ के विना ओघसे १०९।

आहारकद्विक २, जिन नाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन पांचके विना 'मिथ्यात्वमें' १०४।

मिथ्यात्व विना 'सासादनमें' १०३।

अनन्तानुवन्धी ४ के विना और मिश्रके मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

मिश्रको छोड़कर सम्यक्त्वको मिलानेसे 'अविरतिमें' १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २, देवगति १ देवायु १, नरकगति १, नरकायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १३ के विना देश विरतिमें ८७। इसके पीछेका भाग ओघकी तरह जानना।

(१७) वचनयोगीमें—गुणस्थान १३। स्थावर ४, एकेन्द्रिय १, आतप १, अनुपूर्वी १, इन ४ के विना ओघसे ११२।

आहारकद्विक १, जिन नाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना मिथ्यात्वमें १०७।

मिथ्यात्व १, विकलेन्द्रिय ३, इन चारके विना 'सासादन' में १०३ (वचन योग पर्याप्तको ही होता है अतः वहां सासादन नहीं होता)।

अनन्तानुवन्धो ४ निकालनेपर तथा मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

अविरतिसे लगाकर अन्य गुणस्थानोंमें मनोयोगीकी तरह जानना।

(१८) काययोगीमें गुणस्थान १३। ओघसे १२२, 'मिथ्यात्वमें' ११७, 'सासादनमें १११। इत्यादि ओघकी तरह जानना चाहिये।

(१६) पुरुष वेदीमें—गुणस्थान ६. नरकत्रिक ३, जाति ४, सूक्ष्म १. साधारण १ आतप १. जिन नाम १. स्त्री वेद १. नपुंसक वेद १. इन १४ के विना ओघमें १०८।

आहारकद्विक २. सम्यक्त्व १. मिश्र १. इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०४।

मिथ्यात्व १. अपर्याप्त १. इन दो के विना 'सासादनमें' १०२।

अनन्तानुबन्धी ४. अनुपूर्वी ३, इन सातोंको निकालकर मिश्र मिलानेसे मिश्रमें ६६। मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व १. अनुपूर्वी ३, इन चारोंको मिलानेसे 'अविरतिमें' ६६।

अनुपूर्वी ३. अप्रत्याख्यानी ४. देवद्विक २. वैक्रियद्विक २, दुर्भग १. अनादेय १. अयश १. इन १४ के विना 'देशविरतिमें' ८५।

प्रत्याख्यानी ४, तिर्यंचद्विक २. उद्योत १, नीचगोत्र १, इन ८ को निकालनेसे और आहारकद्विक मिलानेसे 'प्रमत्तमें' ७६।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३. आहारकद्विक २ इन ५ के विना 'अप्रमत्तमें' ७४।

सम्यक्त्व मोहिनी १, अन्तिम संहनन ३, इन ४ के विना 'अपूर्वमें' ७०।

हास्यादि त्रिकके विना 'अनिवृत्तिमें' ६४।

(२०) स्त्रीवेदमें—पुरुषवेदीकी तरह ओघ और प्रमत्तमें आहारकद्विकके विना तथा चौथे गुण स्थानपर अनुपूर्वी ३ के विना कथन करना चाहिये। कारण स्त्रीको मार्ग वहन करते समय चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता है। स्त्रीको १४ पूर्वका ज्ञान भी न होनेसे आहा-

रद्विक भी नहीं होता। अतः ओघसे तथा ९ गुण स्थानमें १०६, १०४, १०२, ९६-९६, ८५ ७७, ७४, ७७, ६४ इस क्रमसे प्रकृति उदय जानना।

(२१) नपुंसक वेदीमें—गुणस्थान ९, देवत्रिक ३, जिननाम १, स्त्रीवेद १, पुंवेद १, इन ६ के विना ओघमें ११६।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' ११२।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, मनुष्यानुपूर्वी १, इन ७ के विना 'सासादनमें' १०५।

अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंगानुपूर्वी १, स्थावर १, जाति ४, इन १० के विना तथा मिश्रको मिलाकर 'मिश्र गुणस्थानमें' ९६।

नरकानुपूर्वी १, सम्यक्त्व १, इन दोनोंको मिलाकर तथा मिश्रको निकालनेपर 'अविरतिमें' ९७।

अप्रत्याख्यानी ४, नरकत्रिक ३, वैक्रियद्विक २, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १२ के विना 'देशविरतिमें' ८५।

तिर्यंचगति १, तिर्यगायु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, प्रत्याख्यानी ४, इन आठोंको निकालकर आहारकद्विक मिलनेपर 'प्रमत्तमें' ७९।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारद्विक २ इन ५ के विना 'अप्रमत्तमें' ७४।

सम्यक्त्व मोहिनी १, अन्त्य संहनन ३, इन चारके विना 'अपूर्वमें' ७०।

६ हास्यादिकके विना अनिवृत्तिमें ६४।

ज़िननाम कर्म १ वर्णादि चतुष्क ४. अगुरुलघु चतुष्क ४, इन ३० के विना २६ प्रकृतिका बन्ध होता है।

९--अनिवृति गुणस्थान--इसके पांच भाग हैं, जिसके प्रथम भागमें उपरोक्त २६ प्रकृतिथोंमेंसे हास्य १, रति १, दुगंछा १, और भय १, इन चार प्रकृतियोंको निकालनेपर २२ रहती हैं। दूसरे भागमें पुरुष वेद निकालनेसे २१ रहती हैं। तीसरे भागमें संज्वलनका क्रोध निकालनेपर २० रहती हैं। चौथे भागमें मान कपायके जानेपर १९, और पांचवें भागमें मायाके जानेपर १८।

१०—सूक्ष्मसम्परायगुण स्थानमें—ऊपरकी १८ प्रकृतियोंमें से संज्वलन लोभ जानेपर १७ प्रकृतियोंका बंध रहता है।

११—उपशान्तमोहगुण स्थानमें—ऊपरकी १७ प्रकृतियोंमें से दर्शनावरणीय ४, उच्चगोत्र १, यश नामकर्म १, ज्ञानावरणीय ५, इन १६ प्रकृतियोंके निकालनेपर मात्र एक सातावेदनी प्रकृतिका ही बंध रहता है।

१२—क्षीणमोहगुण स्थानमें—सातावेदनीका ही बंध होता है।

१३—सयोगी केवलीगुण स्थानमें--साता वेदनीका ही बंध होता है।

१४-अयोगी केवली गुणस्थानमें—यहां किसी प्रकृतिका बंध नहीं होता है। यह गुणस्थान अवन्धक है।

(२) गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके उदयका विचार

ओघतया १२२ (पहले बताई गई १२० में सम्यक्त्व मोहिनी इन दोनोंके मिलनेसे) का उदय है।

उदय कहना चाहिये। स्वयं मात्र अन्य १२ कपायके विना समझना चाहिये। लोभ मार्गणामें 'दश गुणस्थानपर' ३ वेद जानेपर ६० ।

(२६-२७) मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान मार्गणामें—गुणस्थान ६ होते हैं। और वे चतुर्थसे १२ वें तक। स्थावर ४, जाति ४, आतप १, अनन्तानुबन्धी ४. जिननाम १, मिथ्यात्व १, मिश्र १. इन १३ के विना ओघसे १०६।

आहारकद्विकके विना 'अविरतिमें' १०४।

'देशविरत्तिसे' ओघकी तरह ८७, ८१, ७६, ७३, ६६, ६०, ५६. ५७।

(२८) अवधि ज्ञानकी मार्गणामें—भी ऊपरकी रीतिसे जानना चाहिये। मात्र विशेप इतना है कि-तिर्यंचानुपूर्वीके विना ओघसे १०५। तथा प्रज्ञापना सूत्रकी वृत्तिके अज्ञानुसार अवधिज्ञानीको तिर्यंचानुपूर्वी मालूम होती है। उस अपेक्षा १०६।

आहारकद्विकके विना अविरतिमें १०३, १०४ वाकी मतिज्ञानीकी तरह जानना चाहिये। अवधि तथा विभंग सहित तिर्यंचमें नहीं जन्मता, अतः यह जो लिखा गया है वह वक्र गतिकी अपेक्षासे जानना और ऋजु गतिकी अपेक्षा पशुयोनिमें उत्पन्न होता है।

(२९) मनः पर्यवज्ञानकी मार्गणामें - प्रमत्तसे लगाकर गुण स्थान ७ होते हैं। ओघसे ८१, प्रमत्तादिक ८१, ७६; ७२. ६६, ६०, ५६, ५७।

(३०) केवल ज्ञानीकी मार्गणा—अन्तिम दो गुण स्थान वहां ओघकी तरह ४२।१२।

मार्गणामें गुणस्थान ४ प्रमत्तसे आरम्भ। वहां ओघकी भांति ८१-७६-७२-६६।

(३६) परिहार विशुद्धि मार्गणा—गुणस्थान २ हैं। छठवां और सातवां।

यहां ८१ में से आहारकद्विक २, स्त्रीवेद १, संहनन ५, इन आठोंके विना ओघसे तथा प्रमत्तमें ७३, अथवा संहनन ५ गिन लें तो ७८ (यह १४ पूर्वी नहीं होता अतः आहारकद्विक नहीं हैं। और स्त्रीवेदी भी नहीं होता. तथा वज्रऋषभ नाराच संहनन भी नहीं होता अतः ऋषभनाराचादिको छोड़ दिया गया। किसी २ का मत ५ संहनन गिननेमें सहमत भी है)।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३ टलनेपर अप्रमत्तमें ७०।७५।

(३७) सूक्ष्मसम्परायमार्गणा—गुणस्थान १ दशवां पाया जाता है। यहां ६० का उदय ओघकी तरह है।

(३८) यथाख्यात मार्गणामें—गुणस्थान ४ अन्तिम, यहां जिन नाम सहित ओघसे ६०। जिननाम विना 'उपशान्त मोहमें' ५९। संहनन २ विना क्षीणमोहमें' ५७। निद्राद्विक विना अन्तिम समयमें ५५। सयोगीमें ४२ अयोगीमें १२।

(३९) देशविरतिकी मार्गणामें—गुणस्थान १ पांचवां, वहां ८७ का उदय ओघकी तरह है।

(४०) अविरतिकी मार्गणामें—गुणस्थान ४, वहां जिननाम १, आहारकद्विक २ इन ३ के विना ओघसे ११९।

सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन २ के विना मिथ्यात्वमें ११७।

(३१-३२) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान–गुण स्थान ३. आहारद्विक २, जिननाम १ सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमें' ११७। 'सासादन' में १११, मिश्रमें १००। ओघकी तरह।

(३३) विभंगज्ञानकी मार्गणा—गुणस्थान ३, आहारद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, स्थावर चतुष्क ४, जाति ४, आतप १, नर-तिर्यंचानुपूर्वी २, इन १५ के विना ओघसे १०७ [मनुष्यको तिर्यंचमें उत्पन्न होते समय वाटमें विभंगज्ञान न हो, इस वक्र गतिकी अपेक्षासे कहा है, परन्तु ऋजुगतिकी अपेक्षासे मनुष्यको तिर्यंकमें उपजते समय वाटमें विभंग होता है। पन्नवणामेंसे विशेषपद तथा कायस्थिति पदके अनुसार लिखा है। अतः विभंगज्ञानमें ओघतया १०९]।

मिश्रके विना 'मिथ्यात्वमें' १०८। दो आनुपूर्वी न गिनें तो १०६।

मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, इनके विना 'सासादनमें' १०६।१०४।

अनंतानुबन्धी४,देवानुपूर्वी १, इन ५ केविना और मिश्रके मिलने पर मिश्रमें १००।

पक्षमें (अथवा) अनंतानुबन्धी ४, नर १, तिर्यंच १, देव १, इन ३ की अनुपूर्वी, एवं ७ विना तथा मिश्रके मिलानेपर 'मिश्रमें' १००।

(३४-३५) सामायिक तथा छेदोस्थापनीय—इन दो चरित्रकी

फिर ओघकी तरह १११, १००, १०४, ८७, ७६, ७२, ६६, ६०, ५६, ५७।५५।

(४३) अवधिदर्शनकी मार्गणामें—गुणस्थान ९, चतुर्थसे १२ वें तक।

सिद्धान्तमें विभंगको भी अवधिदर्शन कहा है, उस दृष्टिसे तो पहले ३ गुणस्थान भी होते हैं। मगर यहां विभंगको अवधि-दर्शन न कहनेसे अवधिज्ञानकी भांति ओघमें १०५।१०६ तिर्यंचकी अनुपूर्वीके विना।

'अविरतिमें' १०३।१०४ आहारद्विकको छोड़कर। फिर ओघ की तरह, पन्नवणाकी अपेक्षासे तिर्यंचकी अनुपूर्वी होनेपर ओघसे १०६ समझना चाहिये।

(४४) केवलदर्शनकी मार्गणामें—अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं। वहां ४२ और १२ का उदय होता है।

(४५-४६-४७) कृष्ण, नील, कापोतलेश्याकी मार्गणा—गुण-स्थान ६: यहां जिननामके विना ओघसे १२१, तथा पहली तीनले-श्यासे-चारगुणस्थानकी अपेक्षासे आहारकद्विक २ के विना ओघसे ११९।

'मिथ्यात्वादिकमें' ११५।११७, १०६।१११, ९८।१००, १०२।१०४, ८७, ८१ ओघमें तरह समझना चाहिये।

(४८) तेजोलेश्याकी मार्गणामें—गुणस्थान ७: यहां सूक्ष्मत्रिक ३, विकलेन्द्रिय ३. नरकत्रिक ३, आतप १, जिननाम १, इन ११ के विना ओघसे १११।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०७।

मिथ्यात्व विना 'सासादनमें' १०६।

अनन्तानुबन्धी ४, स्थावर १, एकेन्द्रिय १, अनुपूर्वी ३, इन ६ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रगुणस्थानमें' ९८।

अनुपूर्वी ३ मिलानेपर, और मिश्रको निकालनेपर तथा सम्यक्त्वको क्षेपण करनेसे 'अविरतिमें' १०१।

अप्रत्याख्यानी ४, अनुपूर्वी ३, वैक्रियद्विक २, देवगति १, देवायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमें' ८७।

'प्रमत्तमें' ८१, 'अप्रमत्तमें' ७६।

(४९) पद्मलेश्याकी मार्गणामें—गुणस्थान ७। जहां स्थावर ४, जाति ४, नरकत्रिक ३, जिननाम १, आतप १, इन १३ के विना ओघमें १०९।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्व' में १०५।

मिथ्यात्वके विना 'सासादनमें' १०४।

अनन्तानुबन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन ७ के विना मिश्रके मिलानेपर 'मिश्रमें' ९८।

अनुपूर्वी ३, सम्यक्त्व १, इन चारोंके मिलानेपर और मिश्रको निकालनेपर 'अविरतिमें' १०१।

अप्रत्याख्यानी ४, अनुपूर्वी ३, देवगति १, देवायु, वैक्रियद्विक २,

दुर्भग १, अनादेय १. अयश १, इन १४ के विना 'देशविरतिमें' ८७। 'प्रमत्तमें' ८१। 'अप्रमत्तमें' ७६।

(५०) शुक्ललेश्याकी मार्गणामें—गुणस्थान १३, यहां स्थावर-चतुष्क ४, नरकत्रिक ३, आतप १, इन १२ के विना ओघसे ११० ।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, जिननाम १, इन ५ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०५।

'मिथ्यात्व' को छोड़कर 'सासादन' में १०४। अनन्तानुवन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन ७ को निकाल कर 'मिश्र' मिलानेसे 'मिश्र' में ९८। 'अविरति' में १०१। 'देशविरति' में ८७।

इसके अगाड़ी ओघकी तरह जानना चाहिये।

(५१) भव्यमार्गणा—गुणस्थान १४, ओघसे. १२२. 'मिथ्यात्व' में ११७। इत्यादि ओघकी तरह।

(५२) अभव्यमार्गणामें—गुणस्थान १।

सम्यक्त्व १, मिश्र १, जिननाम १, आहारकद्विक २; इन ५ के विना ओघसे तथा मिथ्यात्वमें ११७।

(५३) उपशमसम्यक्त्वीकी मार्गणा—गुणस्थान ८, चौथेसे ११ वें तक।

यहां स्थावरचतुष्क ४; जाति ४, अनन्तानुवन्धी ४, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्रमोहिनी १, मिथ्यात्व १, जिननाम १, आहारकद्विक २, आतप १, अनुपूर्वी ४, इन २३ के विना ओघसे ९९।

अविरतिमें भी ९९। तथा उपशमसम्यक्त्वी मरकर अनुतर विमानमें जाता है। वहां वाटमें चलते चौथे गुणस्थानपर

किसीको देवानुपूर्वीका उदय होता है, इस अपेक्षासे ओघमें १०० ।
तथा 'अवरतिमें' भी १०० ।

अप्रत्याख्यानी ४, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु
वैक्रियद्विक २, दुर्भग २, अनादेय १, अयश १, देवानुपूर्वी १, इन
१४ के विना 'देशविरतिमें' ८६, सम्यक्त्वक्षेपण करनेसे ८७ ।

तिर्यंचगति १, तिर्यंच आयु १, नीचगोत्र १, उद्योत १, अप्रत्या-
ख्यानी ४, इन ८ के विना 'प्रमत्तमें' ७९ ।

स्त्यानर्द्धित्रिकके विना 'अप्रमत्तमें' ७६ ।

सम्यक्त्व १, अन्त्य संहनन ३, इन ४ के विना 'अनुपूर्वमें' ७२,
फिर अनुक्रमसे ६६-६०-५९ ।

(५४) क्षायक सम्यक्त्वीकी मार्गणा—गुणस्थान ११, चौथेसे
१४ वें तक ।

इसमें जाति ४, स्थावरचतुष्क ४ अनन्तानुबंधी ४, आतप १,
सम्यक्त्व १, मिश्र १, मिथ्यात्व १, ऋषभनाराचादि संहनन ५, इन
२१ के विना ओघसे १०१ ।

आहारकद्विक २, जिननाम १, इन ३ के विना 'अवरति'
में ९८ ।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियाष्टक ८, नरकानुपूर्वी १, तिर्यंच-
त्रिक ३, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, उद्योत १, इन २० के विना
'देशविरति' में ७८ ।

प्रत्याख्यानी ४, नीचगोत्र १, इन पांचोंको निकाल कर तथा
आहारकद्विक मिलानेसे 'प्रमत्तमें' ७५ ।

स्त्यानर्द्धित्रिक ३, आहारकद्विक २, इन ५ के विना 'अप्रमत्त-गुणस्थानमें' ७० ।

'अपूर्व' में भी ७० ।

हास्यादि ६ के विना 'अनिवृत्ति' में ६४ ।

वेद ३, संज्वलन ३, इन ६ के विना 'सूक्ष्मसम्पराय' में ५८ ।

संज्वलन लोभको छोड़कर 'उपशान्तमोह' में ५७ ।

'क्षीणमोहमें' भी ५७ ।

दो निद्राओंके विना क्षीणमोहके चरम समयमें ५५ ।

'सयोगी गुणस्थानमें' ४२।

'अयोगीमें' १२ ।

(५५) क्षायोपशमिककी मार्गणामें—गुणस्थान ४, चौथेसे सातवें तक ।

मिथ्यात्व १, मिश्र १, जिननाम १, जाति १, स्थावर चतुष्क ४, आतप १, अनन्तानुवन्धी ४, इन १६ के विना १०६ ।

आहारकद्विकके विना 'अविरति' में १०४ । 'देशविरति' में ८७ । 'प्रमत्तमें' ८१, 'अप्रमत्तमें' ७६ । ओघकी तरह ।

(५६) मिश्रमार्गणामें—गुणस्थान एक तीसरा है । उदय १०० का है ।

(५७) सासादन मार्गणामें—गुणस्थान १, दूसरा । १११ का उदय ।

(५८) मिथ्यात्व मार्गणामें—गुणस्थान प्रथम है । यहां आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ५ के विना ११७।

(५९) संज्ञी मार्गणामें—गुणस्थान १४ या १२। यहां स्थावर १, सूक्ष्म १, साधारण १, आतप १, जाति ४, इन ८ के विना ओघसे ११४। और १२ गुणस्थान लें तो जिननामके विना ११३। आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र१, इन ४ के विना 'मिथ्यात्व' में १०९।

अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, इन ३ के विना सासादनमें १०६।

अनन्तानुबन्धी ४, अनुपूर्वी ३, इन ७ के विना मिश्रके मिलाने से 'मिश्र' में १००।

इसके उपरान्त ओघकी तरह जानना चाहिये।

(६०) असंज्ञी मार्गणा—गुणस्थान २।

यहां वैक्रियाष्टक ८, जिननाम १, आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, संहनन १, संस्थान १, सुभग १, आदेय १, शुभ विहायोगति १, उच्चगोत्र १, स्त्री-पुरुष वेद २, इन २९ के विना ओघसे तथा 'मिथ्यात्वमें' ९३।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, उद्योत १, मनुष्यत्रिक ३, मिथ्यात्व १, पराघात १ उच्छ्वास १, सुस्वर १, दुःस्वर १, अशुभ विहायोगति १, इन १४ के विना 'सासादनमें' ७९।

(६१) आहारककी मार्गणा—गुणस्थान १३।

यहां अनुपूर्वी ४ के विना ओघसे ११८।

आहारकद्विक २, जिननाम १, सम्यक्त्व मोहिनी १, मिश्रमोहिनी १, इन पांचोंके विना मिथ्यात्वमें ११३।

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १, मिथ्यात्व १, इन ५ के विना 'सासादन' में १०८।

अनन्तानुवन्धी ४, स्थावर १, जाति ४, इन ६ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १०० प्रकृतिओंका उदय है।

मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व मिला देनेसे 'अविरति' में १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु १, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, इन १३ के विना 'देशविरति' में ८७। इसके उपरान्त औधिक रीतिसे जानना चाहिये।

(६२) अनाहारक मार्गणा—इसमें १—२—४—१३—१४ ये पांच गुणस्थान पाए जाते हैं।

जिसमें औदारिकद्विक २, वैक्रियद्विक २, आहारकद्विक २, संहनन ६, संस्थान ६, विहायोगति १, उपघात १, पराघात १, उच्छ्वास १, आतप १, उद्योत १, प्रत्येक १, साधारण १, सुस्वर दुःस्वर १, मिश्रमोहिनी १, निद्रा ५, इन ३५ के विना ओघसे ८७।

जिननाम १, सम्यक्त्व १, इन २ के विना 'मिथ्यात्वमें' ८५।

सूक्ष्म १, अपर्याप्त १, मिथ्यात्व १, नरकत्रिक ३, इन ६ के विना 'सासादनमें' ७६। ['मिश्र' गुणस्थान अनाहारकको नहीं होता।]

अनन्तानुवन्धी ४, स्थावर १, जाति ४, इन ६ के विना और सम्यक्त्व मोहिनी १, नरकत्रिक ३, इन ४ के मिलानेपर 'अविरति' में ७४।

वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, अगुरुलघु १, निर्माण १, स्थिर

१. अस्थिर १. शुभ १, अशुभ १, मनुष्यगति १, पंचेंद्रियजाति १, जिननाम १. त्रसत्रिक ३. सुभग १, आदेय १, यश १. मनुष्यायु १, वेदनी २. उच्चगोत्र २. इन २५ का तेरहवें सयोगी गुणस्थानमें' केवली समुद्घातके समय तीसरे-चौथे और पांचवें समयमें अनाहारकके उदयसे होता है।

त्रसत्रिक ३, मनुष्यगति १, मनुष्यायु १. उच्चगोत्र १, जिननाम १. दो में से एक वेदनी १, सुभग १. आदेय १. यश १. पंचेंद्रिय जाति १, इन १२ का १४ वें 'गुणस्थान' में उदय होता है।

॥ इति ६२ मार्गणा ॥

इस प्रकार १४८ या १५८ प्रकृतियोंका बंध विवरण कहा है। जिस प्रकार वात-पित्त और कफके हरण करनेवाली वस्तुओंसे बने हुए मोदकका स्वभाव वात आदि दूर करनेका है, उसी तरह किसी कर्मका स्वभाव जीवपर ज्ञानपर आवरण करनेका है। किसी कर्म-का जीवके दर्शनका आवरण करना, किसीका स्वभाव चरित्रका आवरण करना होता है, इस स्वभावको 'प्रकृतिबन्ध' कहते हैं।

(अथ स्थिति बन्ध)

स्थिति बंध किसे कहते हैं ?

जैसे बना हुआ लड्डू महीना, छ महीना या वर्षभर तक एक ही अवस्थामें रहता है, उसी तरह कोई कर्म अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। कोई ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक, कोई अमुक वर्षतक इसीको 'स्थिति-

बन्ध' कहते हैं। अर्थात् जीवके द्वारा ग्रहण किये कर्मपुद्गलोंमें अमुक कालतक निज स्वभावोंको न छोड़ कर जीवके साथ रहनेकी काल-मर्यादाका होना स्थितिबन्ध कहलाता है।

ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २, वेदनीय ३, अन्तराय ४, इन चारों कर्मोंकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट ३० कोड़ाकोड़ी सागर है। अबाधा काल पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३००० वर्ष है।

मोहनीय कर्मकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ७० कोड़ा-कोड़ी सागर। इसका अबाधा काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ७००० वर्ष है।

नामकर्म और गोत्रकर्मकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट २० कोड़ाकोड़ी सागर है। अबाधा काल पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २००० वर्ष है।

आयुष्य कर्मकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३३ सागर। इस कर्मका अबाधा काल नहीं है।

॥ इति स्थिति बंध ॥

(अनुभाग बन्ध)

जीवके द्वारा ग्रहण किये कर्म-पुद्गलोंमें रसके तर-तम भावका अर्थात् फल देनेकी न्यूनाधिक शक्तिका होना अनुभाग बन्ध कह-लाता है। इसको रस-बन्ध, अनुभाव-बंध और अनुभव-बंध भी कहते हैं।

जैसे कुछ लड्डुओंमें मधुर रस अधिक कुछ लड्डूओंमें कम, कुछ मोदकोंमें कटु-रस अधिक, कुछमें कम, इस प्रकार मधुर-कटु आदि रसोंकी न्यूनाधिकता देखी जाती है। उसी प्रकार कुछ कर्म-दलोंमें अशुभ रस अधिक, कुछ कर्म-दलोंमें कम; इस प्रकार विविध प्रकारके अर्थात् तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम शुभ-अशुभ रसोंका कर्म-पुद्गलोंमें बन्धना अर्थात् उत्पन्न होना अनुभाग-बंध या रसबंध कहलाता है।

शुभ कर्मोंका रस ईख-द्राक्षादिके रसके सदृश मीठा होता है। अशुभ कर्मोंका रस नींब आदिके रसके समान कड़ुवा होता है, जिसके अनुभवसे जीव बुरी तरह घबरा उठता है। तीव्र, तीव्रतर आदिको समझनेके लिये दृष्टान्तके रूपमें बतलाया है कि जैसे कोई ईख या नींबका चार-चार सेर रस लेता है, इस रसको स्वाभाविक रस कहना चाहिये। यदि आंचके द्वारा औटा कर चार सेरकी जगह वह तीन सेर रस बच जाय तो उसे तीव्र कहना चाहिये, और फिर औटानेसे दो सेर बच जाय तो तीव्रतर कहना चाहिये, और फिर औटानेसे एक सेर बच जाय तो तीव्रतम कहना चाहिये। ईख या नींबका एक सेर स्वाभाविक रस कोई लेता है और उसमें एक सेर पानी मिलनेसे मन्द रस बन जायगा, दो सेर पानी मिलनेसे मन्दतर रस बनेगा। तीन सेर पानी मिलनेसे मन्दतम रस बनेगा।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म ६ प्रकारसे बांधा जाता है

(१) ज्ञानसे शत्रुता करना, (२) ज्ञानको छिपाना, (३) ज्ञाना-

न्तराय देना, (४) ज्ञानमें दोष निकालना, (५) ज्ञानकी असातना करना, (६) ज्ञानमें विसंवादयोग रखना।

इसे १० प्रकारसे भोगता है

(१) श्रोत्रका आवरण, (२) श्रोत्र विज्ञान आवरण, (३) नेत्र-आवरण, (४) नेत्र-विज्ञान आवरण, (५) घ्राण-आवरण, (६) घ्राण-विज्ञान आवरण, (७) रस-आवरण, (८) रस-विज्ञान आवरण, (९) स्पर्श-आवरण, (१०) स्पर्श-विज्ञान आवरण।

दर्शनावरणीय कर्म ६ प्रकारसे बांधता है

(१) दर्शनसे शत्रुता करना, (२) दर्शनको छिपादेना, (३) दर्शनमें अन्तराय डालना, (४) दर्शनके दोषोंको कहना, (५) दर्शनकी असातना करना, (६) दर्शनमें विसंवादयोग रखना।

इसे नव प्रकारसे भोगा जाता है।

(१) निद्रा-सुखसे जगना, (२) निद्रा निद्रा-जगानेसे जगना, (३) प्रचला-हिलानेसे जगना, (४) प्रचला-प्रचला-चलते चलते सो जाना, (५) स्त्यानर्द्धि-इसमें वासुदेवकासाबल हैं, (६) चक्षुदर्शनावरण. (७) अचक्षुदर्शनावरण, (८) अवधिदर्शनावरण, (९) केवलदर्शनावरण।

वेदनीयकर्म २२ तरहसे बांधा जाता है, जिसमें सातावेदनीय १० प्रकारसे

(१) प्राणकी अनुकम्पा, (२) भूतकी अनुकम्पा, (३) जीवकी

अनुकम्पा, (४) सत्त्वोंकी अनुकम्पा, (५) इन चारोंको दुःख न देना, (६) इन्हें शोकातुर न करना, (७) इन्हें झुरना न पड़े ऐसा वर्त्ताव करना, (८) इन्हें प्रसन्न करना, (९) इन्हें पीटना नहीं, (१०) इन्हें परिताप न देना।

१२ प्रकारसे असातावेदनीय कर्म बांधता है

(१) प्राण, भूत, जीव, सत्त्वोंको उत्कृष्ट दुःख देना, (२) उत्कृष्ट शोकातुर करना, (३) झुराना, (४) अप्रसन्न करना, (५) पीटना, (६) परिताप देना, (७) अधिक दुःख देना, (८) अधिक शोकातुर करना, (९) अधिक झुराना, (१०) अधिक नाराज करना, (११) अधिक पीटना, (१२) अधिक परिताप देना।

८ प्रकारसे सातावेदनीय कर्म भोगा जाता है

(१) मनोज्ञ शब्द, (२) मनोज्ञ रूप, (३) मनोज्ञ गन्ध, (४) मनोज्ञ रस, (५) मनोज्ञ स्पर्श, (६) मनः सुखता, (७) वचन सुखता (८) काय सुखता।

८ प्रकारसे असातावेदनीय कर्म भोगता है

(१) अमनोज्ञ शब्द, (२) अमनोज्ञ रूप, (३) अमनोज्ञ गन्ध, (४) अमनोज्ञ रस, (५) अमनोज्ञ स्पर्श, (६) मनोदुःखता, (७) वचन दुःखता, (८) काय दुःखता।

मोहनीय कर्म ६ प्रकारसे बांधता है

(१) तीव्र क्रोध, (२) तीव्र मान, (३) तीव्र माया, (४) तीव्र लोभ, (५) तीव्र दर्शनमोहनीयता, (६) तीव्र चरित्रमोहनीयता।

मोहनीय कर्म ५ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) सम्यक्त्व वेदनीय, (२) मिथ्यात्व वेदनीय, (३) मिश्र वेद-नीय. (४) कषाय वेदनीय (५) नोकषाय वेदनीय।

आयु कर्म १६ प्रकारसे बांधता है

४ कारणोंसे नरकका आयु बांधा जाता है

(१) महाआरंभ, (२) महापरिग्रह. (३) पंचेन्द्रिय वध. (४) मांस मदिराका आहार।

४ कारणोंसे तिर्यंचका आयु बांधा जाता है

(१) कपट करनेसे, (२) ठगनेसे, (३) झूठ बोलनेसे, (४) तोल-माप न्यूनाधिक रखनेसे।

४ कारणोंसे मनुष्यका आयु बांधा जाता है

(१) सरल और भद्र स्वभाव, (२) विनीत स्वभाव, (३) दयालु स्वभाव, (४) मात्सर्य भावका त्याग।

४ कारणोंसे देवका आयु बांधा जाता है

(१) सराग संयम, (२) श्रावक धर्म पालन, (३) अज्ञान तप करनेसे, (४) अकाम निर्जरा।

४ प्रकारसे आयुकर्म भोगता है

(१) नरकका आयु, (२) तिर्यंचका आयु, (३) मनुष्यका आयु, (४) देवका आयु।

नामकर्म ८ प्रकारसे बांधा जाता है

४ प्रकारसे शुभनाम बांधता है

(१) कायकी सरलता. (२) भावकी सरलता, (३) भाषाकी सरलता, (४) अविसंवाद योग।

अशुभ नामकर्म ४ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) कायकी वक्रता, (२) भावकी वक्रता, (३) भाषाकी वक्रता, (४) विसंवाद योग।

नाम २८ प्रकारसे भोगा जाता है

१४ प्रकारसे शुभनाम भोग्य है, इष्ट शब्द १, इष्ट रूप २, इष्ट गन्ध ३, इष्ट रस ४, इष्ट स्पर्श ५, इष्ट गति ६, इष्ट स्थिति ७, इष्ट लावण्य ८, इष्ट यशःकीर्ति ९, इष्ट उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुषात्कारपराक्रम १०, इष्ट स्वरता ११, कान्त स्वरता १२, प्रिय स्वरता १३, मनोज्ञ स्वरता १४।

अशुभ नामकर्म १४ प्रकारसे भोगा जाता है

अनिष्ट शब्द १, अनिष्ट रूप २, अनिष्ट गन्ध ३, अनिष्ट रस ४, अनिष्ट स्पर्श ५, अनिष्ट गति ६, अनिष्ट स्थिति ७, अनिष्ट लावण्य ८, अनिष्ट यशःकीर्ति ९, अनिष्ट उत्थान, कर्म, वल, वीर्य पुरुषात्कार-पराक्रम १०, हीन-स्वरता ११, दीन-स्वरता १२, अनिष्ट स्वरता १३, अकान्त स्वरता १४।

गोत्रकर्म के दो भेद

(१) ऊंच गोत्र, (२) नीच गोत्र।

ऊंच गोत्र ८ प्रकारसे बांधा जाता है

(१) जातिमद न करनेसे, (२) कुलमद न करनेसे, (३) बलमद न करनेसे, (४) रूपमद न करनेसे, (५) तपमद न करनेसे, (६) लाभमद न करनेसे, (७) ज्ञानमद न करनेसे, (८) ऐश्वर्यमद न करनेसे।

इन्हीं आठों मदोंके करनेसे नीच गोत्र उपार्जन करता है।

आठ प्रकारसे 'नीच गोत्रकर्म' भोगता है

(१) जातिहीन, (२) कुलहीन, (३) बलहीन, (४) रूपहीन, (५) तपहीन, (६) ज्ञानहीन, (७) लाभहीन, (८) ऐश्वर्यहीन।

आठ प्रकारसे 'ऊंच गोत्रकर्म' भोगता है

(१) जाति विशिष्ट, (२) कुल विशिष्ट, (३) बल विशिष्ट, (४) रूप विशिष्ट, (५) तप विशिष्ट, (६) श्रुत विशिष्ट, (७) लाभ विशिष्ट, (८) ऐश्वर्य विशिष्ट।

अन्तराय कर्म ५ प्रकारसे बांधा जाता है

(१) दान करते हुएको रोकना, (२) लाभमें अन्तराय डालना, (३) किसीके भोगोंमें बाधा डालना, (४) उपभोग्य वस्तुमें अन्तराय देना, (५) किसीके बलको बाधा पहुंचाना।

अन्तराय कर्म ५ प्रकारसे भोगा जाता है

(१) दान नहीं दे सकता. (२) लाभसे वंचित रहता है, (३) भोग नहीं पाता, (४) उपभोगसे वंचित रहता है, (५) निर्बल रहता है।

॥ इति रस-बन्ध ॥

अथ प्रदेश-बन्ध

जीवके साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्म-स्कन्धोंका सम्बन्ध होना 'प्रदेशबन्ध' कहलाता है। जैसे कुछ लड्डुओंका परिमाण दो तोलेका, कुछका छटांक. और कुछ लड्डुओंका परिमाण पाव भर होता है, उसी प्रकार कुछ कर्मदलोंमें परमाणुओंकी संख्या अधिक और कुछ कर्मदलोंमें कम. इस प्रकार अलग-अलग प्रकारकी परमाणु-संख्याओंसे युक्त कर्म-दलोंका आत्मासे सम्बन्ध होना प्रदेश-बन्ध कहलाता है। संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्तपरमाणुओंसे बने हुए स्कन्धको जीव ग्रहण नहीं करता; किन्तु अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कन्धको ग्रहण करता है। आठों कर्मोंके अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं, और वे जीवके असंख्य प्रदेशोंपर स्थित हैं। कर्म परमाणु और आत्माके प्रदेश दूध पानीकी तरह आपसमें मिले हुए हैं, तथा अग्नि और लोह-पिंडकी तरह एक रूप होकर स्थित हैं। परन्तु आत्माके आठ रुचक-प्रदेश तो अलिप्त ही हैं।

इन चारों भेदोंके विषयमें एक कारिका भी प्रसिद्ध है।

यतः—

स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः स्थितिः कालावधारणम्। अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः।

भावार्थ—स्वभावको प्रकृति कहते हैं, कालकी मर्यादा स्थिति है, अनुभागको रस और दलोंकी संख्याको प्रदेश कहते हैं।

इति बंध-तत्त्व।

अथ मोक्ष-तत्त्व

मोक्ष किसे कहते हैं ?

सम्पूर्ण कर्मोंका आत्मासे अलग होना मोक्ष कहलाता है। अथवा जो कर्म अपनी स्थिति पूर्ण करके बंध दशाको नष्ट कर लेता है और आत्म गुणोंको निर्मल करता है, वह मोक्ष-पदार्थ है। अथवा ज्ञानी जीव भेद-विज्ञानके आरेसे आत्म-परिणति और कर्म-परिणतिको अलग-अलग करके उन्हें भिन्न-भिन्न जानता है और अनुभवका अभ्यास तथा रत्नत्रय ग्रहण करके ज्ञानावरणादि कर्म और राग-द्वेष आदि विभावका कोष खाली कर देता है। इस रीतिसे वह मोक्षके सन्मुख गतिमान् होता है, और जब केवलज्ञान उसके समीप आता है, तब पूर्ण ज्ञानको पाकर परमात्मा बन जाता है और संसारकी भटकना मिट जाती है। तथा उसे और कुछ करनेको अवशेष न रह जानेके कारण कृत-कृत्य हो जाता है।

सम्यक्ज्ञानसे आत्म-सिद्धि

जैनशास्त्रके ज्ञाता एक उत्कृष्ट जैनने बड़ी सावधानीसे विवेकरूप तेज़ छैनी अपने हृदयमें डालदी, उसने वहां प्रवेश करते ही नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और निजस्वभावका पृथक्करण कर दिया। वहां

उस ज्ञाताने बीचमें पड़ कर एक अज्ञानमय और एक ज्ञानसुधारस-मय ऐसी दो धाराएँ बहती देखीं। तब वह अज्ञानधाराको छोड़कर ज्ञानरूप अमृतसागरमें मग्न हो गया। इतनी भारी सब क्रिया उसने मात्र एक समयमें ही की।

भेद-विज्ञानकी शक्ति

जिस प्रकार लोहेकी छैनी काष्ट आदि वस्तुके दो खण्ड कर देती है, उसी प्रकार चेतन-अचेतनका पृथक्करण भेद-विज्ञानसे होता है।

सुबुद्धिका विलास और उसकी आवश्यकता

सुबुद्धि धर्मरूप फलको धारण करती है, कर्ममलको अपहरण करती है. मन, वचन और काय इन तीनोंके बलोंको मोक्ष-मार्गमें लगाती है। जीभसे स्वाद लिये बिना उज्वल ज्ञानका भोजन खाती है. अपनी अनन्तज्ञानरूप सम्पत्तिको चित्तरूप दर्पणमें देखती है, मर्मकी बात अर्थात् आत्माका स्वरूप बतलाती है, मिथ्यात्वरूप नगरको भस्म करती है, सद्गुरुकी वाणीको ग्रहण करती है चित्तमें स्थिरता पैदा करती है, जगज्जीवोंके लिये हितकर होकर रहती है, त्रिलोकीनाथकी भक्तिमें अनुराग पैदा करती है, मुक्तिकी अभिलाषा उत्पन्न करती है, यह सुबुद्धिका विलास मोक्षके निकट आत्माको ले जाता है। ऐसी बुद्धि सम्यग्ज्ञानीको ही होती है।

सम्यग्ज्ञानीका महत्त्व

भेद-विज्ञानी ज्ञाता पुरुष राजाके समान रूप बनाये हुए है वह अपने आत्मरूप स्वदेशकी रक्षाके अर्थ परिणामोंकी संभाल रखता है,

और आत्म-सत्ता भूमिरूप स्थानको पहिचानता है। शम, संवेद, निर्वेद अनुकम्पा आदिकी सेनाको संभालनेमें प्रवीणता प्राप्त है, साम दाम दंड, भेद आदि कलाओंमें कुशल राजाके समान है; तप, समिति, गुप्ति परिपह, जय, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि अनेक रंग धारण करता है। कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेमें उद्भट वीर है। मायारूप समस्त लोहको चूर करनेमें लोहकी रेतीके समान है। कर्म फंदरूप कांसको जड़से उखाड़नेमें प्रवल किसानके समान है। कर्म-वंधके दुःखोंसे वचानेवाला है, आत्म-पदार्थरूप चांदीको ग्रहण करने और पर-पदार्थरूप धूलको छोड़नेमें रजत-शोधा (सुनार) के समान है, पदार्थको जैसा जानता है वैसा ही मानता है। भाव यह है कि हेयको हेय जानता है और हेय मानता है, और उपादेयको उपादेय जानता है और उपादेय मानता है। इस प्रकार ऐसी उत्तम वातोंका आराधक धाराप्रवाही ज्ञाता है।

ज्ञानी सार्वभौम होता है

ज्ञानी जीव चक्रवर्तीके समान है, क्योंकि चक्रवर्ती छह खंडोंकी पृथ्वीको साधकर विजय पाता है, ज्ञानी भी छहों द्रव्योंपर जीतका डंका वजाता है, चक्रवर्ती शत्रु समूहको नष्ट करता है, ज्ञानी जीव विभाव परिणतिका नाश करता है, चक्रवर्तीके पास नवनिधि होती हैं, ज्ञानी भी श्रवण कीर्तन, चिन्तवन, सेवन, वंदन, ध्यान, लघुता, समता एकता रूप नव भक्ति धारण करते हैं। चक्रवर्तीके पास १४ रत्न होते हैं, ज्ञानियोंको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्रके भेदरूप १४ रत्न

इस प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे—सम्यग्दर्शनके उपशम १, क्षयोपशम २, क्षायक ३, ये तीन. ज्ञानके मति, श्रुति. अवधि, मनःपर्यव केवल, ये पांच। चरित्रके सामायिक छेदोपस्थापनीय. परिहार विशुद्धि. सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात और संयमासंयम इस प्रकार सब मिल कर १४ जान पड़ते हैं। चक्रवर्तीकी पट्टरानी दिग्विजयको जानेके लिये चुटकीसे वज्र-रत्नोंका चूरा करके चौक पूरती है ज्ञानी जीवों-की भी सुबुद्धि पटरानी मोक्ष जानेका शकुन करनेको महामोह रूप वज्रको चूर देती है। चक्रवर्तीके हाथी, घोड़े रथ पैदल आदिक चतुरंगिनी सेना रहती है।ज्ञानी जीवोंके प्रत्यक्ष, परोक्ष. नय, निक्षेप होते हैं। विशेष यह कि—चक्रवर्तीके शरीर होता है. परन्तु ज्ञानी जीव देहसे विरक्त होनेके कारण शरीर रहित होते हैं। इसलिये ज्ञानी जीवोंका पराक्रम चक्रवर्तीके समान है।

ज्ञानी जीवोंका मन्तव्य

आत्म-अनुभवी जीव कहते हैं कि—हमारे अनुभवमें आत्म-स्वभावसे विरुद्ध चिह्नोंका धारक कर्मोंका फंदा हमसे अलग है. वह आप (कर्तृ रूप) अपनेको (कर्मरूप) अपने द्वारा (कारणरूप) अपनेमें (अधिकरण) जानते हैं। द्रव्यकी उत्पाद-व्यय और ध्रुव यह त्रिगुण धाराएँ जो मुझमें वहती हैं, सो ये विकल्प व्यवहार नयसे हैं. मुझसे सर्वथा भिन्न है। मैं तो निश्चय नयका विषय भूत शुद्ध और अनन्त चैतन्य मूर्तिका धारक हूं। मेरा यह सामर्थ्य सदैव एक रूप रहता है, कभी घटता बढ़ता नहीं है।

चेतना लक्षणका स्वरूप

चैतन्य पदार्थ एकरूप ही है, पर दर्शनगुणको निराकार(१) चेतना और ज्ञान गुणको साकार(२) चेतना कहते हैं। अतः ये सामान्य और विशेष दोनों एक चैतन्य ही के विकल्प हैं। एक ही द्रव्यमें रहते हैं, वैशेषिक आदि मतवाले आत्मामें चैतन्यगुण नहीं मानते हैं। अतः उनसे जैन मतवालोंका कहना है कि—चेतनाका अभाव माननेसे तीन दोष पैदा होते हैं, प्रथम तो लक्षणका नाश होता है। दूसरे लक्षणका नाश होनेसे सत्ताका नाश होता है, तीसरे सत्ताका नाश होनेसे मूल वस्तु ही का नाश होता है, अतः जीव द्रव्यका स्वरूप जाननेके लिये चैतन्य ही का अवलम्बन है, और आत्माका लक्षण चेतना है, और आत्मा सत्तामें है, क्योंकि सत्ता धर्मके विना आत्म-पदार्थ सिद्ध नहीं होता, और अपनी सत्ता प्रमाण वस्तु है, और वह द्रव्यकी अपेक्षा तीनोंमें भेद नहीं रखती, एक ही है।

(१-२) पदार्थको जाननेके पहले पदार्थके अस्तित्वका जो किंचित भान होता है वह दर्शन है, दर्शन यह नहीं जानता कि—पदार्थ किस आकार व रंगका है, वह तो सामान्य अस्तित्वमात्र जानता है, इसीसे दर्शनगुण निराकार और सामान्य है, इसमें महासत्ता अर्थात सामान्य सत्ताका प्रतिभास होता है, आकार रंग आदिका जानना ज्ञान है, इससे ज्ञान साकार है, सविकल्प है, विशेष जानना है, इसमें अवान्तर सत्ता यानी विशेष सत्ताका प्रतिभास होता है।

आत्मा नित्य है

जिस प्रकार सुनारके द्वारा घड़े जानेपर सोना गहनेके रूपमें हो जाता है, परन्तु गलानेसे फिर सुवर्ण ही कहलाता है, उसी प्रकार यह जीव अजीवरूप कर्मके निमित्तसे नाना वेष (पर्याय) धारण करता है, परन्तु अन्य रूप नहीं हो जाता, क्योंकि चैतन्यगुण कहीं चला नहीं जाता। इसी कारण जीवको सब अवस्थाओंमें मुक्त और ब्रह्म कहते हैं। जिस प्रकार नट अनेक स्वांग बनाता है और उन स्वांगोंके तमाशे देखकर लोग कौतूहल समझते हैं. परन्तु वह नट अपने असली रूपसे कृत्रिम किये हुए वेषको भिन्न जानता है, उसी प्रकार यह नटरूप चेतन राजा परद्रव्यके निमित्तसे अनेक विभाव पर्यायोंको प्राप्त होता है, परन्तु जब अन्तरंग दृष्टि खोलकर अपने सत्य रूपको देखता है, तब अन्य अवस्थाओंको अपनी न मान कर अपनेको पूर्णब्रह्म मानता है। अतः जिसमें चैतन्य भाव है वह चिदात्मा है, और जिसमें अन्यभाव है वह और कुछ है अर्थात् अनात्मा है, चैतन्यभाव उपादेय है और परद्रव्योंके भावपर हैं—त्यागने योग्य हैं।

मोक्षमार्गका साधक

जिनके घटमें सुबुद्धिका उदय हुआ है, जो भोगोंसे सदैव विरक्त रहते हैं। जिन्होंने शरीरादि परद्रव्योंसे ममत्व हटाया है, जो राग-द्वेष आदि भावोंसे रहित हैं। जो कभी घर और सम्पत्ति आदिमें लीन नहीं होते, जो सदा अपने आत्माको सर्वाङ्ग शुद्ध

विचारते हैं, जिनके मनमें कभी आकुलता व्याप्त नहीं होती वे ही जीव त्रैलोक्यमें मोक्ष मार्गके साधक हैं, तब फिर वे चाहे घरमें रहें या वनमें।

मोक्षकी समीपता

जो सदा यह विचारते हैं कि — मेरा आत्म-पदार्थ चैतन्य स्वरूप है: अखेद्य, अभेद्य, शुद्ध और पवित्र है, जो राग, द्वेष और मोहको पुद्गलका नाटक समझता है। जो भोग सामग्रीके संयोग और वियोगकी आपत्तियोंको देखकर कहते हैं कि—ये कर्मजनित हैं, इसमें हमारा कुछ नहीं है, ऐसा अनुभव जिन्हें सदा रहता है, उनके समीपमें ही मोक्ष है।

साधु और चोरकी पहिचान

लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि—जो दूसरेके धनको हर लेता है उसे अज्ञानी, चोर तथा डाकू कहते हैं, और वह अपराधी दण्डनीय होता है, और जो अपने धनको बर्तता है, वह शाह, महाजन और समझदार कहलाता है, उनकी प्रशंसा की जाती है। इसी प्रकार जो जीव परद्रव्य अर्थात शरीर और शरीर सम्बन्धी चेतन पदार्थोंको अपना मानता है या उनमें लीन होता है वह मिथ्यात्वी है, वही संसारके क्लेश पाता है, और जो निजात्माको अपना मानता है उसीका अनुभव करता है, वह ज्ञानी है, वह मोक्षका आनन्द प्राप्त करता है।

द्रव्य और सत्ता

जो पर्यायोंसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, परन्तु स्वरूपसे

स्थिर रहता है, उसे द्रव्य कहते हैं, और द्रव्यके क्षेत्रावगाहको सत्ता कहते हैं।

षट्द्रव्योंकी सत्ताका स्वरूप

आकाश द्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोकालोकमें है, धर्म द्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोक-प्रमाण है, अधर्म द्रव्य भी एक है उसकी सत्ता लोक प्रमाण है कालके अणु असंख्यात हैं उसकी सत्ता असंख्यात है. पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं उसकी सत्ता अनन्तानन्त है. जीवद्रव्य भी अनन्तानन्त हैं उनकी सत्ता भी अनन्तानन्त है। इन छहों द्रव्योंकी सत्ताएँ जुदी जुदी हैं, कोई सत्ता किसीसे मिलती जुलती नहीं, और न एक मेल होती हैं। निश्चयनयसे कोई किसीके आधीन नहीं सब स्वाधीन हैं और यह क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है। ऊपर कहे हुए ही छह द्रव्य हैं. इन्हींसे जगत् उत्पन्न है, इन छहों द्रव्योंमें ५ अचेतन हैं. एक चेतन द्रव्य ज्ञानमय है, किसीको अनन्त सत्ता किसीसे कभी मिलती नहीं है। प्रत्येक सत्तामें अनन्त गुण समूह हैं, और अनन्त अवस्थाएँ हैं, इस प्रकार एकमें अनेक जानना योग्य है, यही स्याद्वाद है, यही सत्पुरुषोंका अखण्ड कथन है. यही आनन्द वर्धक है, और यही ज्ञान मोक्षका कारण है। क्योंकि जिस प्रकार दधिके मथनेमें घीकी सत्ता साधी जाती है, औषधियोंकी हिकमतमें रसकी सत्ता है. शास्त्रोंमें जहां तहां सत्ताहीका कथन है, ज्ञानका सूर्य सत्तामें है, अमृतका पुंज सत्तामें है, सत्ताका छुपाना सांझकी सन्ध्याके समान है, और सत्ताको

प्रधानता देना संवरकी सन्ध्याके समान है। सत्ताका स्वरूप ही मोक्ष है, सत्ताका भुलाना ही जन्म मरणादि दोषरूप संसार है, अपनी आत्म सत्ताका उल्लंघन करनेसे चतुर्गतिमें भटकना पड़ता है। जो आत्म सत्ताके अनुभवमें विराजमान है वही श्रेष्ठ पुरुष है. और जो आत्मसत्ताको छोड़ कर अन्यकी सत्ताको ग्रहण करता है वही चोर और दस्यु है।

निर्विकल्प शुद्ध सत्ता

जिसमें लौकिक रीतिओंकी न विधि है न निषेध है, न पाप पुण्यका क्लेश है, न क्रियाकी मनाही है. न राग-द्वेष है, न बंध मोक्ष है, न स्वामी है न सेवक है, न ऊंच नीचका ही कोई भेद है, न हो कुलाचार है, न हार जीत है, न गुरु है न शिष्य है, न चलना फिरना है, न वर्णाश्रम है, न किसीका शरण है। ऐसी शुद्ध सत्ता अनुभव रूप भूमिपर पाई जाती है, मगर जिसके हृदयमें समता नहीं है, जो सदा शरीर आदि परपदार्थोंमें मग्न ही रहता है तथा अपने आत्माको नहीं जानता, वह जीव निरन्तर अपराधी है, अपने आत्म स्वरूपको न जानने वाला अपराधी जीव मिथ्यात्वी है. वह अपनी आत्माका हिंसक है, हृदयका अन्धा है, वह शरीर आदि पर पदार्थोंको आत्मा मानता है, और कर्मबन्धको बढ़ाता है, आत्मज्ञानके विना उसका तप आचरण मिथ्या है, उसकी मोक्ष सुखकी आशा झूठी है, ईश्वरको जाने विना ईश्वरकी शक्ति अथवा दासत्व मिथ्या है।

मिथ्यात्वकी विपरीत वृत्ति

सोना चांदी जो कि पहाड़ोंकी मिट्टी है उन्हें निज सम्पत्ति कहता है, शुभ क्रियाको अमृत मानता है और ज्ञानको विष जानता है। अपने आत्मरूपको ग्रहण नहीं करता। शरीरादिको आत्मा मानता है, सातावेदनीय जनित लौकिक सुखमें आनन्द मानता है, और असाताके उदयको आपत् कहता है, क्रोधकी तलवार ले रक्खी है, मानकी मदिरा पीकर बैठा है, मनमें मायाकी वक्रता है, और लोभके कुचक्रमें पड़ा हुआ है। इस भांति अचेतनकी संगतिसे चिद्रूप आत्मा सत्यसे परांमुख होकर असत्यमें ही उलझा हुआ है। संसार-में भूत, वर्तमान और भविष्यत कालका धारा प्रवाह चक्र चल रहा है उसे कहता है कि मेरा दिन, मेरी रात, मेरी घड़ी, मेरा पहर है, कूड़े किरकटका ढेर एकत्र करता है और कहता है कि यह मेरा मकान है जिस पृथ्वी-खण्ड पर निवास करके रहता है उसे अपना नगर बताता है, इस प्रकार अचेतनकी संगतिसे चिद्रूप आत्मा सत्यसे परांमुख होकर असत्यमें उलझ रहा है।

समदृष्टिका सद्विचार

जिन जीवोंकी कुमति नष्ट हो गई है, जिनके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश है, जिन्हें आत्मस्वरूपकी पहिचान है वे ही निरपराधी और श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जिनकी धर्मध्यानरूप अग्निमें संशय, विमोह, विभ्रम ये तीनों वृक्ष जल गये हैं, जिनकी सुदृष्टिके सन्मुख उदय रूपी कुत्ते भौंकते २ चले जाते हैं, वे ज्ञानरूपी हाथी पर सवार हैं जिससे कर्म

सूक्ष्मत्रिक ३, आतप १. मिथ्यात्व १, नरकानुपूर्वी १, इन ६ के विना सासादनमें १११।

अनंतानुवन्धी ४, स्थावर १, जाति ४, अनुपूर्वी ३, इन १२ के विना मिश्रको मिलानेसे मिश्रगुणस्थानमें १०० का उदय।

अनुपूर्वी ४, सम्यक्त्व १, इन पांचोंको मिला कर मिश्रको निकालनेसे 'अविरतिमें' १०४।

(४१) चक्षुदर्शनकी मार्गणामें—गुणस्थान १२। वहां जाति ३ स्थावर चतुष्क ४, जिननाम १, आतप, अनुपूर्वी ४, इन १३ के विना ओघसे १०८।

आहारकद्विक २, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' १०५।

मिथ्यात्वके विना 'सासादनमें' १०४।

अनन्तानुवन्धी ४, चतुरिन्द्रिय जाति १, इन ५ के विना और मिश्रको मिलानेसे 'मिश्रमें' १००।

मिश्रको निकालकर सम्यक्त्व मिलानेसे 'अविरतिमें' १००।

अप्रत्याख्यानी ४, वैक्रियद्विक २, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, देवगति १, देवायु १, नरकगति १, नरकायु १, इन १३ के विना 'देशविरतिमें' ८७। इसके अनन्तरको ओघकी तरह जानना चाहिये।

(४२) चक्षुदर्शनकी मार्गणामें—गुणस्थान १२, जिननामके विना ओघसे १२१।

आहारकद्विक, सम्यक्त्व १, मिश्र १, इन ४ के विना 'मिथ्यात्वमें' ११७।

मगर जहां शुभ-अशुभ प्रवृत्ति रूप प्रमाद नहीं रहता है, वहां स्वयं-को अपना ही अवलम्बन अर्थात् शुद्धोपयोग होता है, इससे स्पष्ट है कि प्रमादकी उत्पत्ति मोक्ष मार्गमें वाधक है, और जो मुनि प्रमादयुक्त होते हैं, वे गेंदकी तरह नीचेसे ऊपरको चढ़ते हैं और फिर नीचे गिरते हैं, और जो प्रमादको छोड़कर स्वस्वरूपमें सावधान होते हैं, उनकी आत्म-दृष्टिमें मोक्ष विल्कुल पास ही दिखता है। साधु दशामें छठवां गुणस्थान प्रमत्त मुनिका है और छठवेंसे सातवेंमें और सातवेंसे छठवेंमें असंख्यात वार चढ़ना गिरना होता है। जब तक हृदयमें प्रमाद रहता है तब तक जीव पराधीन रहता है, और जब प्रमादकी शक्ति नष्ट हो जाती है तब शुद्ध अनुभवका उदय होता है। अतः प्रमाद संसारका कारण है और अनुभव मोक्षका कारण है, प्रमादी जीव संसारकी ओर देखते हैं और अप्रमादी जीव मोक्षकी ओर देखते हैं। जो जीव प्रमादी और आलसी हैं, जिनके चित्तमें अनेक विकल्प उठते हैं, और जो आत्म-अनुभवमें शिथिल हैं, उनसे स्वरूपाचरण बहुत दूर रहता है। जो जीव प्रमाद सहित और अनुभवमें शिथिल हैं, वे शरीर आदिमें अहंबुद्धि करते हैं और जो निर्विकल्प अनुभवमें रहते हैं उनके चित्तमें समता रस सदा भरा रहता है। जो महामुनि विकल्प रहित हैं, अनुभव और शुद्ध ज्ञान-दर्शन सहित हैं, वे थोड़े ही समयमें कर्म रहित होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

ज्ञानमें सब जीव एक प्रकारके भासते हैं

जैसे पहाड़पर चढ़े हुए मनुष्यको नीचेका मनुष्य छोटा दीखता

है, और नीचेके मनुष्यको पहाड़पर चढ़ा हुआ मनुष्य छोटा दीख पड़ता है। पर जब वह नीचे आता है तब दोनोंका भ्रम हट जाता है और विषमता मिट जाती है, उसी प्रकार ऊंचा मस्तक रखनेवाले अभिमानी मनुष्यको सब मनुष्य तुच्छ दीखते हैं, और सबको वह अभिमानी तुच्छ दीखता है, परन्तु जब ज्ञानका उदय होता है तब मान कषाय गल जानेसे समता प्रगट होती है, ज्ञानमें कोई छोटा बड़ा नहीं दीखता, सब जीव समान भासते हैं।

अभिमानी जीवकी दशा

जो कर्मोंका तीव्र बंध बांधे हुए हैं, गुणोंका मर्म न जानकर दोषको ही गुण समझते हैं। अत्यन्त अनुचित और पापमय मार्ग ग्रहण करते हैं। नम्र और विनीत चित्त नहीं होता, धूपसे भी अधिक गर्म रहते हैं, और इन्द्रिय ज्ञानहीमें भूले रहते हैं। संसारको दिखानेके लिये एक आसनसे बैठते हैं या खड़े रहते हैं, मौन भी रखते हैं, महन्त समझकर कोई उन्हें नमस्कार करे तो उत्तरके लिये अंग तक नहीं हिलाते, मानो पत्थरकी दिवारसी है, देखनेमें भयंकर हैं, संसार मार्गके बढ़ाने वाले हैं, मायाचरणमें परिपाक दशा प्राप्त हैं, ऐसे जीव अभिमानी होते हैं, और उनकी ऐसी खराब दशा होती है।

ज्ञानी जीवोंकी दशा

जो मनमें सदैव धैर्य रखने वाले हैं, संसार समुद्रसे पार होनेवाले हैं, सब प्रकारके भयोंको नष्ट करने वाले हैं, महायोद्धा समान धर्ममें

उत्साहित रहते हैं, विपय वासनाओंको जलाते रहते हैं निरन्तर आत्महितका चिन्तवन करते रहते हैं, सुख शान्तिकी गतिमें कदम चढ़ाते रहते हैं, सद्गुणोंकी ज्योतिसे प्रकाशित हैं, आत्मस्वरूपमें रुचि रखते हैं, सब नयोंका रहस्य जानते हैं, क्षमावान तो ऐसे हैं कि सबके छोटे भाई बन कर रहते हैं, और उनकी खरी खोटी बातें सहते हैं. मनकी कुटिलताको छोड़कर सरल चित्त हो रहे हैं, दुःख और सन्तापके राहमें कभी नहीं चलते। सदा आत्म-स्वरूपमें विश्राम किया करते हैं, ऐसे पुरुप महा-अनुभवी और ज्ञानी कहलाते हैं।

सम्यक्त्वी जीवोंकी महिमा

जहां शुभाचारकी प्रवृत्ति नहीं है वहां निर्विकल्प अनुभव पद रहता है, जो वाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह छोड़कर मन, वचन, कायके तीनों योगोंका निग्रह करके बंध परम्पराका संवर करते हैं, जिन्हें राग, द्वेप, मोह नहीं रह गया है, वे साक्षात् मोक्ष मार्गके सन्मुख रहते हैं, जो पूर्व बंधके उदयमें ममत्व नहीं करते पुण्य-पाप-को समान जानते हैं, भीतर और वाहरमें निर्विकार रहते हैं. जिनके सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र उन्नतिपर हैं जिनकी दशा स्वाभाविकतया ऐसी है, उन्हें आत्म-स्वरूपकी दुविधा क्योंकर हो सकती है ? वे मुनि क्षपक श्रेणीपर चढ़कर केवली भगवान् बन जाते हैं. जो इस प्रकार आठों कर्मोंको क्षय करके तथा कर्म वनको जलाकर परिपूर्ण हो गये हैं, उनकी महिमाको जो जानता है उन्हें पुनः पुनः नमस्कार है।

रूपी धूल उन तक नहीं पहुंचती, जिनके विचारमें शास्त्रज्ञानकी तरङ्गें उठती हैं, जो सिद्धान्तमें प्रवीण हैं, जो आध्यात्मिक विद्याके पारगामी हैं। वे ही मोक्ष मार्गी हैं - वे ही पवित्र हैं। सदा आत्म अनुभवका रस दृढ़ करते हैं और आत्म अनुभवका पाठही पढ़ते हैं। जिनकी बुद्धि गुण ग्रहण करनेमें चिमटीके समान है, विकथा सुनने के लिये जिनके कान बहरे हैं, जिनका चित्त निष्कपट है, जो मृदु भाषण करते हैं, जिनकी क्रोधादि रहित सौम्य दृष्टि है, स्वभावके ऐसे कोमल हैं मानो मोमसे इनकी रचना की गई है, जिन्हें आत्मध्यानकी शक्ति प्रगट हो गई है, और परम समाधि साधनेको जिनका चित्त उत्साहित रहता है, वे ही मोक्षमार्गी हैं, वे ही पवित्र हैं, सदा आत्मा ही की रटन लगी रहती है।

आत्म-समाधि

आत्मा और आत्मानुभव ये कहने सुननेको दो हैं, जब आत्म-ध्यान प्रगट हो जाता है, तब आत्म-रसिक और आत्म रसका कोई भेद नहीं रह जाता। वह आत्म-प्रेमी जीव आत्म-ज्ञानमें आनन्द मानता है। मान छोड़ कर नमस्कार करता है, स्तवना करता है, उपदेश सुनता है, ध्यान करता है, जाप जपता है, पढ़ता है, पढ़ाता है, व्याख्यान देता है, इसकी ये शुभ क्रियाएं हैं, इन क्रियाओंके करते-करते जहां आत्माका शुद्ध अनुभव हो जाता है, वहां शुभोप-योग नहीं रहता। शुभ क्रिया कर्मबंधका कारण है और मोक्षकी प्राप्ति आत्म-अनुभवसे है, और जब मुनिराज प्रमाद दशामें रहते हैं तब उन्हें प्रमाद दशामें शुभ क्रियाका अवलम्बन लेना ही पड़ता है।

रहेंगे, वर्त्तमानकालमें जाते हैं. मोक्ष सत् अर्थात् विद्यमान है क्योंकि उसका वाचक एक पद है, आकाशके फूलकी तरह वह अविद्यमान नहीं है, मार्गणाओंद्वारा मोक्षकी प्ररूपणा [विचार] किया जाता है, एक पदका वाच्य अर्थ अवश्य होता है, जैसे घट-पट आदि एक पद-वाले शब्द हैं. उनका वाच्य-अर्थ भी विद्यमान है, इसी प्रकार दो पदवाले शब्दोंके भी वाच्य-अर्थ होते हैं, और नहीं भी होते। जैसे-'गोश्रृंग' 'महिषश्रृंग' ये शब्द दो दो पदोंसे बनते हैं इनका वाच्यार्थ 'गायका सींग भैंसका सींग' प्रसिद्ध है, परन्तु 'खरश्रृंग' और 'अश्व-श्रृंग' ये दोनों शब्द भी दो दो पदोंसे बनाये गये हैं. परन्तु इनके वाच्यार्थ 'गधेके सींग' 'घोड़ेके सींग' अविद्यमान हैं। इसी प्रकार मोक्ष शब्द एक पद युक्त होनेपर भी उसका वाच्यार्थ भी घट पट आदि पदार्थोंकी भांति विद्यमान है, इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे 'मोक्ष' है यह बात सिद्ध होती है।

किन मार्गणाओंसे मोक्ष होता है ?

मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, भवसिद्धिक, संज्ञी, यथा-ख्यातचरित्र, क्षायिक-सम्यक्त्व, अनाहार, केवलदर्शन और केवलज्ञान इन दश मार्गणाओं द्वारा मोक्ष होता है शेष मार्गणाओं द्वारा नहीं।

मार्गणा किसे कहते हैं ?

सम्पूर्ण जीवद्रव्यका जिसके द्वारा विचार किया जाय उसे 'मार्गणा' कहते हैं। मार्गणाओंके मूलभूत १४ भेद हैं और उत्तर भेद ६२ हैं जो बंध तत्त्वमें कह आये हैं।

१—गतिमार्गणा—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार गतिओंमेंसे सिर्फ मनुष्यगतिमें मोक्षकी साधना कर सकता है अन्य तीन गतिओंसे नहीं।

२—इन्द्रियमार्गणा—इसके पांच भेद हैं, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इनमेंसे पंचेन्द्रियद्वारसे मोक्ष होता है, अर्थात् पांचोंइन्द्रियें पाया हुआ जीव ही मोक्ष जाता है।

३—कायमार्गणा—के ६ भेद हैं, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। इनमेंसे त्रसकायके पर्यायके जीव मोक्ष जाते हैं, अन्यकायके नहीं।

४—भवसिद्धिक मार्गणा—के दो भेद हैं, भव्य और अभव्य। इनमेंसे भव्य जीव मोक्ष जाते हैं, अभव्य नहीं।

५—संज्ञीमार्गणा- के दो भेद हैं, संज्ञीमार्गणा और असंज्ञी-मार्गणा। इनमेंसे संज्ञीजीव मोक्ष जाते हैं, असंज्ञी नहीं।

६—चरित्रमार्गणा—के ५ भेद हैं। सामायिक, छेदोपस्थाप-नीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-सम्पराय और यथाख्यात, इनमेंसे यथाख्यात चरित्रका लाभ होनेपर जीव मोक्ष जाता है, अन्य चरित्रसे नहीं।

७—सम्यक्त्व मार्गणाके—पांच भेद हैं; औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक। इनमेंसे क्षायिक सम्यक्त्वका लाभ होनेपर जीवको मोक्ष प्राप्त होता है, अन्य सम्यक्त्वसे नहीं।

८—अनाहार मार्गणा—के दो भेद हैं; आहारक और अनाहा-रक। इनमेंसे अनाहारक जीवको मोक्ष होता है, आहारक अर्थात आहार करनेवालेको नहीं।

९—ज्ञान मार्गणा—के ५ भेद। मति, श्रुति, अवधि. मनः पर्यव और केवलज्ञान। इनमेंसे केवलज्ञान होनेपर मोक्ष होता है, अन्य ज्ञानसे नहीं।

१०—दर्शन मार्गणा—के चार भेद हैं; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। इनमेंसे केवलदर्शन होनेसे मोक्ष होता है अन्य दर्शनसे नहीं।

द्रव्यप्रमाण (२)

द्रव्य प्रमाणके विचारसे सिद्धोंके जीवद्रव्य अनन्त हैं। अभव्य जीवोंसे सिद्ध भगवान अनन्तगुण अधिक हैं, और भव्य जीवोंके अनन्तवें भागमें हैं, अर्थात् संसारी जीवोंसे सिद्ध अनन्तगुण न्यून-तर है।

क्षेत्र द्वार (३)

लोकाकाशके असंख्यातवें भागमें एक सिद्ध रहता है, इसी प्रकार अनन्त सिद्ध भी लोकाकाशके असंख्यातवें भागमें रहते हैं. परन्तु एक सिद्धसे व्याप्त क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्त सिद्धोंसे व्याप्त क्षेत्र-का परिमाण अधिक है।

सिद्ध परमात्मा सिद्धालयके ऊपरी भागमें विराजमान हैं, सिद्ध-शिला ४५ लक्ष योजनकी लम्बी और चौड़ी है, मध्यमें आठ योजन-की मोटी दलदार है. वह अन्तमें किनारेपर आकर मक्खीकी पांख जैसी पतली रह गई है। इसका आकार औंधी छत्रीकी तरह है। श्वेतवर्ण मय है। १४२३०२४९ योजनसे कुछ अधिकको परिधि

है। जिसके एक योजन ऊपर अलोक है, उसी योजनके ऊपरके कोशके छठवें भागमें और लोकके अग्र भागमें अनन्तसिद्ध भगवान् विराजमान हैं।

स्पर्शनाद्वार (४)

जीव कर्मसे मुक्त होकर जिस आकाश-क्षेत्रमें रहते हैं, उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं। उस सिद्धाकाश क्षेत्रका प्रमाण ४५०००० योजन लम्बा है, उतना ही चौड़ा है। उस क्षेत्रमें विद्यमान सिद्धोंके नीचे ऊपर और चारों ओर आकाश-प्रदेश लगे हुए हैं। इसलिये क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्ध जीवोंकी स्पर्शना अधिक है।

कालद्वार (५)

एक सिद्धकी अपेक्षासे काल, सादि अनन्त है, जिस समय जो जीव मोक्ष गया वह काल उस जीवके लिये मोक्षका आदि है फिर उस जीवका मोक्षगतिसे पतन नहीं होता अतः अनन्त है।

सब सिद्धोंकी अपेक्षासे विचारें तो मोक्षकाल, अनादि अनन्त है; क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि—अमुक जीव सबसे प्रथम मुक्त हुआ अर्थात् उससे पहले कोई जीव मुक्त न था।

अन्तरद्वार (६)

अन्तर उसे कहते हैं "यदि सिद्ध अपनी अवस्थासे पतित होकर दूसरी योनि धारण करनेके बाद फिर सिद्ध प्राप्त करे।" मगर यह हो नहीं सकता। क्योंकि सिद्धगतिके अतिरिक्त अन्यगति पानेका कोई निमित्त ही नहीं रह गया है। इसलिये कथित अन्तर मोक्षमें

नहीं है, अथवा सिद्धोंमें परस्पर क्षेत्रकृत अन्तर नहीं है; क्योंकि जहां एक सिद्ध है, वहीं अनन्त सिद्ध हैं, कालकृत और क्षेत्रकृत दोनों अन्तर सिद्धोंमें नहीं हैं, केवलज्ञान, केवलदर्शन सम्बन्धी अन्तर सिद्धोंमें कुछ भी नहीं है।

भागद्वार (७)

अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें यदि कोई व्यक्ति ज्ञानीसे सिद्धोंके विषयमें प्रश्न करे तब ज्ञानी यही उत्तर देगा कि—"असंख्य निगोद हैं, और प्रत्येक निगोदमें जीवोंकी संख्या अनन्त है, उनमेंसे एक निगोदका अनन्तवां भाग मोक्ष पा चुका" इसे भाग द्वार कहते हैं।

भावद्वार (८)

क्षायिक और पारिणामिक भेदसे सिद्धोंमें दो भाव होते हैं, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, चरित्र, केवलज्ञानके भेदोंसे क्षायिकके ६ भेद हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शनके अतिरिक्त सात क्षायिक भाव सिद्धोंमें नहीं होते। इसी प्रकारसे जीवितव्यको छोड़कर अन्य दो पारिणामिक भाव भी नहीं होते।

क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

किसी कर्मके क्षयसे होनेवाले भावको क्षायिकभाव कहते हैं।

पारिणामिकभाव कौनसे हैं ?

भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवितव्य ये तीन पारिणामिक-भाव हैं।

सिद्धोंमें ज्ञान, दर्शन, चरित्र और वीर्य रूप ४ भाव प्राण पाये जाते हैं। ५ इन्द्रिएं, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये १० दश द्रव्य प्राण हैं। जो सिद्धोंमें नहीं होते। उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखने वाले जीवके स्वभाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्वद्वार (६)

नपुंसक सिद्ध सबसे कम होते हैं, उससे स्त्री सिद्ध संख्यातगुण अधिक हैं, स्त्रीलिंग सिद्धसे पुरुषलिंग सिद्ध संख्यातगुण अधिक हैं। इस प्रकार यह संक्षेपसे नव तत्त्व विवरण कहा गया है।

नपुंसक दो प्रकारके होते हैं, जन्मसिद्ध और कृत्रिम। जन्म-सिद्ध नपुंसकोंको मोक्ष नहीं होता। कृत्रिम नपुंसक एक समयमें उत्कृष्ट १० तक मोक्ष जाते हैं, एक समयमें उत्कृष्ट २० स्त्रिएं मोक्ष जाती हैं, और पुरुष एक समयमें उत्कृष्ट १०८ तक मोक्ष जाते हैं।

यह सब द्रव्य लिंगकी अपेक्षा कहा गया है, भावलिंगकी अपेक्षा से नहीं। क्योंकि भावलिंगी (सवेदी) जीव कभी सिद्ध नहीं होता। वास्तवमें तीनों लिंगोंको क्षय करके ही जीव सिद्ध पद पाते हैं।

यदि जीव निरन्तर सिद्ध होते रहें तो आठ समय तक इस प्रकार सिद्ध होते हैं।

(१) प्रथम समयमें १०८, (२) दूसरे समयमें १०२, (३) तीसरे समयमें ९६, (४) चौथे समयमें ८४, (५) पांचवें समयमें ७२, (६)

छठवें समयमें ६०, (७) सातवें समयमें ४८, (८) आठवें समयमें ३२ फिर नववें समयमें अवश्य ही विरह हो जायगा, और वह विरह भी जघन्य एक समय मात्रका होता है और उत्कृष्ट ६ मास तक रहता है। क्या सिद्धोंकी अवगाहना भी होती है ? हां क्यों नहीं।

जघन्य १ हाथ आठ अंगुल, मध्यम ४ हाथ सोलह अंगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अंगुल प्रमाण सिद्धोंकी अवगाहना होती है।

सम्यक्त्वका परिणाम

यदि मात्र अन्तमुहूर्त तक जिस जीवका परिणाम सम्यक्त्वरूप हो गया हो, उस जीवको अर्धपुद्गल परावर्त तक संसारमें भ्रमण करना शेप रहेगा। तत्पश्चात् अवश्य मोक्ष जायगा।

यह काल परिणाम उस जीवके लिये कहा गया है, जिसने बहुतसी आशातनाकी हों, या करने वाला हो। शुद्ध सम्यक्त्वका आराधक जीव तो उसी जन्मसे या तीसरे जन्मसे तथा कोई ७-८ जन्मसे मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी व्यतीत होने पर एक 'पुद्गल परावर्तन' होता है। इस प्रकार अनन्त पुद्गल परावर्तन पहले हो चुके हैं तथा अनन्तगुण भविष्यमें होंगे।

सिद्ध १५ प्रकारसे होते हैं

(१) तीर्थंकर होकर जो मोक्ष प्राप्त करते हैं वे 'जिन-तीर्थंकर-सिद्ध' कहलाते हैं, ऋषभ-महावीर आदि।

मोक्षप्राप्तिका क्रम

आत्मामें शुद्धताका अंकुर प्रगट हुआ है, मिथ्यात्त्व जड़-मूलसे हट गया है, शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान क्रमशः ज्ञानका उदय बढ़ा है, केवलज्ञानका प्रकाश हुआ है, आत्माका नित्य और पूर्ण आनन्दमय स्वभाव भासने लगा है, मनुष्यकी आयु और कर्मस्थिति पूर्ण हो गई है। मनुष्यकी गतिका अभाव हो गया है, और पूर्ण परमात्मा बना। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठतम महिमा प्राप्त करके पानीकी बूंदसे समुद्र होनेके समान अविचल, अखंड, निर्भय और अक्षय जीव पदार्थ संसारमें जयवान् हो जाता है, और ज्ञानावरणीय कर्मके अभावसे केवलज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मके अभावसे केवलदर्शन, वेदनीय कर्मके अभावसे निरावाधता, मोहनीय कर्मके अभावसे अटल अवगाहना, नामकर्मके अभावसे अगुरुलघुत्व, और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे अनन्तवीर्य प्रगट होता है। इस प्रकार सिद्धभगवान्में अष्टकर्म न होनेसे अष्टगुण प्रगट हो जाते हैं।

मोक्षके नव द्वार

(१) सत्पदप्ररूपणाद्वार, (२) द्रव्यप्रमाणद्वार, (३) क्षेत्र प्रमाणद्वार, (४) स्पर्शनाद्वार, (५) कालद्वार, (६) अन्तरद्वार, (७) भागद्वार, (८) भावद्वार, (९) अल्पबहुत्वद्वार।

सत्पदप्ररूपणाद्वार (१)

मोक्ष शाश्वत है, अतः अनादिकालसे जीव मोक्ष प्राप्त करते रहते हैं, अतीतकालमें भी जीव मोक्षमें जाते रहे हैं, आगामी कालमें जाते

(१४) एक समयमें एक ही मोक्ष जानेवाले 'एकसिद्ध' जैसे महावीर।

(१५) एक समयमें अनेक मुक्त होनेवाले 'अनेकसिद्ध' जैसे ऋषभदेवजी आदि।

इस प्रकार नव तत्त्वके स्वरूपको जो भव्य जीव भलीभांति जान लेता है उसकी ही सम्यक्त्वदृष्टि स्थिर रह सकती है। जिन वीतरागके वचन सत्य हैं जिसकी यह बुद्धि है उसीका सम्यक्त्व अचल है, अतः नव पदार्थका पूर्ण स्वरूप समझ कर सम्यक्त्वको विशुद्ध करते हुए भेद-विज्ञानको पाकर मोक्षका आराधन करना चाहिये।

इति मोक्ष-तत्त्व।

इति नव पदार्थ ज्ञानसार सम्पूर्ण।

परिशिष्ट नं० १

—∞∞—

तीनकरणकी व्याख्या

यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वी रहा है, परन्तु काललब्धिको पाकर तीन करणोंको प्राप्त करता है, वे यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणके भेदसे प्रसिद्ध हैं।

यथाप्रवृत्तिकरण

ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २, वेदनीय ३, अन्तराय ४, इन ४ कर्मोंकी ३० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है। उसमेंसे २९ कोटाकोटी खपानेके अनन्तर १ कोटाकोटी शेष रखता है। तथा नामकर्म, गोत्रकर्म इन दो कर्मोंकी बीस २० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है, इसमें १९ कोटाकोटी क्षय करता है और १ कोटाकोटी रखता है, और मोहनीय कर्मकी ७० कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति है, उसमें ६९ कोटाकोटी क्षय करता है, शेषमें एक कोटाकोटी रखता है। इस रीतिसे मात्र एक आयुकर्मको छोड़कर बाकी सात कर्मोंकी एक पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम एक कोटाकोटी सागरोपमकी स्थिति रखनेवाला प्राणी वैराग्यरूप उदासीन परिणाम होनेपर यथाप्रवृत्तिकरण करता है। इस प्रथम करणको संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अनन्तावार करता है।

अपूर्वकरण

उस एक कोटाकोटी सागरोपमकी स्थितिमेंसे एक मुहुतमें अनादि मिथ्यात्व जो कि अनन्तानुवन्धीकी चौकड़ी है उसे क्षय करनेके लिये अज्ञानको हेय समझकर जब छोड़ता है. तथा उपादेय ज्ञानका आदरण करता है, और उसमें वांछाकी अपूर्वता उत्पन्न होती है क्योंकि प्रथम ऐसे परिणाम कभी भी नहीं आये थे, इस कारण इसे अपूर्वकरण कहा है, यह दूसरा करण सम्यक्त्व धारक जीवको यथायोग्य होता है।

अनिवृत्तिकरण

वह मुहुर्तरूप स्थितिको क्षय करके निर्मल और शुद्ध सम्यक्त्वको पाता है, मिथ्यात्वका उदय मिटनेपर जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। यही परिणाम अनिवृत्तिकारण है। इस करण के होनेपर ग्रन्थी भेद होना समझा जाता है। इस भांति मिथ्यात्वका उदय मिटनेपर ही जीव सम्यक्त्वको पाता है, उस सम्यक्त्व-श्रद्धाके दो भेद हैं। एक व्यवहारसम्यक्त्व, दूसरा निश्चय। अर्हन्त वीतराग देव, सुसाधु निर्ग्रंथगुरु, सर्वज्ञ कथित धर्म, जिस आगममें ७ नय, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण. चार निक्षेपों द्वारा निश्चित करके जो श्रद्धान किया जाता है वह व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है। यह पुण्यका तथा धर्म प्रगट होनेका कारण है। इस ढंगकी रुचि ज्ञानके विना भी अनेक जीवोंमें पैदा हो सकती है।

निश्चय सम्यक्त्व आने पर वह निश्चयदेव अपने ही आत्माको जानता है, जीव निष्पन्नस्वरूपी सिद्ध है, तत्वमें रमण करनेवाले गुरुको

भी अपने आपमें ही देखता है। अपने जीवके स्वभावको ही निश्चय धर्म समझता है। यह श्रद्धान मोक्षका कारण है, क्योंकि जीवके स्वरूपको पहचाने विना कर्मोंका क्षय नहीं होता अतः इसी शुद्ध श्रद्धानका नाम निश्चय सम्यक्त्व है।

परिशिष्ट नं० २

सिद्धद्वार

(१) पहली नरकके निकले एक समयमें १० सिद्ध होते हैं।
(२) दूसरी नरकके निकले „ १० „
(३) तीसरी नरकके निकले „ १० „
(४) चौथी नरकके निकले „ ४ „
(५) भवनपति देवके निकले „ १० „
(६) भवनपति देवीके निकले „ ५ „
(७) पृथ्वीके निकले „ ४ „
(८) पानीके निकले „ ४ „
(९) वनस्पतिके निकले „ ६ „
(१०) पंचेंद्रिय तिर्यंच गर्भजके निकले एक समयमें १० सिद्ध होते हैं
(११) तिर्यंच स्त्रीके निकले „ १० „
(१२) मनुष्य पुरुषके निकले „ १० „
(१३) मनुष्य स्त्रीके निकले „ २० „
(१४) व्यंतरदेवके निकले „ १० „
(१५) व्यंतरदेवीके निकले „ ५ „

(१६) ज्योतिषीदेवके निकले एक समयमें १० सिद्ध होते हैं
(१७) ज्योतिषीदेवीके निकले ,, २० ,,
(१८) वैमानिकदेवके निकले ,, १०८ ,,
(१९) वैमानिकदेवीके निकले ,, २० ,,
(२०) स्वलिंगी सिद्ध हों तो १०८ सिद्ध होते हैं।
(२१) अन्यलिंगी सिद्ध हों तो १० ,,
(२२) गृहस्थलिंग सिद्ध हों तो ४ ,,
(२३) स्त्रीलिंगमें २० सिद्ध होते हैं।
(२४) पुरुषलिंगमें १०८ ,,
(२५) नपुंसकलिंगमें १० ,,
(२६) ऊर्ध्वलोकमें ४ ,,
(२७) अधोलोकमें २० ,,
(२८) तिर्छलोकमें १०८ ,,
(२९) उत्कृष्ट अवगाहनावाले एक समय दो सिद्ध होते हैं।
(३०) जघन्य अवगाहनावाले १ समयमें ४ सिद्ध होते हैं।
(३१) मध्यम अवगाहनावाले १ समयमें १०८ सिद्ध होते हैं।
(३२) समुद्रमें २ सिद्ध होते हैं।
(३३) नदी आदि शेष जलमें ३ सिद्ध होते हैं।
(३४) तीर्थमें १०८ ,,
(३५) अतीर्थमें १० ,,
(३६) तीर्थंकर २० ,,
(३७) अतीर्थंकर १०८ ,,

(३८) स्वयंबुद्ध ४ सिद्ध होते हैं।

(३९) प्रत्येकबुद्ध १० „

(४०) बुद्धबोधित १०८ „

(४१) एकसिद्ध—१ समयमें १ „

(४२) अनेकसिद्ध—१ समयमें १०८ „

(४३) प्रतिविजयमें १ समयमें २०-२० „

(४४) भद्रशालिवन १, नन्दनवन २, सौमनस्यवनमें ४-४ सिद्ध होते हैं।

(४५) पंडकवनमें २ सिद्ध होते हैं।

(४६) अकर्म भूमिमें अपहरण द्वारा १० सिद्ध होते हैं।

(४७) कर्मभूमिमें १०८।

(४८) प्रथम, द्वितीय, पांचवें, छठवें आरकमें अपहरण द्वारा १० सिद्ध होते हैं।

(४९) तृतीय, चतुर्थ आरकमें १०८-१०८ सिद्ध होते हैं।

(५०) अवसर्पिणी, उत्सर्पिणीमें १०८ „

(५१) नोअवसर्पिणी, उत्सर्पिणीमें १०८ „

(५२) १ से ३२ तक सिद्ध हों तो ८ समय लगते हैं।

(५३) ३३ से ४८ तक „ ७ „

(५४) ४९ से ६० तक „ ६ „

(५५) ६१ से ७२ तक „ ५ „

(५६) ७३ से ८४ तक „ ४ „

(५७) ८५ से ९६ तक „ ३ „

(५८) ९७ से १०२ तक हों तो २ समय लगते हैं।

(५९) १०३ से १०८ तक हों तो १ समय लगते हैं।

❁ समाप्त ❁

अपने जैनमुनिओंसे प्रार्थना

अपने अपने गुरुओं और बड़े बूढ़ोंके नामसे पुजती आनेवाली प्रचलित सम्प्रदायोंसे जैन समाजको आजतक भारीसे भारी नुकसान उठाना पड़ा है। शायद पहले इससे कुछ लाभ पहुंचा हो? मगर इस अनावश्यक वाड़ावंदी, सम्प्रदायवादकी इस नव युगमें आवश्यकता नहीं है, इन सब सम्प्रदायोंको मिटाकर मात्र एक ज्ञातपुत्र महावीर भगवानके नामपर अपनी सम्प्रदायका नाम रखकर सब सम्प्रदायके साधुओंको सच्चा अनेकान्त-वादी बन जाना चाहिये जिससे जैन समाजकी बिखरी हुई शक्तिका पुष्ट संग्रह हो सके। अपने पुराने बड़े बूढ़ोंके नामका मोह हमें अब नाम मात्रको भी न होना चाहिये। हमें भगवान महावीरकी वास्तविक देन है और वह सम्प्रदायको मिटाकर एकता और संगठन तथा प्राणी मात्रमें प्रेम करनेसे ही पूरी की जा सकती है।

प्रार्थी—

ज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघीय—

पुष्फ भिक्खु

सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, कलकत्ता, द्वारा मुद्रित।